CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण-अर्जुन संवाद

सुरेन्द्र सिंह यादव

Dr. Urmila Sharma Collection. Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.

आदरणीय कपिला जी के लिए,
ससम्मान
20/07/2000

कृष्ण-अर्जुन संवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

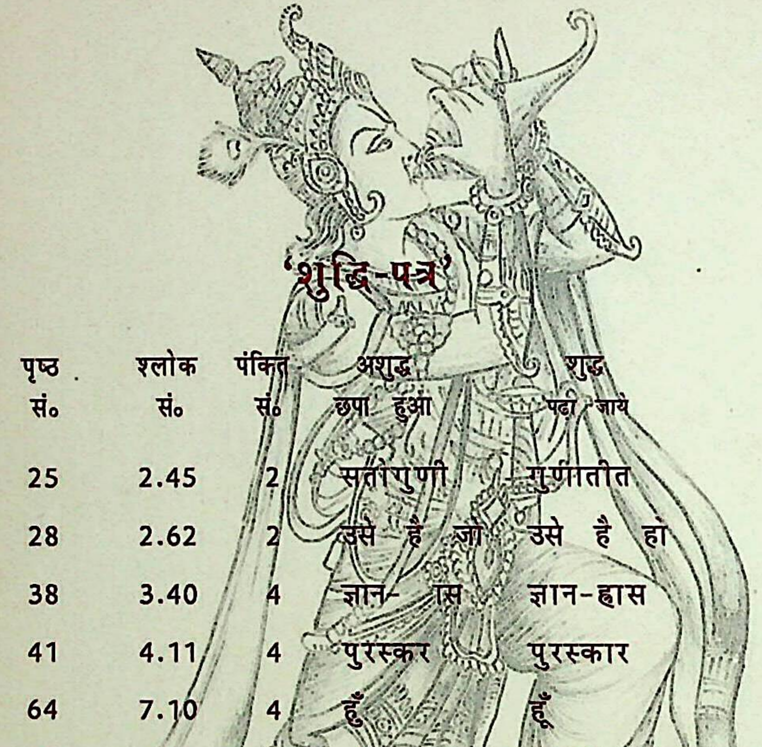

'शुद्धि-पत्र'

पृष्ठ सं०	श्लोक सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध छपा हुआ	शुद्ध पढ़ा जाये
25	2.45	2	सतोगुणी	गुणातीत
28	2.62	2	उसे है जो	उसे है हो
38	3.40	4	ज्ञान- ास	ज्ञान-ह्रास
41	4.11	4	पुरस्कर	पुरस्कार
64	7.10	4	हुँ	हूँ
81	10.2	2	और	महर्षि और
121	16.2	4	¿Ö और	ह्री और
122	16.6	3	विसतृत	विस्तृत
129	17.11	1	यो यज्ञ	जो यज्ञ
144	18.66	1	सब धर्मी	सब धर्मों
145	18.71	1	श्रद्धाहीन	श्रद्धावान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण-अर्जुन संवाद

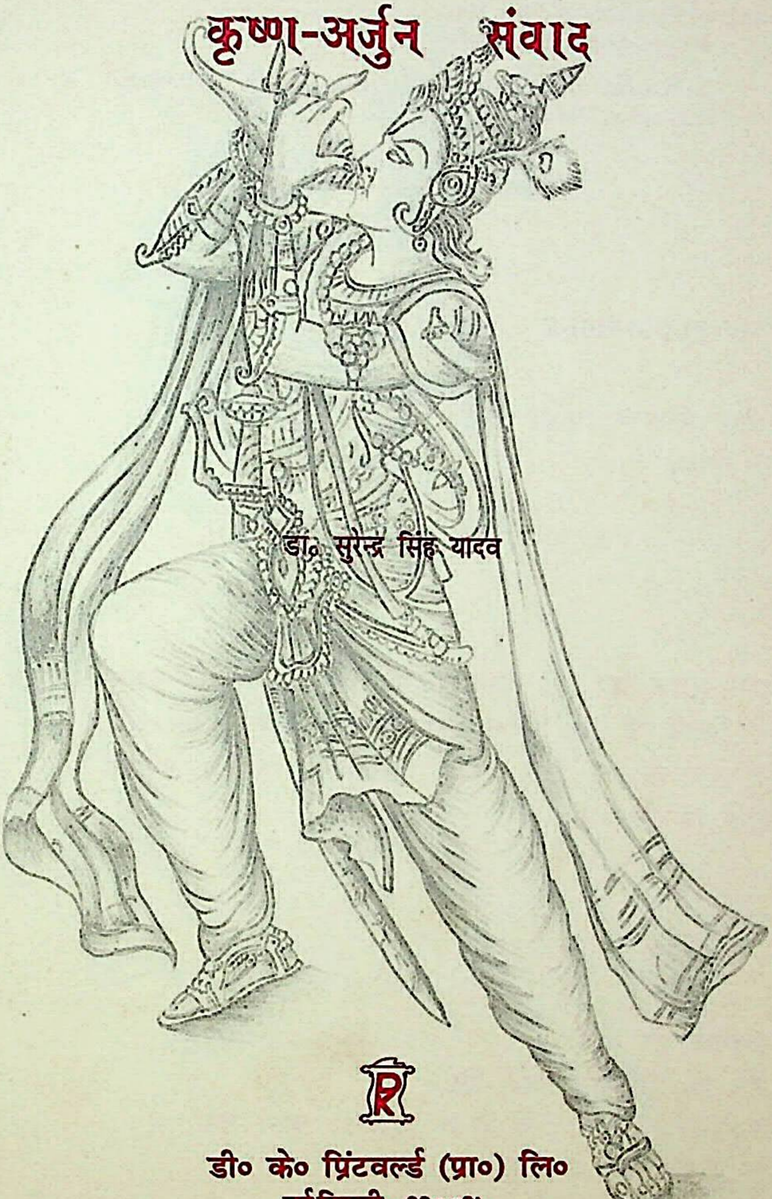

डा० सुरेन्द्र सिंह यादव

डी० के० प्रिंटवर्ल्ड (प्रा०) लि०
नई दिल्ली - ११००१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Cataloging in Publication Data — DK

Yādava, Surendra Simha, 1955 –
Kṛṣṇa-Arjuna Saṁvāda.

1. Krishna (Hindu deity). 2. Arjun (Hindu mythology). 3. Philosophy, Hindu. I. Title

ISBN 81-246-0161-5

प्रथम संस्करण, 2000
© लेखक

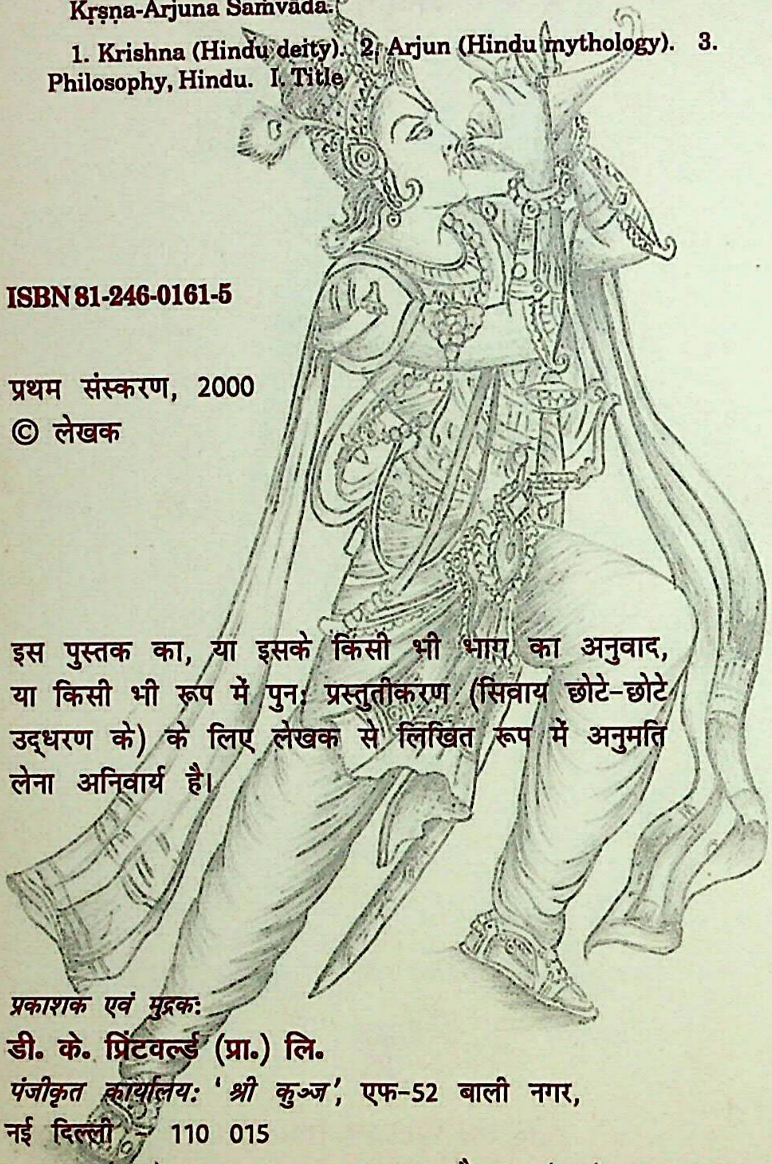

इस पुस्तक का, या इसके किसी भी भाग का अनुवाद, या किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुतीकरण (सिवाय छोटे-छोटे उद्धरण के) के लिए लेखक से लिखित रूप में अनुमति लेना अनिवार्य है।

प्रकाशक एवं मुद्रक:
डी॰ के॰ प्रिंटवर्ल्ड (प्रा॰) लि॰
पंजीकृत कार्यालय: *'श्री कुञ्ज'*, एफ-52 बाली नगर,
नई दिल्ली - 110 015
दूरभाष: (011)545 3975, 546 6019; फैक्स: (011) 545 5926
ई-मेल: dkprint@4mis.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम पूज्या दादी जी की स्मृति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

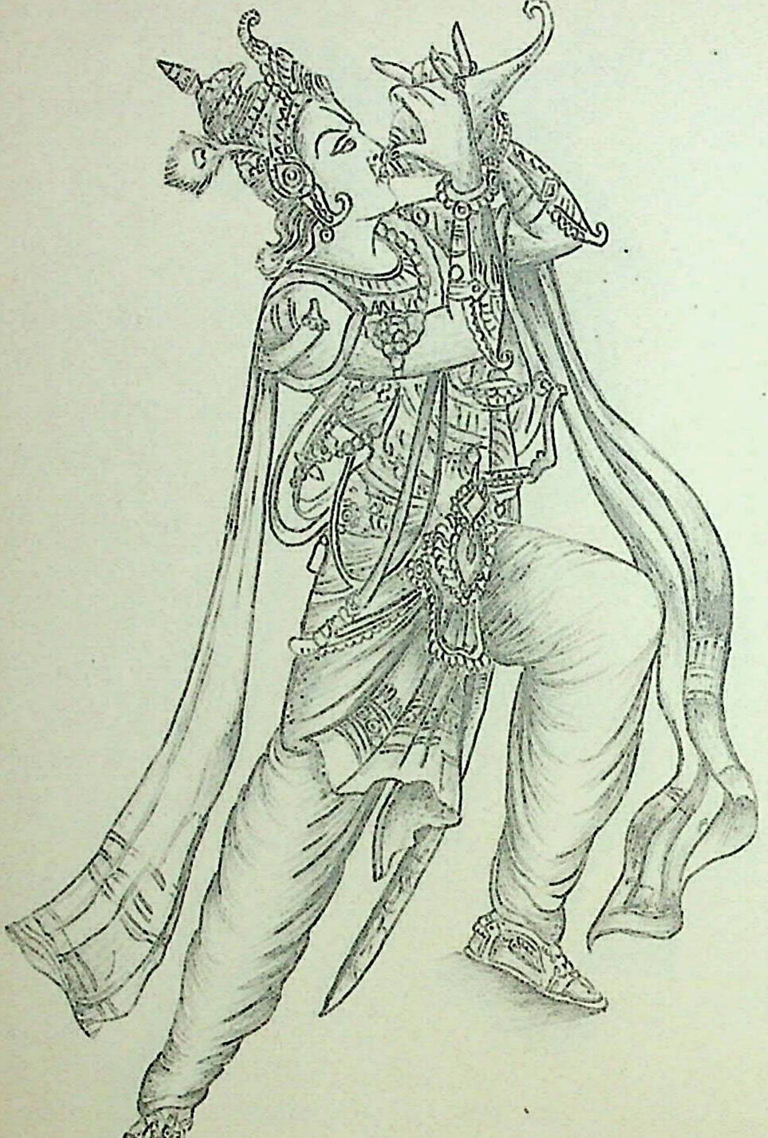

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

श्रीमद्भगवद् गीता योगेश कृष्ण का रणभूमि में एक संशययुक्त योद्धा को कर्म एवं धर्म के लिये प्रेरित करने के उद्देश्य से दिया गया केवल उपदेश मात्र नहीं है प्रत्युत इसमें जीवन-मरण, माया-मोह, कर्म-अकर्म, ज्ञान-अज्ञान, तप-त्याग, करण-कर्ता, बुद्धि-कुबुद्धि, वर्णाश्रम, सुख-दुःख, यज्ञ-योग, पुनर्जन्म तथा मोक्ष के गूढ़ रहस्यों की भी विवेचना की गई है। गीता जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श करती है तथा इस दृष्टिकोण से यह भौगोलिक सीमाओं, समय की परिधियों तथा युग की रेखांकित दिशाओं को लाँघकर सर्वव्यापक, निस्सीम एवं सर्वग्राही बन जाती है। गीता केवल एक धार्मिक पुस्तक ही नहीं है, यह विज्ञान, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा सर्वोपरि नीतिशास्त्र भी है। गीता का प्रत्येक शब्द अथाह ज्ञान एवं गूढता से परिपूर्ण है तथा इसमें निहित मर्म को जानने के लिये श्रद्धा, ज्ञान, पूर्णनिष्ठा एवं विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता है। यही कारण है कि गीता पर अनेकानेक टीकायें, टिप्पणियाँ एवं विवेचनायें मिलती हैं जिनमें अपने-अपने दृष्टिकोण से निहित मर्मों का भेदन करने की चेष्टा की गई है। किन्तु गूढ़ रहस्यों को ग्रहण करने के लिये उपलब्ध पर्याप्त सामग्रियों के होते हुये भी मन में यह आशंका रहती है कि अभी कुछ और मर्म शेष है जिस पर आवरण पड़ा हुआ है। यह संशय और शंका तथा यह आध्यात्मिक तृष्णा ही गीता की गहनता एवं महानता की द्योतक है।

गीता में दर्शायी गई जीवन-शैली केवल व्यक्ति-विशेष, समुदाय-विशेष, जाति-विशेष अथवा युग-विशेष के लिये ही नहीं है। यह देववाणी तथा पावन-उपदेश प्रत्येक युग तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिये संगत तथा लाभदायक है। गीता की महत्ता एवं उपयोगिता इस कलियुग में विशेष रूप से है। आज सर्वत्र नैतिक पतन हो रहा है; पशुता मानवता का गला दबोच रही है; अशान्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवं नरसंहार का ताण्डव नृत्य संसार के प्रत्येक गली-कूचों में हो रहा है, आशायें छिन्न-भिन्न हो रही हैं, सौहार्दपूर्ण एवं निकटतम सम्बन्ध टूट रहे हैं लालसा-लोलुप्ता, स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षाएँ नैतिक मूल्यों का हनन कर रही हैं; बड़ी शक्तियाँ छोटे देशों को दानव की भाँति निगलने की योजनायें बना रही हैं; कूटनीति केवल विनाश का घृणात्मक षड्यंत्र बनकर रह गई है; मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है; धरती का सर्वश्रेष्ठ जीव 'मानव' तुच्छ एवं मूल्यहीन होता जा रहा है तथा संसार सम्पूर्ण विनाश के तट पर खड़ा हुआ है। ऐसी दयनीय एवं चिन्ताजनक परिस्थिति में यदि कोई शक्ति मनुष्य के विह्वल मन को शान्ति तथा क्रन्दन करती मानवता को सान्त्वना दे सकती है तो वह है गीता की आध्यात्मिक औषधि। यदि कोई शक्ति खंडित समाज एवं भंजित संसार को प्रेम-सूत्र में बाँध सकती है तो वह है केवल गीता का पावन अमृत।

यदि गीता पर सूक्ष्म दृष्टि डालें और उसकी सम्पूर्णता में उसका अवलोकन करें तो यह तथ्य विदित हो जायेगा कि गीता एक मनोविश्लेषण, मनोविकृति-विज्ञान एवं मनोचिकित्सा का शास्त्र है जिसकी प्रासंगिकता आज के युवकों की अस्थिरता, अशांति एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता के संदर्भ में अत्यधिक है। अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान में बलहीन, निरूत्साह, संशययुक्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ खड़े हैं। वह एक महान् योद्धा होते हुए भी अस्त्र-शस्त्र फेंक देते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अन्तर्द्वन्द एवं मायामोह ने उनका आत्मबल एवं युद्ध-कौशल छिन्न-भिन्न कर दिया है। वह आज के युवक की भाँति भयभीत, सम्भ्रान्त एवं विस्मित खड़े हैं। शून्य में गतिशील मछली की छाया देखकर अपने शर से उसकी आँख भेदने वाले अर्जुन आज लक्ष्यहीन हो गये हैं। युग का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कलाविहीन हो गया है। उसका आत्म-विश्वास कुरुक्षेत्र में पिघल-पिघलकर बह रहा है। उसका शरीर शिथिल, हृदय पीड़ित एवं मन विकृत है। वह साधक होते हुये भी साधना-हीन है। वह कर्म-धर्म, ज्ञान-योग, त्याग-परित्याग, वीरता-कायरता जैसे शब्दों का अर्थ भूल चुका है। वह निरीहता, आत्मग्लानि एवं हीनभावना के पाश में जकड़ा हुआ है। वह केवल मानसिक तनाव ही नहीं प्रत्युत् एक प्रकार से मानसिक रोग से पीड़ित है। वह रण में शत्रुओं से जूझने के स्थान पर पलायन का मार्ग अपनाता है। यह भीरू प्रवृत्ति एक वीर योद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये अत्यन्त तिरस्कृत एवं अपमानजनक है। इस कायरता का अर्जुन को आभास है किन्तु फिर भी वह अपनी शंकाओं के दलदल से नहीं निकल पाते उनका तन्त्रिका-तंत्र निष्क्रिय हो गया है।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।। 1-29 ।।

हे कृष्ण युद्धक्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्पन एवं रोमांच हो रहा है।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मन: ।। 1-30 ।।

हाथ से गाण्डीत धनुष गिर रहा है और त्वचा भी वहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूँ।

ऐसी परिस्थिति से उवारने के लिये मनोचिकित्सा एवं दिव्यज्ञान की आवश्यकता थी जिसे मधूसूदन ने प्रचुर मात्रा में प्रदान किया और सम्मूर्च्छा में सुषुप्त रणयोद्धा सक्रिय होकर शत्रुओं पर शेर की भाँति टूट पड़ा।

आज हमारे देश का युवक भी अर्जुन की मानसिक दशा से गुजर रहा है। उसके सपने विखर रहे हैं, उसकी आकांक्षायें छिन्न-भिन्न एवं महत्वाकांक्षायें चूर-चूर हो रही हैं। उसके चारों ओर नकारात्मक शक्तियों के वादल मंडरा रहे हैं, प्रतिकूल परिस्थितियाँ क्षण-प्रति-क्षण सशक्त होती जा रही हैं जिनसे जूझने में वह अपने आपको असमर्थ पाता है। परिणामस्वरूप वह अवसाद-विषाद, निराशा एवं अकर्मण्यता का शिकार हो गया है। आज का युवक कभी उत्तेजित हो जाता है और नकारात्मक शक्तियों का विध्वंश कर देना चाहता है और कभी भंग पीकर अपने स्नायुतंत्र को शिथिल कर लेता है। उसका मस्तिष्क-भ्रमान्त,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि-भ्रष्ट, मन चंचल, हृदय विषादपूर्ण तथा उसका जीवन नीरस, अर्थहीन, दिशाहीन, तुच्छ, तिरस्कृत एवं अपमानित है। उसका सम्पूर्ण अस्तित्व प्रकृति-विरोधी है। उसका क्या कर्तव्य है तथा उसका क्या धर्म है, उसे पता नहीं। वह तो बिन पतवार की नाव की भाँति समय की धारा पर हौले-हौले बहता चला जा रहा है और कब किसी चट्टान से टकराकर पाश-पाश हो जाये- उसे इसका बोध नहीं। आज के युवक के मन में प्रतिक्षण कुरुक्षेत्र का युद्ध हो रहा है और वह अपना धनुष-बाण एक तरफ डालकर अपने आप से पूछ रहा है "मैं क्या करूँ?" इस प्रश्न का उत्तर केवल गीता में है। मगर चिराग तले अन्धेरा। मृग अपनी ही नाभि की कस्तुरी की तीव्र गन्ध से व्याकुल कुलाचें भर रहा है। हीरा अपने मूल्य से अनभिज्ञ है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह यादव ने गीता का स्वछन्द रूपान्तर अपार श्रद्धा एवं एक निश्चित ध्येय से किया है। गीता के गूढ़भाव, वह भी देववाणी में, ग्रहण करना साधारण व्यक्ति के सामर्थ्य से बाहर है। तो प्रश्न यह उठता है कि साधारण व्यक्ति कैसे गीता का रसास्वादन करे तथा दिव्यज्ञान प्राप्त करे ? गीता पर केवल पढ़े-लिखे ज्ञानी व्यक्तियों का मात्र अधिकार नहीं है। इसका संदेश साधारण से साधारण व्यक्ति तक पहुँचना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि गीता का सुबोध एवं सरल भाषा में रूपान्तर किया जाये। यदि इस रूपान्तर में गेयता भी हो तो सोने में सुहागा। डॉ. सुरेन्द्र सिंह यादव ने रूपान्तर को न केवल गेयता से सुसज्जित किया है बल्कि इस बात का भी ध्यान रखा है कि भाषा की सरलता के साथ गूढ़ भावों एवं जटिल दार्शनिक तथ्यों को सुगम, सहज एवं सुबोध तरीके से व्यक्त किया जाये ताकि आम आदमी को समझने में कोई कठिनाई न हो। सब तर्क देने के पश्चात् अन्त में जब अर्जुन शोक से उद्विग्न होकर बाण सहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ जाते है :

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।। 1-47 ।।

इस दृश्य को कितनी सरल भाषा में लेखक ने प्रकट किया है -

रण बीच वचन ऐसे कहकर
अर्जुन रथ में बैठ गये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

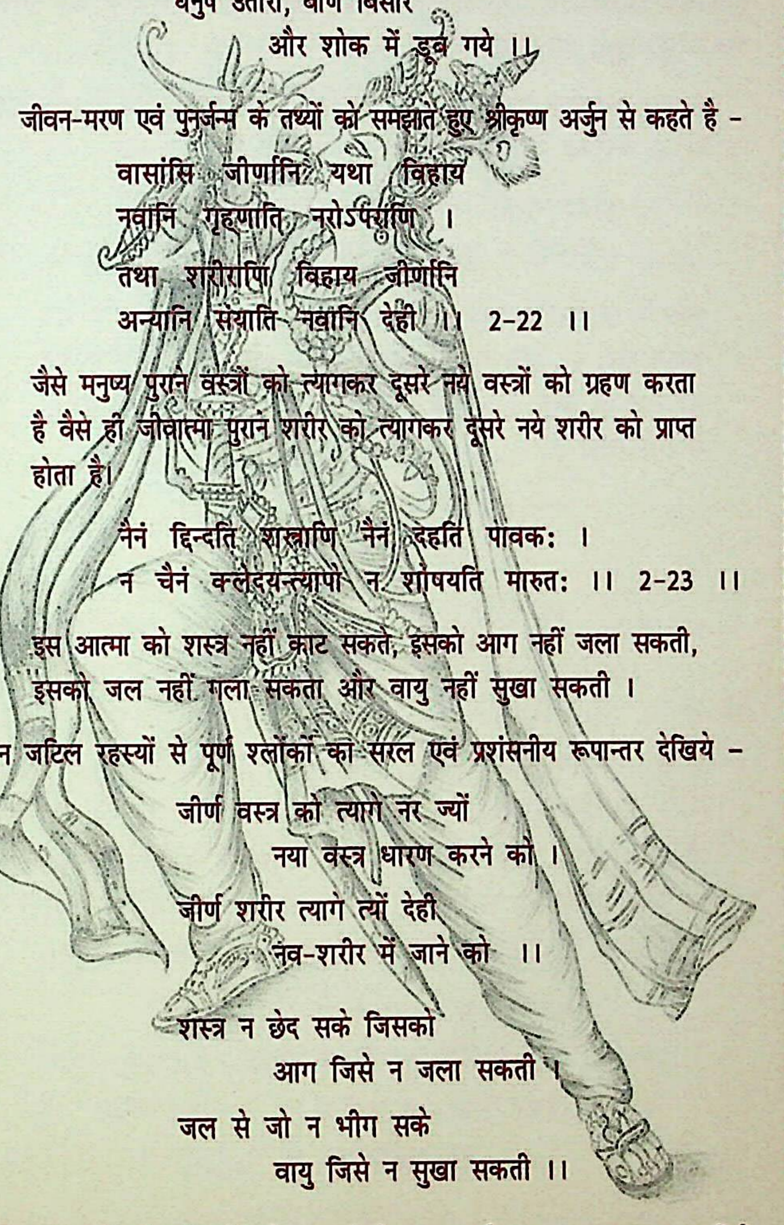

धनुष उतारा, बाण बिसारे
और शोक में डूब गये ।।

जीवन-मरण एवं पुनर्जन्म के तथ्यों को समझाते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है –

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि संयाति नवानि देही ।। 2-22 ।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है।

नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावक: ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत: ।। 2-23 ।।

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती ।

इन जटिल रहस्यों से पूर्ण श्लोकों का सरल एवं प्रशंसनीय रूपान्तर देखिये –

जीर्ण वस्त्र को त्यागे नर ज्यों
नया वस्त्र धारण करने को ।
जीर्ण शरीर त्यागे त्यों देही
नव-शरीर में जाने को ।।

शस्त्र न छेद सके जिसको
आग जिसे न जला सकती ।
जल से जो न भीग सके
वायु जिसे न सुखा सकती ।।

उक्त पंक्तियों को यदि कोई माँ सरस्वती से कण्ठमाधुर्य का वरदान प्राप्त मधुभाषिनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनें स्वर में गाये तो सुनने वालों का मन आनन्दविभोर हो जाये और अपार आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति हो।

सरलता, सुगमता एवं गेयता का एक और ज्वलन्त उदाहरण निम्नलिखित श्लोकों के रूपान्तर में मिलता है –

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।। 2-63 ।।

क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न होता है। मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम उत्पन्न होता है, स्मृति में भ्रम उत्पन्न होने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश होने से मनुष्य अपनी स्थिति से गिर जाता है।

मोह का जन्म क्रोध से होता
मोह करता स्मृति का नाश ।
स्मृति-विनाश विवेक हर लेता
विवेकहीन करता निज-नाश ।।

इसी प्रकार –

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं. नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ।। 4-20 ।।

जो पुरूष समस्त कर्मों और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग कर संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्म में लीन होता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

कर्मफलों से अनासक्त हो
सदा तृप्त निराश्रय रहता ।
रहकर लिप्त सदा कर्मों में
वह तथापि कुछ भी न करता ।।

गीता के अनेकों श्लोक ऐसे हैं जिनमें पूर्णतः उन्हीं बातों की व्याख्या मिलती है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो अन्य कई मुख्य धार्मिक पुस्तकों में मिलती है। गीता के तुलनात्मक अध्ययन से एक अलग आनन्द-प्राप्ति एवं ज्ञानवर्धन होता है। यह एक अत्यन्त रोचक विषय है जिसका विस्तृत उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।। 18-63 ।।

इस प्रकार यह गोपनीय ज्ञान मैंने तुमसे कह दिया। अब तुम इस रहस्ययुक्त ज्ञान पर पूर्णतया भली-भाँति विचार कर जो अच्छा है वैसा करो।

इस तरह गूढ़तम ज्ञान तुम्हें
मैंने यह बतलाया है ।
इस पर विचार कर पूर्ण रूप से
करो वही जो अच्छा है ।।

"अल्लमल इन्सान मालम यालम" (कुरान)। "हमने मनुष्य को वह सिखाया जो वह नहीं जानता था।" इसके अतिरिक्त खुदा ने इन्सान को विवेक एवं ज्ञान प्रदान करने के पश्चात् उसे स्वेच्छानुसार कर्म करने की आजादी भी अता की है। इसी प्रकार "अहंकार" को सभी धर्मों में विनाश एवं पतन का कारण बताया गया है। एज़ाज़ील सबसे बड़ा उपासक था, जिसे खुदा ने फरिश्तों का सरदार बनाया किन्तु "अहंकार" के कारण वह पदच्युत हुआ और उसे अन्ततः इब्लीस (शैतान) बना दिया गया।

तकब्बुर एज़ाज़ील रा ख्वार कर्द ।
बज़िन्दाने लानत गिरफ्तार कर्द ।।

अहंकार ने एज़ाज़ील फरिश्ते को अपमानित किया तथा वह सदैव के लिये श्रापित हुआ।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ।। 8-50 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझमें चित्त लगाकर देखो
सारे दुर्ग जीत लोगे ।
अहंकारवश सुना न मुझको
तो निश्चित विनष्ट होगे ।।

तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि तथा किसी के प्रति शत्रुभाव का न होना और अभिमान का अभाव – ये सब दैवी सम्पदा लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं। दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान – ये सब आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं। दैवी सम्पदा मुक्ति के लिये तथा आसुरी सम्पदा बाँधने के लिये मानी गई है। निष्काम कर्म, कर्त्तव्यनिष्ठा, ज्ञान, तप, निःस्वार्थ प्रेम तथा चिन्तन से मनुष्य अपनी गरिमा को प्राप्त कर सकता है और अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। यही गीता का संदेश है।

बदरे आलम खान
नई दिल्ली

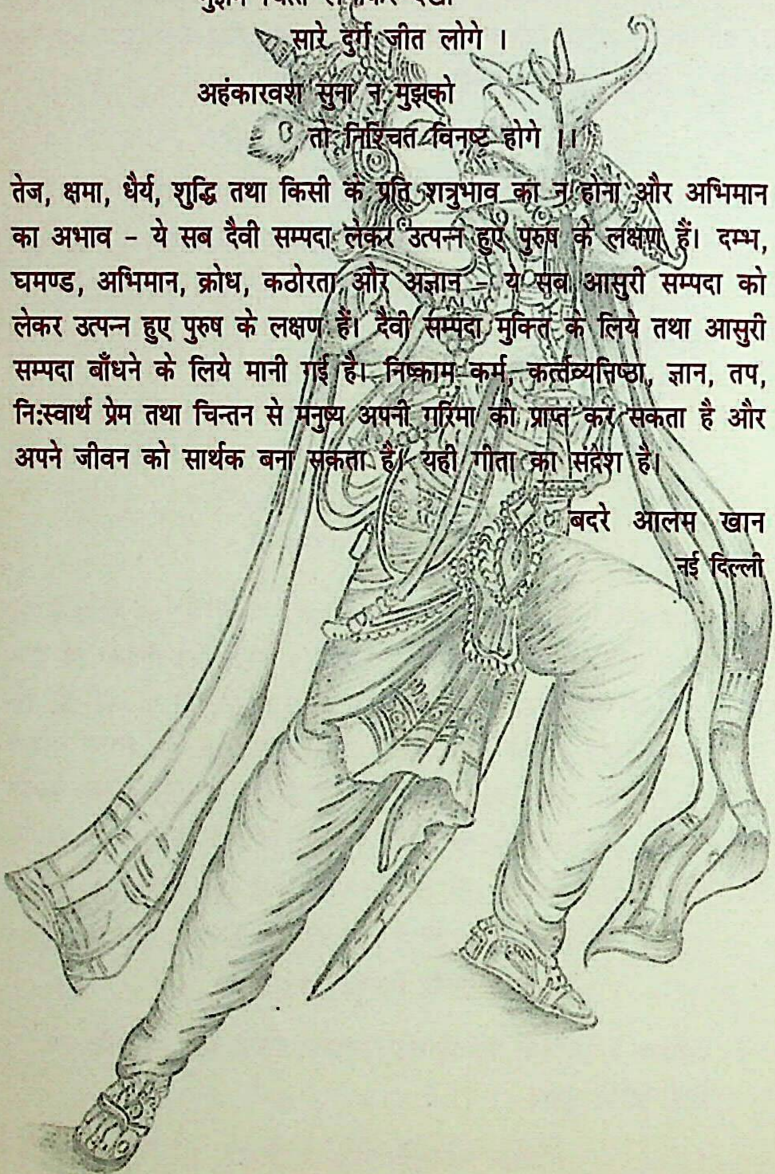

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

मौलिक रूप से संस्कृत में उपलब्ध गीता के विचार की गहराई में पहुँच पाना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन तो है ही, साथ-साथ आज के समय में संस्कृत के समुचित ज्ञान के अभाव में इसका पढ़ा जाना भी असंभव है। अत: "कृष्ण-अर्जुन संवाद" शीर्षक के नाम से हिन्दी रूपांतर का प्रयास व उद्देश्य है इसकी व्यापक पहुँच की सम्भावना।

गीता के इस हिन्दी रूपांतर का कविता रूप में होने का एक लाभ यह भी हो सकता है कि कुछ सीमा तक पाठक इसके कुछ अंश अनायास कंठस्थ कर ले और पुस्तक आँख के सम्मुख न होने पर भी वह पढ़े हुए या कंठस्थ हुए छन्द पर मनन करता रहे।

वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनुभूति व श्रद्धा अनुसार किसी भी तरह आध्यात्मिक अभ्यास कर सकता है लेकिन अधिक कर्म-काण्डों में लिप्त समाज में व्यक्ति धीरे-धीरे आध्यात्मिक खोज से विलग होकर आडम्बर की ओर मुड़ जाता है। परिणामस्वरूप वह स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने के बजाय और अधिक सीमित होने लगता है। मुख्य उद्देश्य को छोड़कर ऐसे लोग अवांछित आडम्बरों में फंसकर रह जाते हैं ।

कर्म-बन्धनों में आसक्त सदा,
रखते स्वर्ग-काम-इच्छायें ।

भोग और ऐश्वर्य हेतु,
वे करते भिन्न-भिन्न क्रियायें ।।

भोग और ऐश्वर्य की चाहत,
डांवाडोल रहते वे मन में ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कर सकें ध्यान-समाधि,
न ही बुद्धि-निश्चय उनमें ।।

** ** **

क्या उपयोगी हो सकता है,
बाढ़ में डूबे कूप का पानी ।
क्या उपयोग उनको वेदों का,
हो चुके जो ब्रह्म ज्ञानी ।।

ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, ध्यान योग - सभी रास्ते मनुष्य के सम्मुख उपलब्ध हैं। अपनी प्रवृत्ति और सुविधानुसार वह कोई भी रास्ता चुन सकता है - आध्यात्मिक खोज के लिए अपने विवेक का सही उपयोग करके ।

सर्वविदित है कि गीता सारे वेदान्त का सार है। इसका संदेश मुख्यतः यही है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी सांसारिक कार्य में संलग्न रहते हुए ही आध्यात्मिक पथ पर प्रगति कर सकता है - बिना किसी बाहरी साधन व सहायता के। बस, बार-बार पढ़ने व मनन करने की आवश्यकता है।

गीता का यह हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत करने का विचार मुझे पहले-पहल 1977 में आया लेकिन धीरे-धीरे अन्य व्यस्तताओं में काफी समय निकल गया। मुझे प्रसन्नता है कि मेरी गतिविधियाँ मुझे इस आन्तरिक प्रेरणा से सदा के लिए विलग नहीं कर सकी और मैं यह पुस्तक तैयार कर पाया।

डी० के० प्रिण्टवर्ड (प्रा०) लि० का मैं आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशक का कार्य बड़ी लगन और तत्परता के साथ सम्पन्न किया है। साथ ही, मैं गोपीनाथ दत्त को आवरण चित्र के लिए धन्यवाद देता हुँ।

मुझे विश्वास है कि "कृष्ण-अर्जुन संवाद" अपने उद्‌देश्य में अवश्य सफल होगा ।

मई, 2000 सुरेन्द्र सिंह यादव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

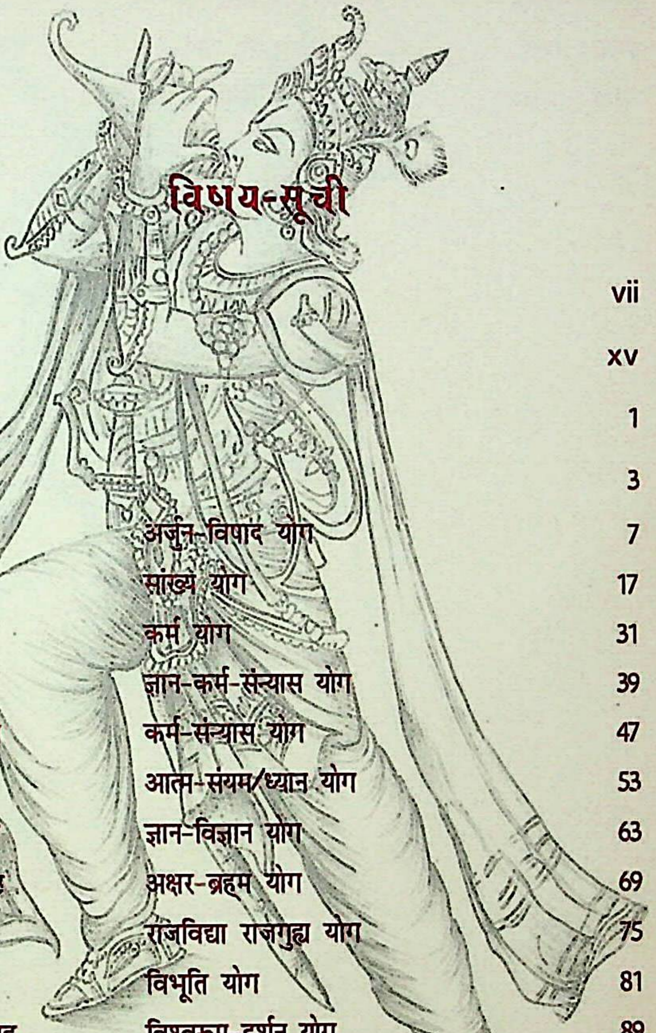

विषय-सूची

दो शब्द		vii
भूमिका		xv
प्रस्तावना		1
संदर्भ		3
अध्याय एक	अर्जुन-विषाद योग	7
अध्याय दो	सांख्य योग	17
अध्याय तीन	कर्म योग	31
अध्याय चार	ज्ञान-कर्म-संन्यास योग	39
अध्याय पाँच	कर्म-संन्यास योग	47
अध्याय छः	आत्म-संयम/ध्यान योग	53
अध्याय सात	ज्ञान-विज्ञान योग	63
अध्याय आठ	अक्षर-ब्रह्म योग	69
अध्याय नौ	राजविद्या राजगुह्य योग	75
अध्याय दस	विभूति योग	81
अध्याय ग्यारह	विश्वरूप-दर्शन योग	89
अध्याय बारह	भक्ति योग	99
अध्याय तेरह	क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग	103
अध्याय चौदह	गुणत्रय-विभाग योग	111
अध्याय पंद्रह	पुरुषोत्तम योग	117

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्याय सोलह	दैवासुर-संपद्विभाग योग	121
अध्याय सत्रह	श्रद्धात्रय-विभाग योग	127
अध्याय अठारह	मोक्ष-सन्यास योग	133

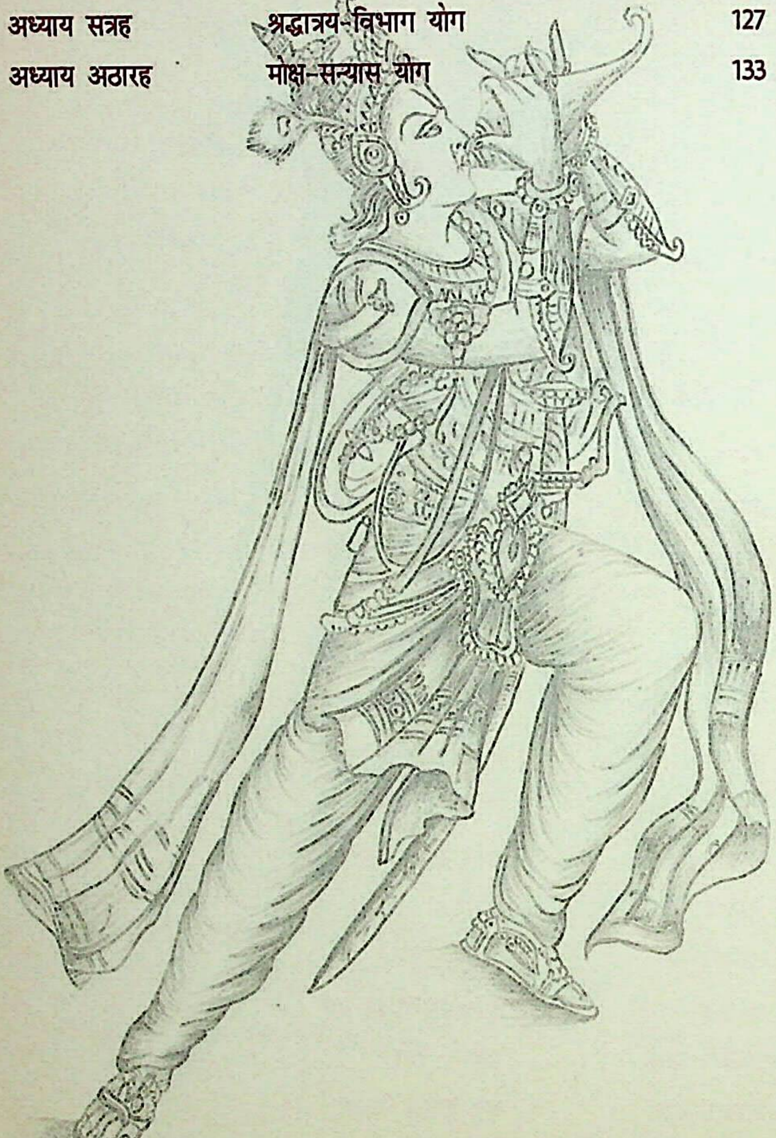

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

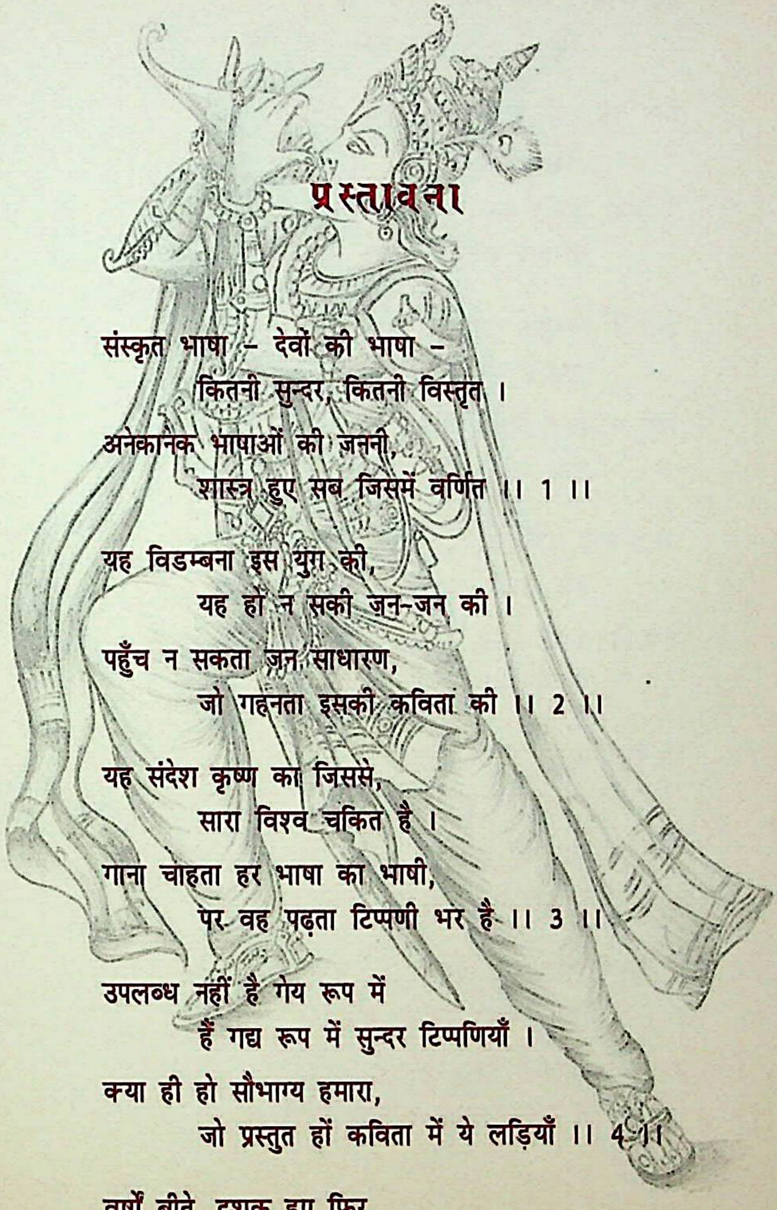

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा – देवों की भाषा –
कितनी सुन्दर, कितनी विस्तृत ।
अनेकानेक भाषाओं की जननी,
शास्त्र हुए सब जिसमें वर्णित ।। 1 ।।

यह विडम्बना इस युग की,
यह हो न सकी जन-जन की ।
पहुँच न सकता जन साधारण,
जो गहनता इसकी कविता की ।। 2 ।।

यह संदेश कृष्ण का जिससे,
सारा विश्व चकित है ।
गाना चाहता हर भाषा का भाषी,
पर वह पढ़ता टिप्पणी भर है ।। 3 ।।

उपलब्ध नहीं है गेय रूप में
हैं गद्य रूप में सुन्दर टिप्पणियाँ ।
क्या ही हो सौभाग्य हमारा,
जो प्रस्तुत हों कविता में ये लड़ियाँ ।। 4 ।।

वर्षों बीते, दशक हुए फिर,
यह उमड़ विचार मन आया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

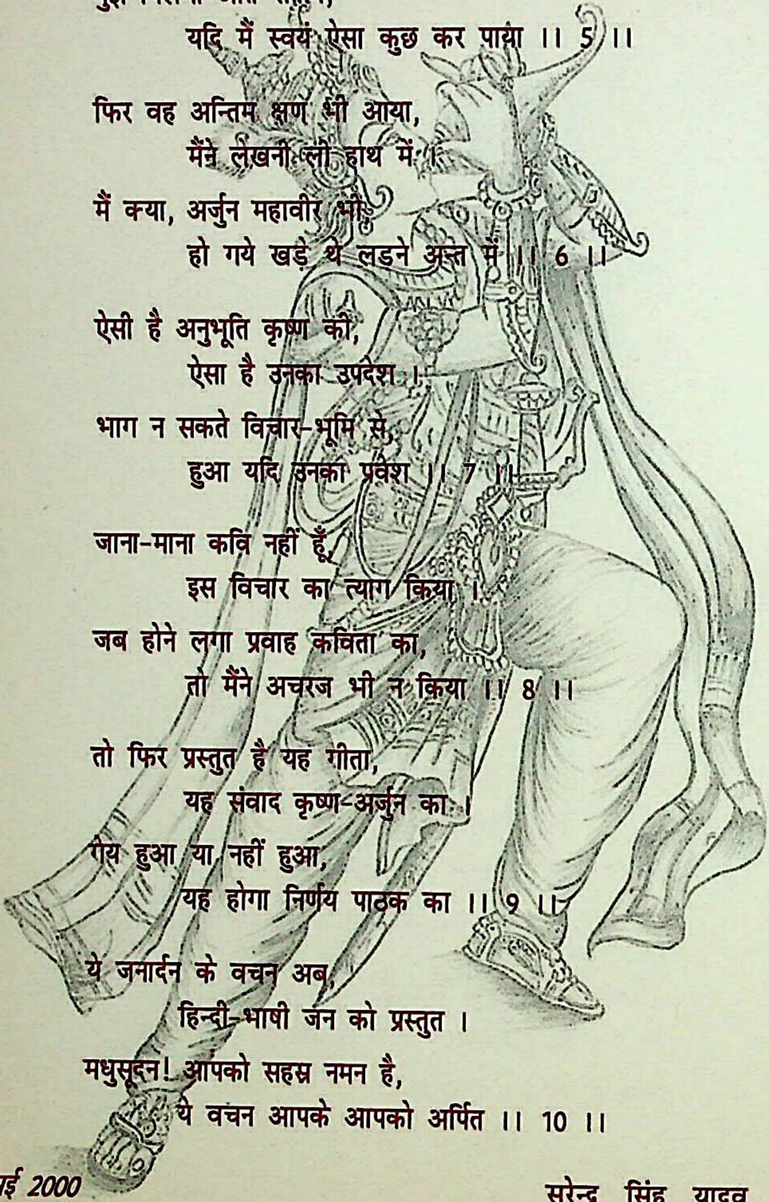

मुझे मिलेगा अति संतोष,
यदि मैं स्वयं ऐसा कुछ कर पाया ।। 5 ।।

फिर वह अन्तिम क्षण भी आया,
मैंने लेखनी ली हाथ में ।
मैं क्या, अर्जुन महावीर भी,
हो गये खड़े थे लड़ने अस्त्र में ।। 6 ।।

ऐसी है अनुभूति कृष्ण की,
ऐसा है उनका उपदेश ।
भाग न सकते विचार-भूमि से,
हुआ यदि उनका प्रवेश ।। 7 ।।

जाना-माना कवि नहीं हूँ,
इस विचार का त्याग किया ।
जब होने लगा प्रवाह कविता का,
तो मैंने अचरज भी न किया ।। 8 ।।

तो फिर प्रस्तुत है यह गीता,
यह संवाद कृष्ण-अर्जुन का ।
गेय हुआ या नहीं हुआ,
यह होगा निर्णय पाठक का ।। 9 ।।

ये जनार्दन के वचन अब,
हिन्दी-भाषी जन को प्रस्तुत ।
मधुसूदन! आपको सहस्र नमन है,
ये वचन आपके आपको अर्पित ।। 10 ।।

मई 2000

सुरेन्द्र सिंह यादव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

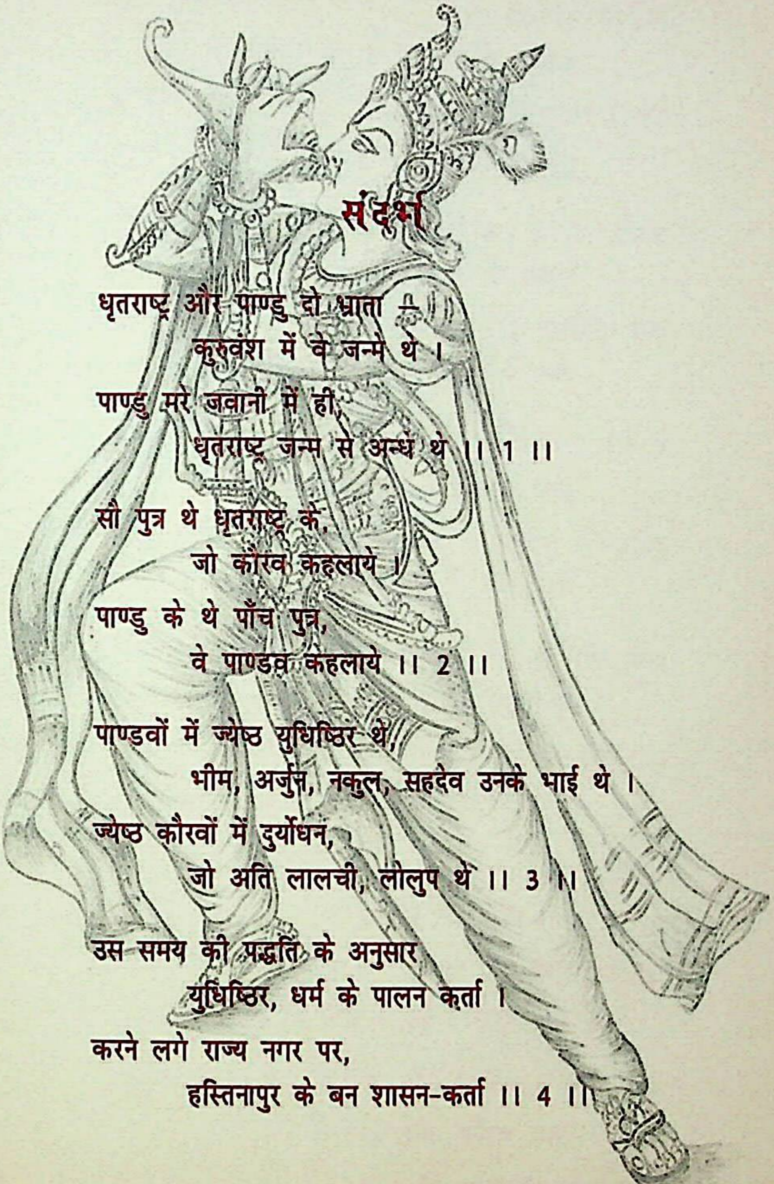

संदर्भ

धृतराष्ट्र और पाण्डु दो भ्राता —
कुरुवंश में वे जन्मे थे ।

पाण्डु मरे जवानी में ही,
धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे ।। 1 ।।

सौ पुत्र थे धृतराष्ट्र के,
जो कौरव कहलाये ।

पाण्डु के थे पाँच पुत्र,
वे पाण्डव कहलाये ।। 2 ।।

पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर थे,
भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव उनके भाई थे ।

ज्येष्ठ कौरवों में दुर्योधन,
जो अति लालची, लोलुप थे ।। 3 ।।

उस समय की पद्धति के अनुसार
युधिष्ठिर, धर्म के पालन कर्ता ।

करने लगे राज्य नगर पर,
हस्तिनापुर के बन शासन-कर्ता ।। 4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

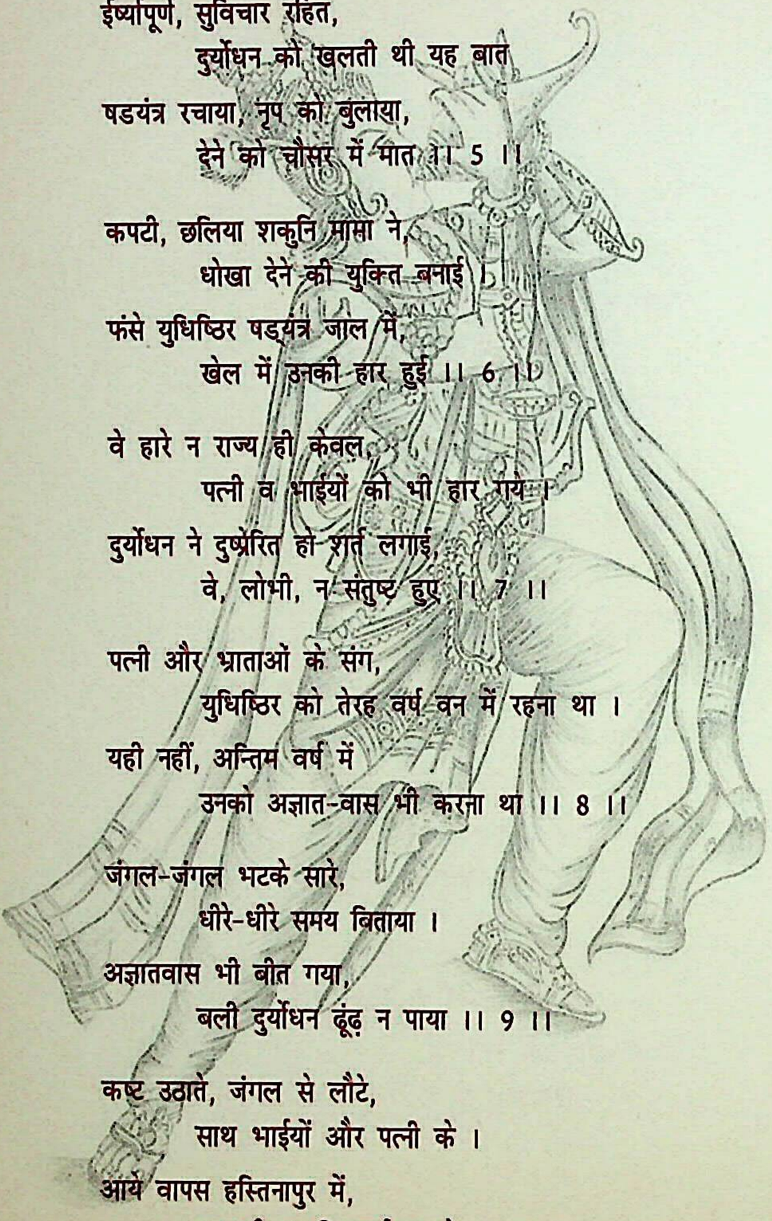

ईर्ष्यापूर्ण, सुविचार रहित,
दुर्योधन को खलती थी यह बात
षडयंत्र रचाया, नृप को बुलाया,
देने को चौसर में मात ।। 5 ।।

कपटी, छलिया शकुनि मामा ने,
धोखा देने की युक्ति बनाई ।
फंसे युधिष्ठिर षड्यंत्र जाल में,
खेल में उनकी हार हुई ।। 6 ।।

वे हारे न राज्य ही केवल,
पत्नी व भाईयों को भी हार गये ।
दुर्योधन ने दुष्प्रेरित हो शर्त लगाई,
वे, लोभी, न संतुष्ट हुए ।। 7 ।।

पत्नी और भ्राताओं के संग,
युधिष्ठिर को तेरह वर्ष वन में रहना था ।
यही नहीं, अन्तिम वर्ष में
उनको अज्ञात-वास भी करना था ।। 8 ।।

जंगल-जंगल भटके सारे,
धीरे-धीरे समय बिताया ।
अज्ञातवास भी बीत गया,
बली दुर्योधन ढूंढ़ न पाया ।। 9 ।।

कष्ट उठाते, जंगल से लौटे,
साथ भाईयों और पत्नी के ।
आये वापस हस्तिनापुर में,
वन की अवधि पूर्ण करके ।। 10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनसे राज्य को वापस माँगा,
पर दुर्योधन के बुरे विचार ।
वे बोले – "कौन-सा राज्य?
नहीं तुम्हारा उस पर अधिकार" ।। 11 ।।

सुन प्रत्युत्तर चौंके न युधिष्ठिर,
फिर मांगे केवल पाँच ग्राम ।
दुर्योधन बोले – "नहीं मैं दूंगा सुई बराबर,
बहुत बड़े होत हैं ग्राम" ।। 12 ।।

फिर आगे वे बोले – "तुम तो योद्धा हो,
लड़कर ले लो अपने अधिकार" ।
भीम, अर्जुन ने ली चुनौती,
बोले – "हम लेंगे लड़कर ही अधिकार" ।। 13 ।।

दु:खी, युधिष्ठिर चाहते थे शान्ति,
तब आये कृष्ण दोनों के मध्य ।
धृतराष्ट्र और दुर्योधन को समझाया, –
न लड़ो और तुम करो न्याय ।। 14 ।।

"यदि युद्ध तुम छेडोगे तो,
कुछ भी न शेष बचेगा ।
सभी ध्वस्त हो जायेगा,
सब सोच समझ के करना होगा" ।। 15 ।।

सब प्रयत्न पर हुए निरर्थक,
बन्द हुए दुर्योधन-नेत्र ।
फिर हुई युद्ध की तैयारी,
कुरूक्षेत्र बना तब युद्ध-क्षेत्र ।। 16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारिकाधीश, ईश्वर, कृष्ण ने,
अपनी सेना दुर्योधन को दी ।
और अर्जुन के बने सारथी,
कर प्रतिज्ञा स्वयं न लड़ने की ।। 17 ।।

अर्जुन, वीर, महान धनुर्धर,
संशयी बनकर त्रस्त हुए ।
संशय उनका दूर हो जिससे,
कृष्ण ने ऐसे वचन कहे ।। 18 ।।

चक्षुहीन पर जिज्ञासु धृतराष्ट्र,
रण-भूमि का वर्णन चाहते ।
संजय आज्ञाकारी सहायक,
उनको सब कुछ बतलाते ।। 19 ।।

यह संवाद कृष्ण-अर्जुन का,
संजय सुनते जाते थे ।
अक्षरशः वे धृतराष्ट्र को
बतलाते जाते थे ।। 20 ।।

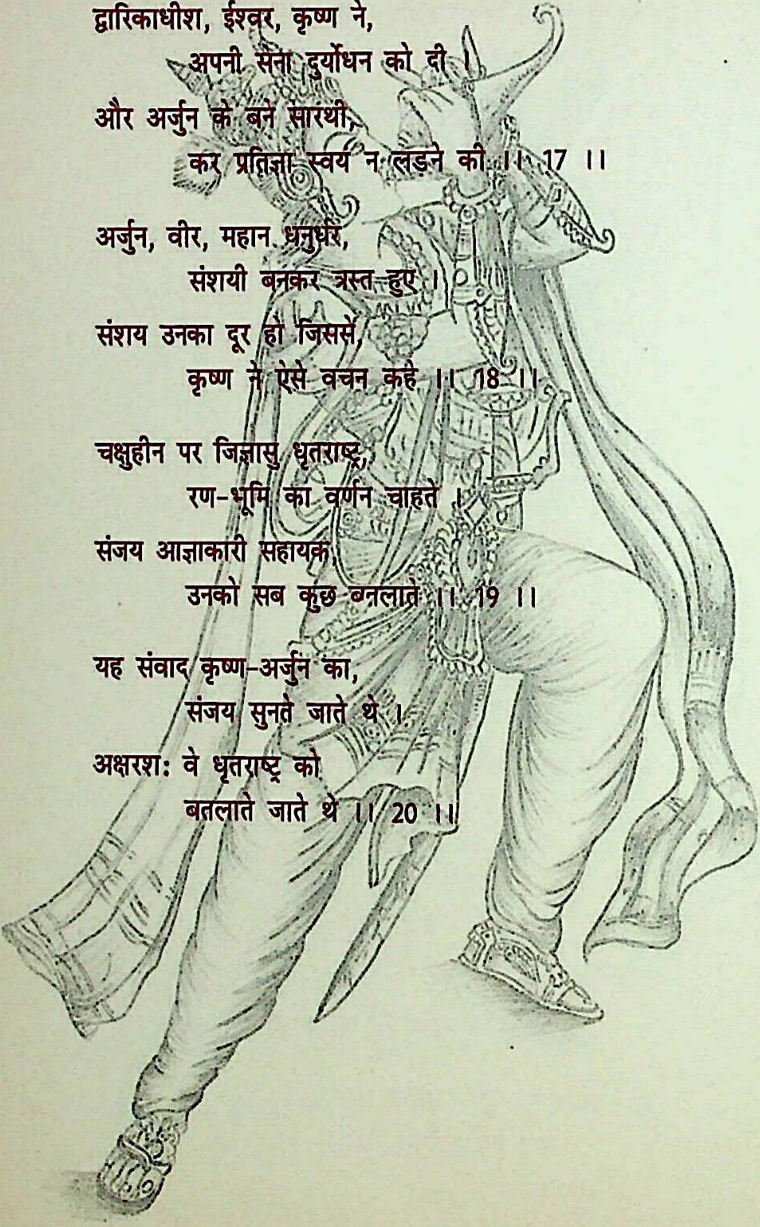

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

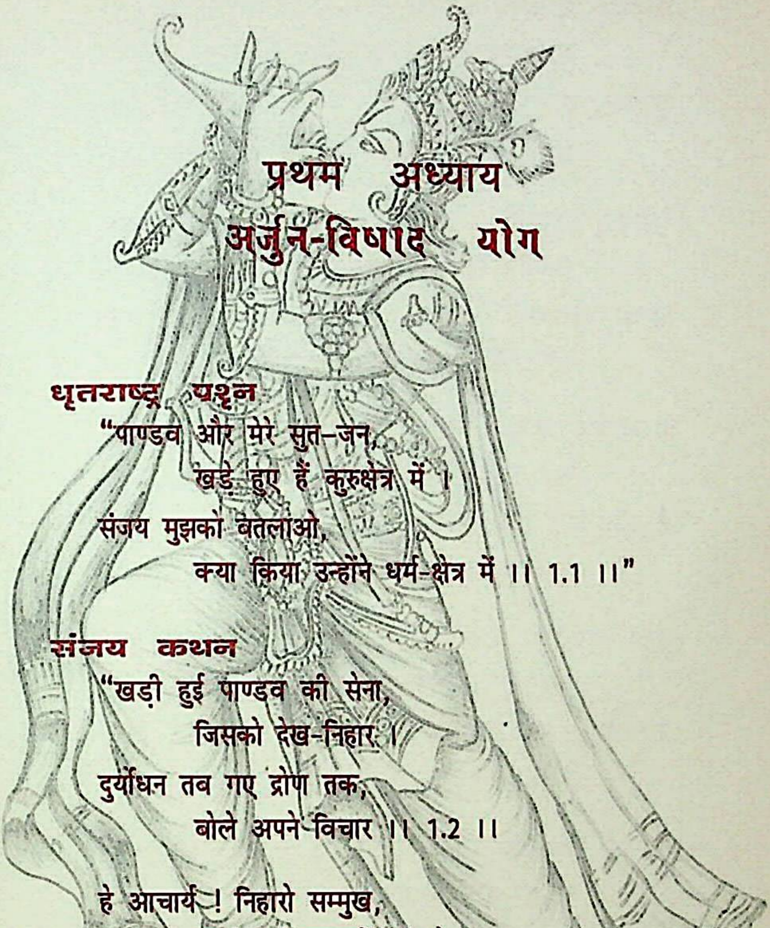

प्रथम अध्याय
अर्जुन-विषाद योग

धृतराष्ट्र प्रश्न

"पाण्डव और मेरे सुत-जन,
खड़े हुए हैं कुरुक्षेत्र में ।
संजय मुझको बतलाओ,
क्या किया उन्होंने धर्म-क्षेत्र में ।। 1.1 ।।"

संजय कथन

"खड़ी हुई पाण्डव की सेना,
जिसको देख-निहार ।
दुर्योधन तब गए द्रोण तक,
बोले अपने विचार ।। 1.2 ।।

हे आचार्य ! निहारो सम्मुख,
खड़ी हुई पाण्डवों की सेना ।
द्रुपद पुत्र ने किया पंक्तिबद्ध
देखो यह बलशाली सेना ।। 1.3 ।।

युयुधान, विराट, द्रुपद से,
महारथी महावीर ।
सभी कुशल रणनायक हैं,
भीमार्जुन सम हैं ये वीर ।। 1.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

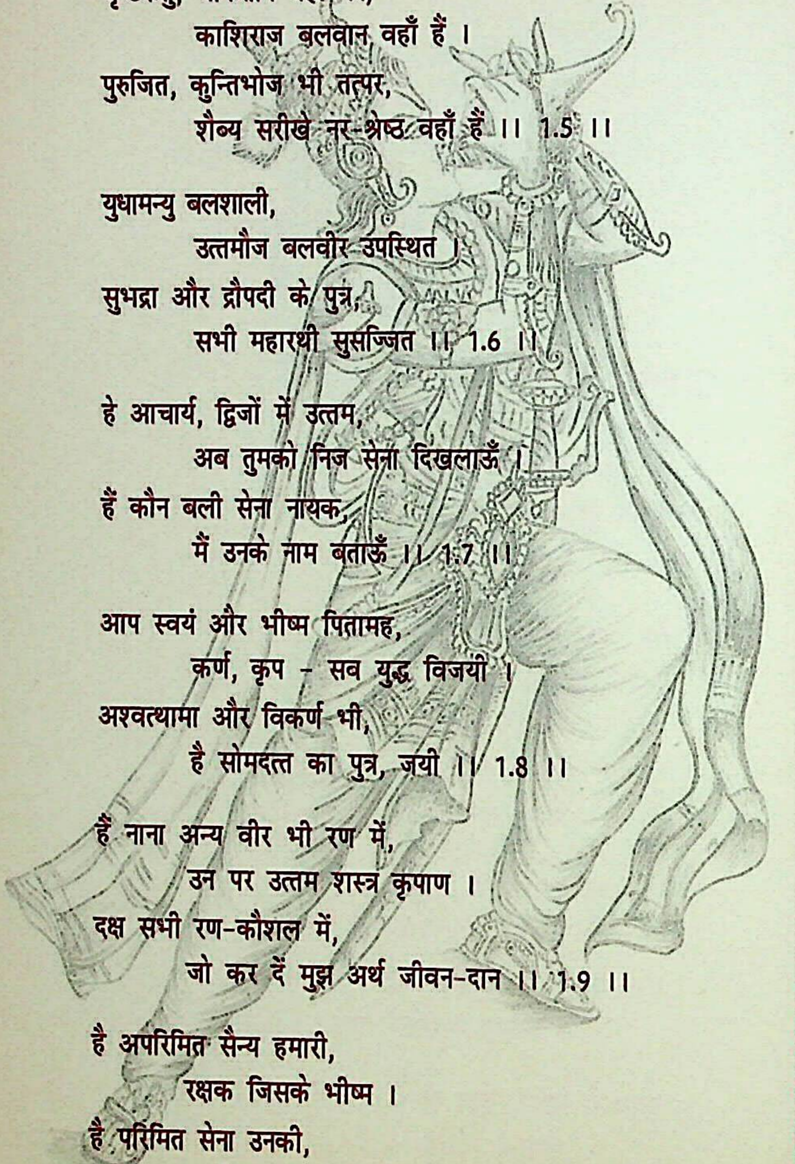

धृष्टकेतु, चेकितान वहाँ पर,
काशिराज बलवान वहाँ हैं ।
पुरुजित, कुन्तिभोज भी तत्पर,
शैब्य सरीखे नर-श्रेष्ठ वहाँ हैं ।। 1.5 ।।

युधामन्यु बलशाली,
उत्तमौज बलवीर उपस्थित ।
सुभद्रा और द्रौपदी के पुत्र,
सभी महारथी सुसज्जित ।। 1.6 ।।

हे आचार्य, द्विजों में उत्तम,
अब तुमको निज सेना दिखलाऊँ ।
हैं कौन बली सेना नायक,
मैं उनके नाम बताऊँ ।। 1.7 ।।

आप स्वयं और भीष्म पितामह,
कर्ण, कृप - सब युद्ध विजयी ।
अश्वत्थामा और विकर्ण भी,
है सोमदत्त का पुत्र, जयी ।। 1.8 ।।

हैं नाना अन्य वीर भी रण में,
उन पर उत्तम शस्त्र कृपाण ।
दक्ष सभी रण-कौशल में,
जो कर दें मुझ अर्थ जीवन-दान ।। 1.9 ।।

है अपरिमित सैन्य हमारी,
रक्षक जिसके भीष्म ।
है परिमित सेना उनकी,
उसके रक्षक भीम ।। 1.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

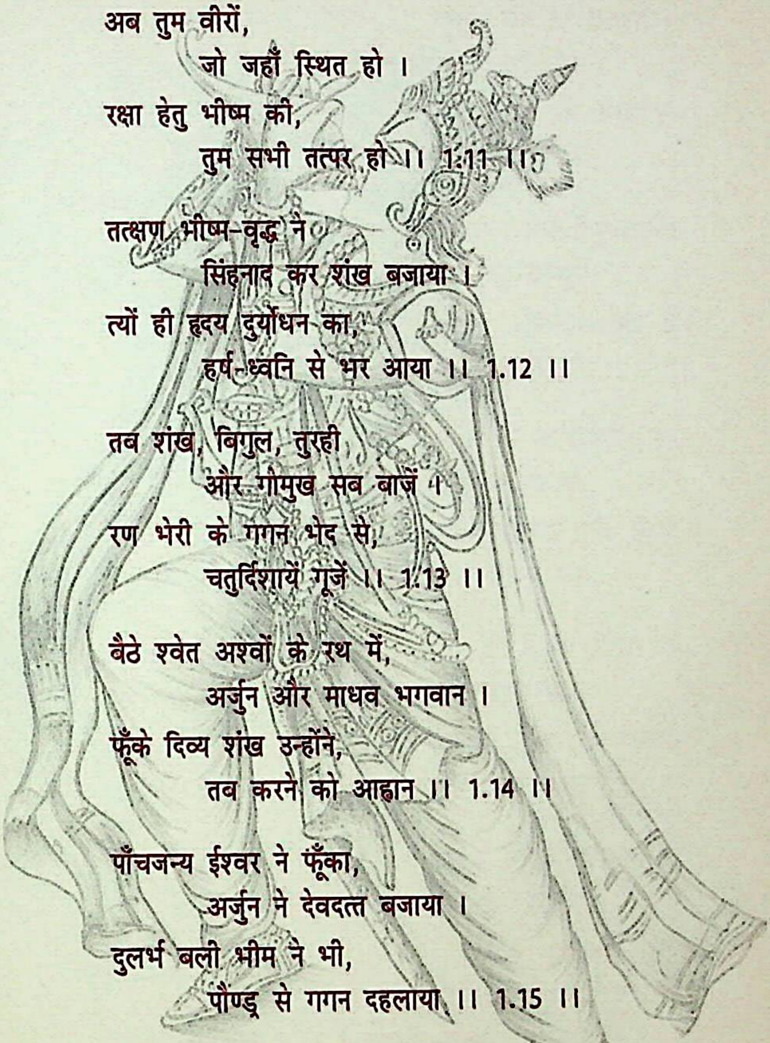

अब तुम वीरों,
जो जहाँ स्थित हो ।
रक्षा हेतु भीष्म की,
तुम सभी तत्पर हो ।। 1.11 ।।

तत्क्षण भीष्म-वृद्ध ने
सिंहनाद कर शंख बजाया ।
त्यों ही हृदय दुर्योधन का,
हर्ष-ध्वनि से भर आया ।। 1.12 ।।

तब शंख, बिगुल, तुरही
और गोमुख सब बाजें ।
रण भेरी के गगन भेद से,
चतुर्दिशायें गूंजें ।। 1.13 ।।

बैठे श्वेत अश्वों के रथ में,
अर्जुन और माधव भगवान ।
फूँके दिव्य शंख उन्होंने,
तब करने को आह्वान ।। 1.14 ।।

पाँचजन्य ईश्वर ने फूँका,
अर्जुन ने देवदत्त बजाया ।
दुलर्भ बली भीम ने भी,
पौण्ड्र से गगन दहलाया ।। 1.15 ।।

कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर नृप ने,
अनन्त विजय से नाद किया ।
सुघोष और मनिपुष्पक से क्रमशः,
नकुल और सहदेव ने भी वही किया ।। 1.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

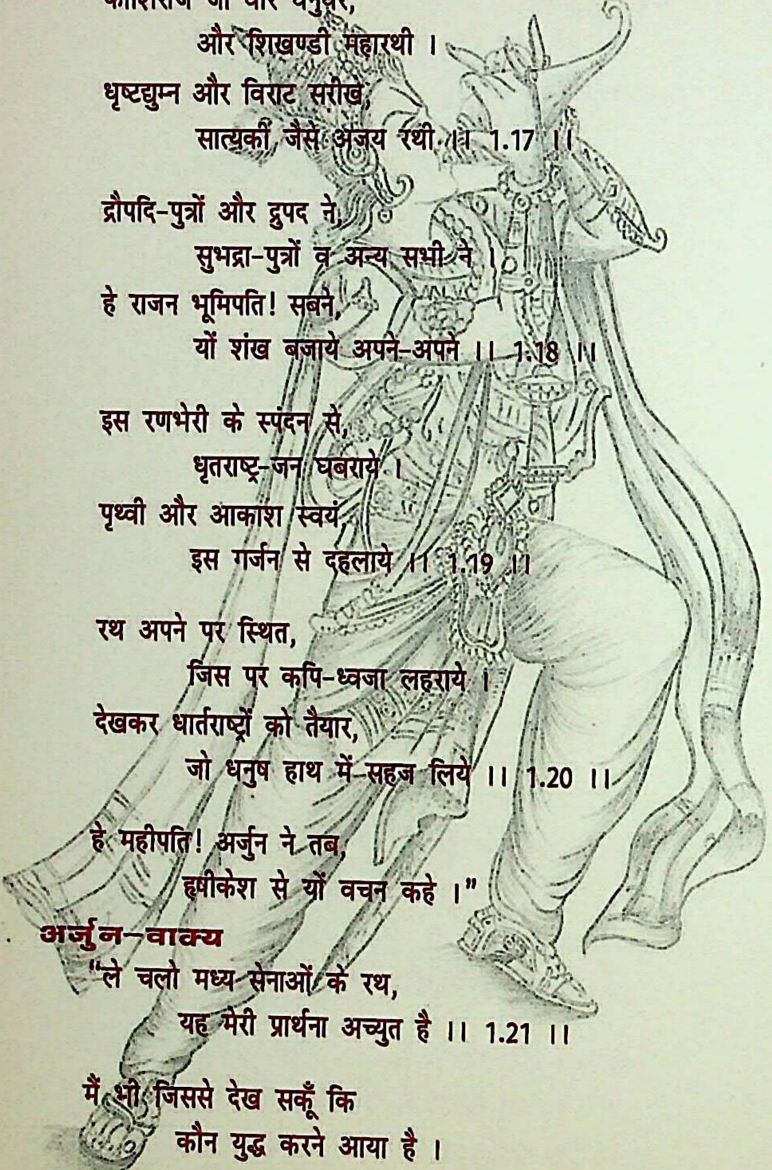

काशिराज जो वीर धनुर्धर,
और शिखण्डी महारथी ।
धृष्टद्युम्न और विराट सरीखे,
सात्यकी जैसे अजय रथी ।। 1.17 ।।

द्रौपदि-पुत्रों और द्रुपद ने,
सुभद्रा-पुत्रों व अन्य सभी ने ।
हे राजन भूमिपति! सबने,
यों शंख बजाये अपने-अपने ।। 1.18 ।।

इस रणभेरी के स्पंदन से,
धृतराष्ट्र-जन घबराये ।
पृथ्वी और आकाश स्वयं,
इस गर्जन से दहलाये ।। 1.19 ।।

रथ अपने पर स्थित,
जिस पर कपि-ध्वजा लहराये ।
देखकर धार्तराष्ट्रों को तैयार,
जो धनुष हाथ में सहज लिये ।। 1.20 ।।

हे महीपति! अर्जुन ने तब,
हृषीकेश से यों वचन कहे ।"

अर्जुन-वाक्य

"ले चलो मध्य सेनाओं के रथ,
यह मेरी प्रार्थना अच्युत है ।। 1.21 ।।

मैं भी जिससे देख सकूँ कि
कौन युद्ध करने आया है ।
इस अटल युद्ध की भूमि पर,
किस-किस से मुझको लड़ना है ।। 1.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं भी जान सकूँ उन सबको,
जो लड़ने को तैयार हुए ।
दुर्बुद्धि दुर्योधन हो प्रसन्न,
जिनके ऐसे विचार हुए ।। 1.23 ।।"

संजय–कथन

"हे भारत! अर्जुन ने ऐसे,
अपनी इच्छा को व्यक्त किया ।
हृषीकेश ने त्यों रथ श्रेष्ठ को,
सेनाओं के मध्य किया ।। 1.24 ।।

भीष्म, द्रोण के संग उपस्थित,
पृथ्वी भर के अन्य महीपत ।
अर्जुन! देखो, ये सब कुरुजन,
युद्ध-हेतु हैं यहाँ उपस्थित ।। 1.25 ।।

अर्जुन ने देखी सेनायें –
पिता, पितामह और गुरुजन ।
मामा, भाई, पुत्र, पौत्र संग,
हुए उपस्थित वहाँ मित्रजन ।। 1.26 ।।

बन्धु-बान्धव सभी उपस्थित,
अर्जुन ने जब देखा यों ।
कृपा-भाव तब मन में उमड़ा,
करने लगे विचार व्यक्त यों ।। 1.27 ।।"

अर्जुन–कथन

"कृष्ण देख यहाँ स्वजन-समूह,
जो लड़ने को तैयार हुआ।
मेरा गात तो कम्पन करता,
मेरा मुख भी शुष्क हुआ ।। 1.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा शरीर तो कम्पन करता,
रोम-रोम है खड़ा हुआ ।
गाण्डीव हाथ से खिसक रहा,
त्वचा में जलने का भाव हुआ ।। 1.29 ।।

मेरा मन है व्याकुल होता,
रह न सकूँ मैं खड़ा यहाँ ।
मैं भ्रमित हूँ केशव! अब,
देखूँ सब विपरीत यहाँ ।। 1.30 ।।

मैं न देखूँ कोई भलाई,
स्वजन-घात हो जिसका कारण ।
न ही चाहूँ विजय यहाँ पर,
न ही चाहिये राज्य, कृष्ण ।। 1.31 ।।

किस हेतु राज्य की इच्छा,
किस हेतु मुझे यह जीवन ही ।
जिन हेतु राज्य की इच्छा,
जिन हेतु, मुझे सुख ही ।। 1.32 ।।

वे सभी उपस्थित यहाँ युद्ध में,
प्राण, धनों का त्याग किया ।
आचार्य, पिता व पुत्र, पितामह,
सब ने युद्ध का संकल्प किया ।। 1.33 ।।

मामा, ससुर, पौत्र व साले,
ये बान्धव तत्पर मरने को ।
मधुसूदन! मैं इनको न मार सकूँगा,
हूँ तैयार स्वयं मरने को ।। 1.34 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

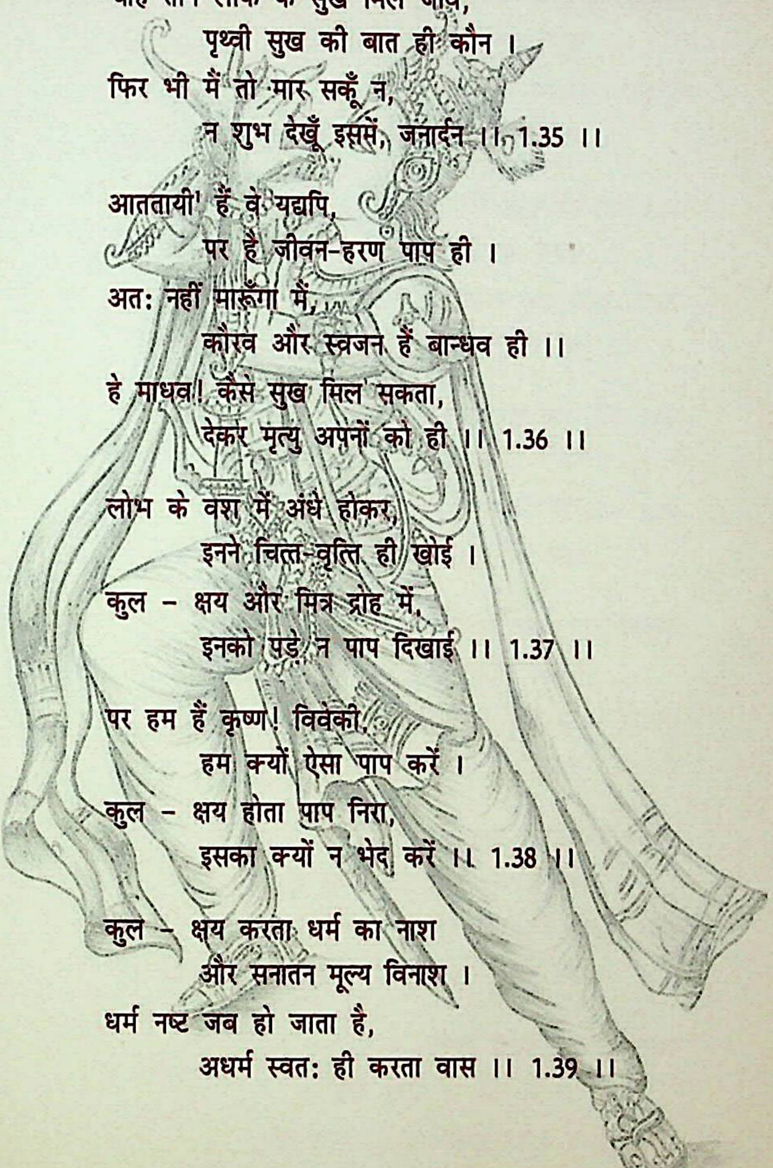

चाहे तीन लोक के सुख मिल जावें,
पृथ्वी सुख की बात ही कौन ।
फिर भी मैं तो मार सकूँ न,
न शुभ देखूँ इससें, जनार्दन ।। 1.35 ।।

आततायी[1] हैं वे यद्यपि,
पर है जीवन-हरण पाप ही ।
अत: नहीं मारूँगा मैं,
कौरव और स्वजन हैं बान्धव ही ।।
हे माधव! कैसे सुख मिल सकता,
देकर मृत्यु अपनों को ही ।। 1.36 ।।

लोभ के वश में अंधे होकर,
इनने चित्त-वृत्ति ही खोई ।
कुल – क्षय और मित्र द्रोह में,
इनको पड़े न पाप दिखाई ।। 1.37 ।।

पर हम हैं कृष्ण! विवेकी,
हम क्यों ऐसा पाप करें ।
कुल – क्षय होता पाप निरा,
इसका क्यों न भेद करें ।। 1.38 ।।

कुल – क्षय करता धर्म का नाश
और सनातन मूल्य विनाश ।
धर्म नष्ट जब हो जाता है,
अधर्म स्वत: ही करता वास ।। 1.39 ।।

---

1. अतिक्रमण करने वाला/ जो मारे जाने के योग्य हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

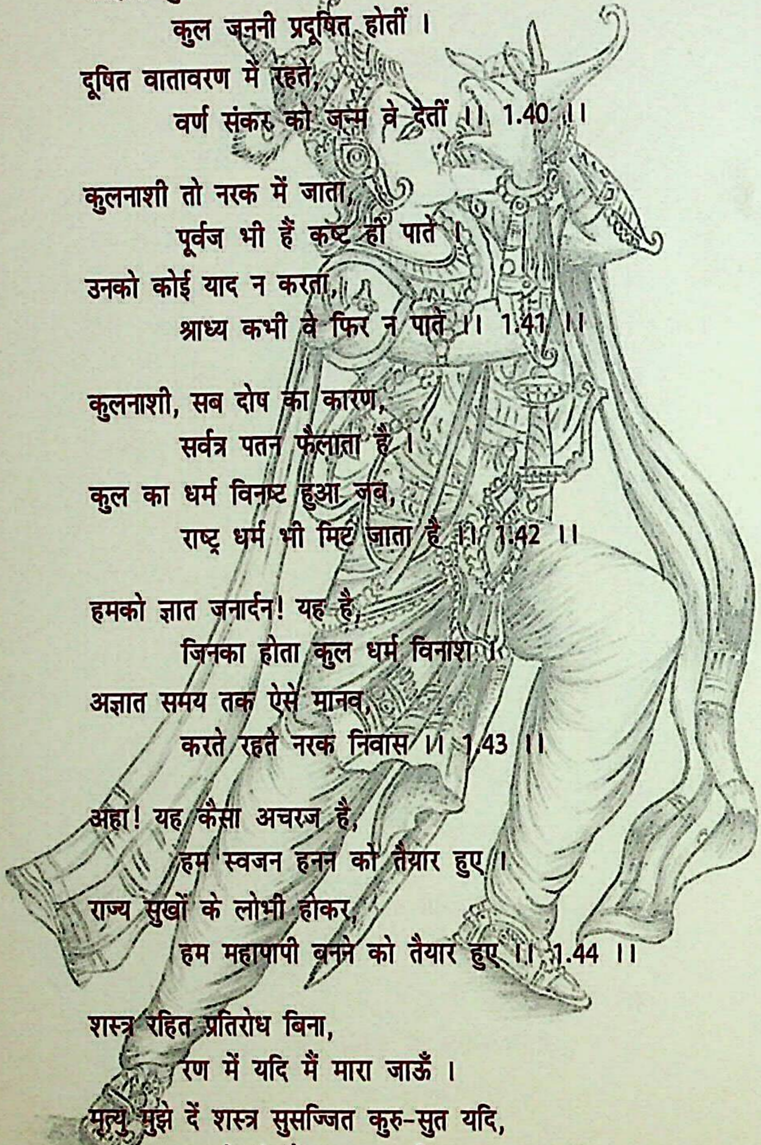

धर्महीन कुल यों जब होता,
कुल जननी प्रदूषित होतीं ।
दूषित वातावरण में रहते,
वर्ण संकर को जन्म वे देतीं ।। 1.40 ।।

कुलनाशी तो नरक में जाता,
पूर्वज भी हैं कष्ट हीं पाते ।
उनको कोई याद न करता,
श्राध्य कभी वे फिर न पाते ।। 1.41 ।।

कुलनाशी, सब दोष का कारण,
सर्वत्र पतन फैलाता है ।
कुल का धर्म विनष्ट हुआ जब,
राष्ट्र धर्म भी मिट जाता है ।। 1.42 ।।

हमको ज्ञात जनार्दन! यह है,
जिनका होता कुल धर्म विनाश ।
अज्ञात समय तक ऐसे मानव,
करते रहते नरक निवास ।। 1.43 ।।

अहा! यह कैसा अचरज है,
हम स्वजन हनन को तैयार हुए ।
राज्य सुखों के लोभी होकर,
हम महापापी बनने को तैयार हुए ।। 1.44 ।।

शस्त्र रहित प्रतिरोध बिना,
रण में यदि मैं मारा जाऊँ ।
मृत्यु मुझे दें शस्त्र सुसज्जित कुरु-सुत यदि,
इसको ही मैं अच्छा पाऊँ ।। 1.45 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संजय कथन

"रण-बीच वचन ऐसे कह-कर
अर्जुन रथ में बैठ गए ।
धनुष उतारा, बाण बिसारे,
और शोक में डूब गए ।। 1.46 ।।"

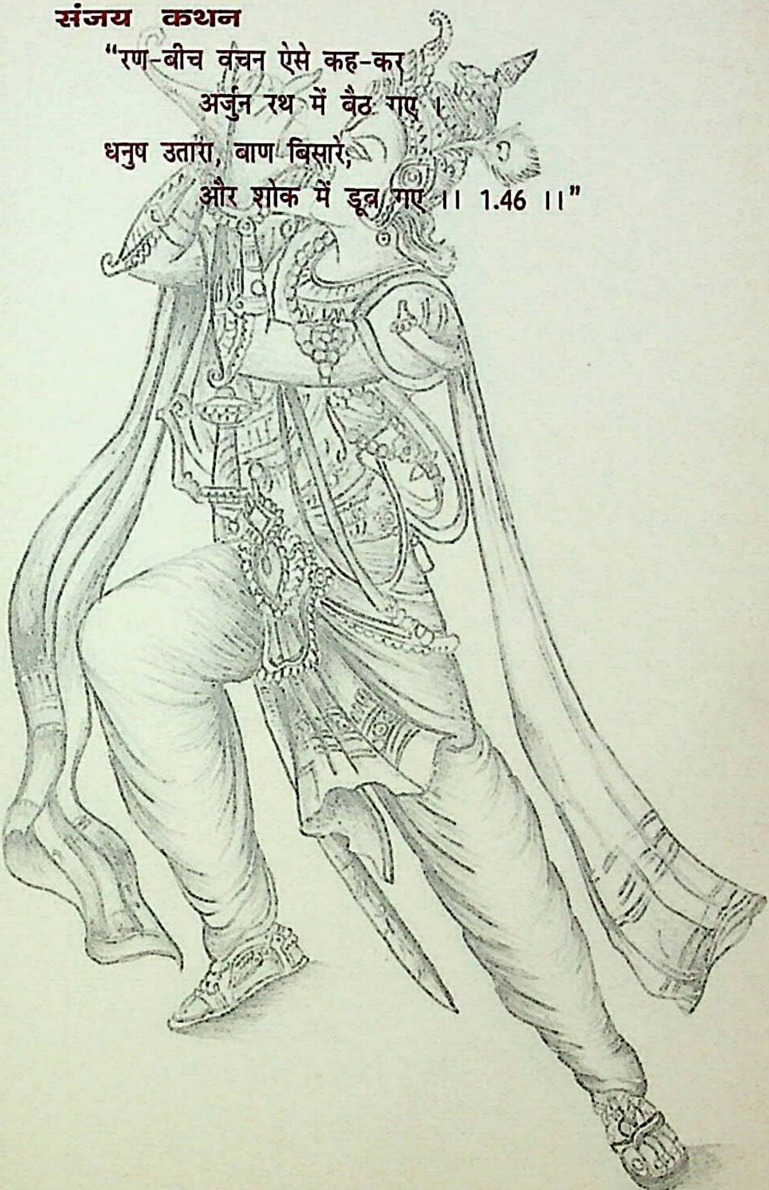

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

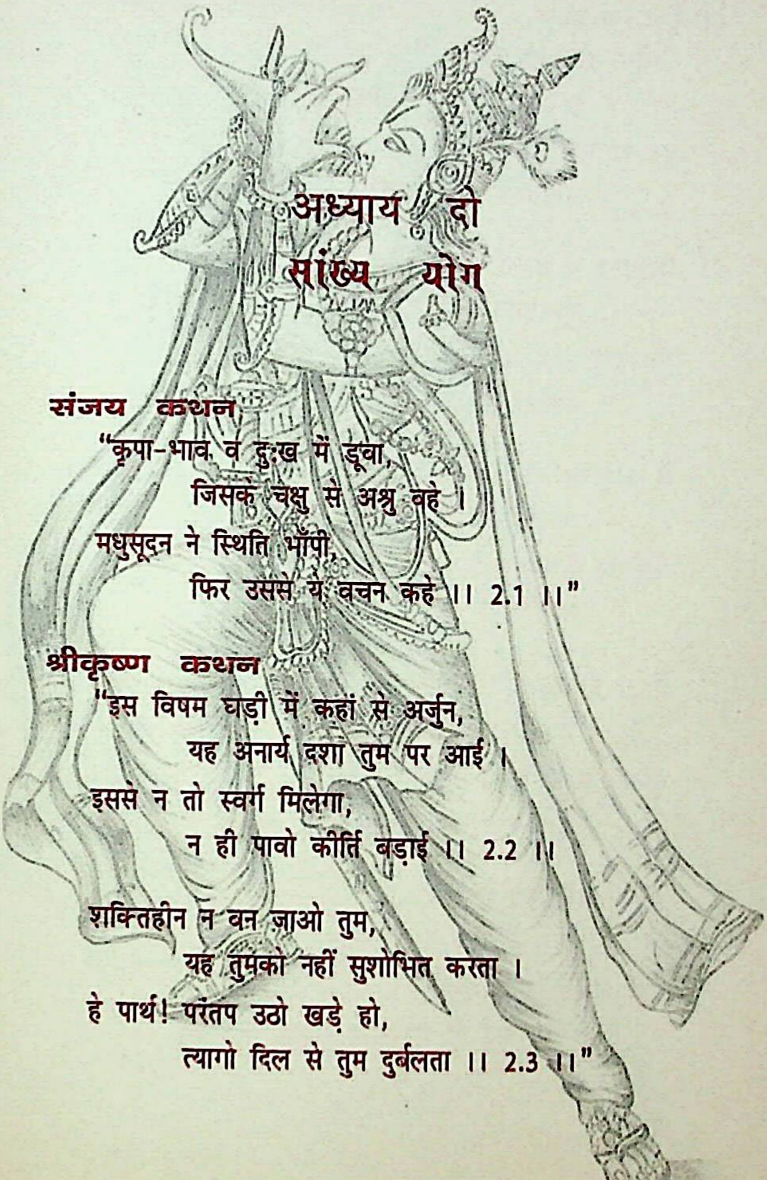

अध्याय दो
सांख्य योग

संजय कथन

"कृपा-भाव व दुःख में डूबा,
जिसके चक्षु से अश्रु बहे ।
मधुसूदन ने स्थिति भाँपी,
फिर उससे ये वचन कहे ।। 2.1 ।।"

श्रीकृष्ण कथन

"इस विषम घड़ी में कहां से अर्जुन,
यह अनार्य दशा तुम पर आई ।
इससे न तो स्वर्ग मिलेगा,
न ही पावो कीर्ति बड़ाई ।। 2.2 ।।

शक्तिहीन न बन जाओ तुम,
यह तुमको नहीं सुशोभित करता ।
हे पार्थ! परंतप उठो खड़े हो,
त्यागो दिल से तुम दुर्बलता ।। 2.3 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुन-कथन

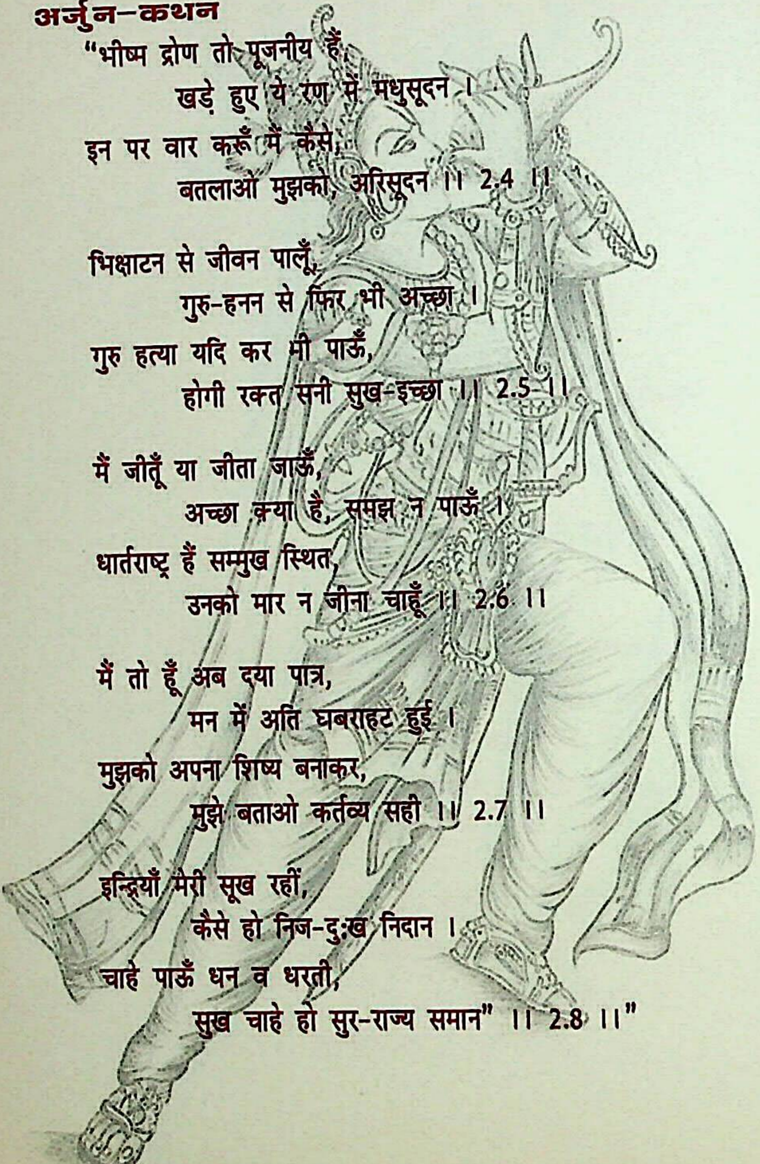

"भीष्म द्रोण तो पूजनीय हैं,
खड़े हुए ये रण में मधुसूदन ।
इन पर वार करूँ मैं कैसे,
बतलाओ मुझको, अरिसूदन ।। 2.4 ।।

भिक्षाटन से जीवन पालूँ,
गुरु-हनन से फिर भी अच्छा ।
गुरु हत्या यदि कर भी पाऊँ,
होगी रक्त सनी सुख-इच्छा ।। 2.5 ।।

मैं जीतूँ या जीता जाऊँ,
अच्छा क्या है, समझ न पाऊँ ।
धार्तराष्ट्र हैं सम्मुख स्थित,
उनको मार न जीना चाहूँ ।। 2.6 ।।

मैं तो हूँ अब दया पात्र,
मन में अति घबराहट हुई ।
मुझको अपना शिष्य बनाकर,
मुझे बताओ कर्तव्य सही ।। 2.7 ।।

इन्द्रियाँ मेरी सूख रहीं,
कैसे हो निज-दुःख निदान ।
चाहे पाऊँ धन व धरती,
सुख चाहे हो सुर-राज्य समान" ।। 2.8 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

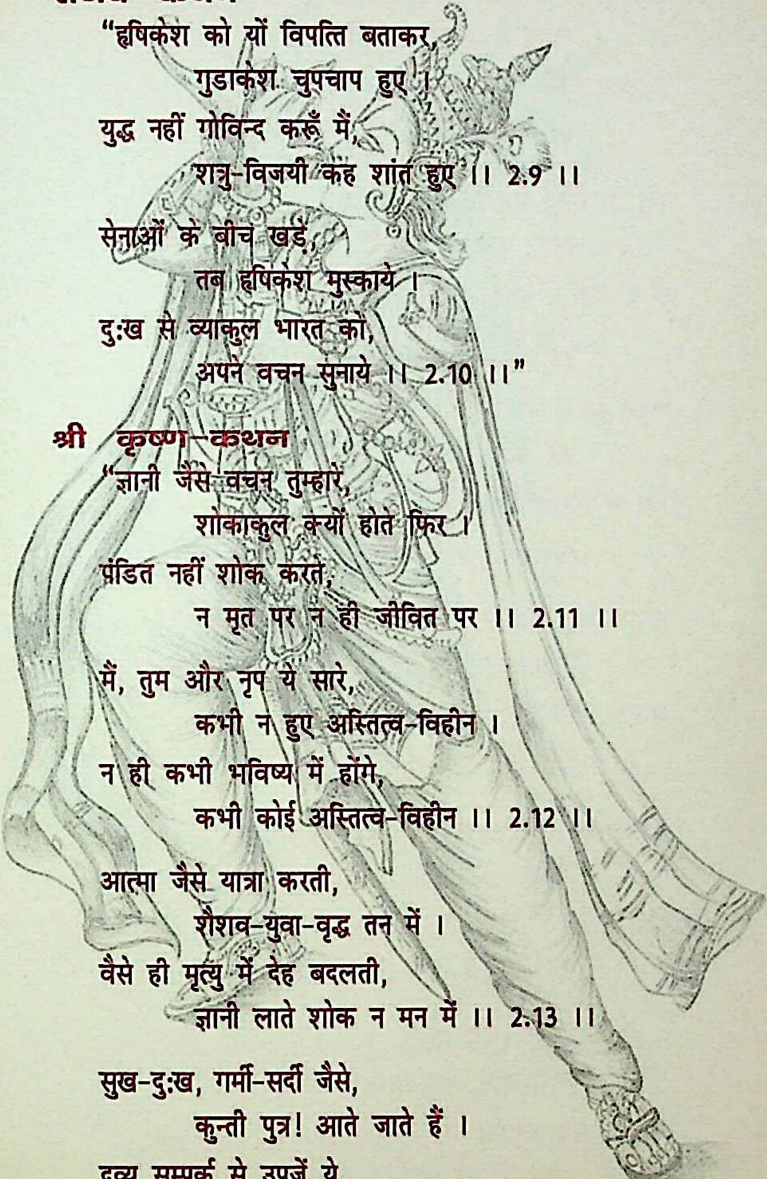

संजय कथन

"हृषिकेश को यों विपत्ति बताकर,
गुडाकेश चुपचाप हुए ।
युद्ध नहीं गोविन्द करूँ मैं,
शत्रु-विजयी कह शांत हुए ।। 2.9 ।।

सेनाओं के बीच खड़े,
तब हृषिकेश मुस्काये ।
दुःख से व्याकुल भारत को,
अपने वचन सुनाये ।। 2.10 ।।"

श्री कृष्ण-कथन

"ज्ञानी जैसे वचन तुम्हारे,
शोकाकुल क्यों होते फिर ।
पंडित नहीं शोक करते,
न मृत पर न ही जीवित पर ।। 2.11 ।।

मैं, तुम और नृप ये सारे,
कभी न हुए अस्तित्व-विहीन ।
न ही कभी भविष्य में होंगे,
कभी कोई अस्तित्व-विहीन ।। 2.12 ।।

आत्मा जैसे यात्रा करती,
शैशव-युवा-वृद्ध तन में ।
वैसे ही मृत्यु में देह बदलती,
ज्ञानी लाते शोक न मन में ।। 2.13 ।।

सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी जैसे,
कुन्ती पुत्र! आते जाते हैं ।
द्रव्य सम्पर्क से उपजें ये,
भारत! सहो इन्हें, क्षणभंगुर हैं ।। 2.14 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीर पुरुष जो सुख में, दुःख में,
रखता है निज-भाव समान ।
हे श्रेष्ठ पुरुष! कर लेता नर वह,
इस जीवन में ही अमृत-पान ।। 2.15 ।।

सत् ही नित्य सनातन है,
असत् सदा बदलता है ।
ज्ञानी-दर्शी ने अध्ययन कर,
ऐसा ही बतलाया है ।। 2.16 ।।

सर्वत्र व्यापी जो तन में,
वह सदा अविनाशी है ।
मार न सकता उसको कोई,
वह अमर और अविनाशी है ।। 2.17 ।।

नाशवान है तन ही केवल,
नित्य-आत्म का जिसमें वास ।
भारत! जानों माप-हीन वह,
और करो अब युद्ध-प्रयास ।। 2.18 ।।

अज्ञानी तो यही समझता,
कि वह मारे और मरे ।
अटल सत्य है उल्टा लेकिन,
वह मारे, न स्वयं मरे ।। 2.19 ।।

न ही जनमता, न ही मरता,
नित्य-जीव, वह अस्त न होता ।
अनादि-सनातन और शाश्वत,
तन-हनन पर अमर ही रहता ।। 2.20 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह नित्य, अजन्म, अव्यय, अविनाशी
जो इस भेद का ज्ञाता ।
हे पार्थ! कैसे हो सकता वह घातक,
व कैसे घात करा सकता ।। 2.21 ।।

जीर्ण वस्त्र को त्यागे नर ज्यों,
नया वस्त्र धारण करने को ।
जीर्ण शरीर त्यागे त्यों देही,
नव-शरीर में जाने को ।। 2.22 ।।

शस्त्र न छेद सके जिसको,
आग जिसे न जला सकती ।
जल से जो न भींग सके,
वायु जिसे न सुखा सकती ।। 2.23 ।।

न ही कटता, न ही जलता,
न ही घुलता, न ही सूखता ।
नित्य, सनातन, सर्वव्यापी,
अचल और स्थिर रहता ।। 2.24 ।।

है अदृश्य, अचिन्त्य, अविकार यह,
ऐसा माना जाता है ।
अनित्य शरीर पर दुःख न करना,
समझो यही बुद्धिमत्ता है ।। 2.25 ।।

जन्म-मरण का चक्र हमेशा,
मानो चलता रहता है ।
न शोक करो महाबाहु! कभी,
शोक का कोई न कारण है ।। 2.26 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

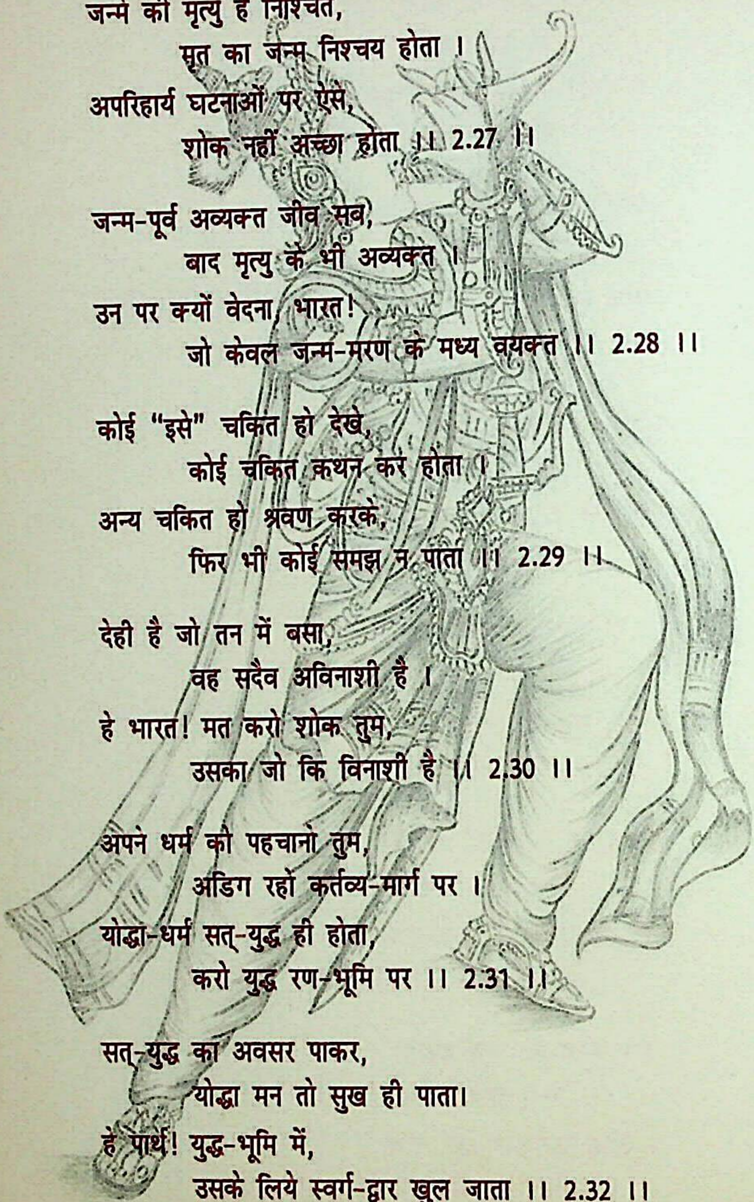

जन्मे की मृत्यु है निश्चित,
मृत का जन्म निश्चय होता ।
अपरिहार्य घटनाओं पर ऐसे,
शोक नहीं अच्छा होता ।। 2.27 ।।

जन्म-पूर्व अव्यक्त जीव सब,
बाद मृत्यु के भी अव्यक्त ।
उन पर क्यों वेदना, भारत!
जो केवल जन्म-मरण के मध्य वयक्त ।। 2.28 ।।

कोई "इसे" चकित हो देखे,
कोई चकित कथन कर होता ।
अन्य चकित हो श्रवण करके,
फिर भी कोई समझ न पाता ।। 2.29 ।।

देही है जो तन में बसा,
वह सदैव अविनाशी है ।
हे भारत! मत करो शोक तुम,
उसका जो कि विनाशी है ।। 2.30 ।।

अपने धर्म को पहचानो तुम,
अडिग रहो कर्तव्य-मार्ग पर ।
योद्धा-धर्म सत्-युद्ध ही होता,
करो युद्ध रण-भूमि पर ।। 2.31 ।।

सत्-युद्ध का अवसर पाकर,
योद्धा मन तो सुख ही पाता।
हे पार्थ! युद्ध-भूमि में,
उसके लिये स्वर्ग-द्वार खुल जाता ।। 2.32 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

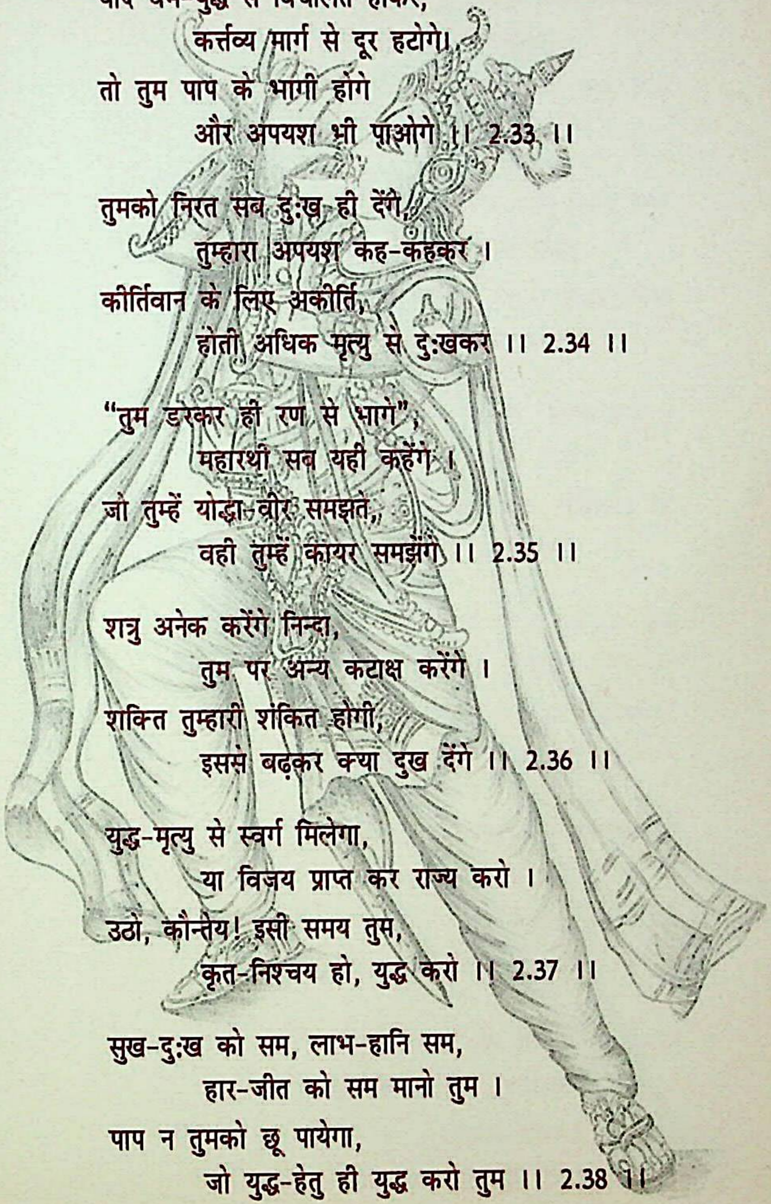

यदि धर्म-युद्ध से विचलित होकर,
कर्त्तव्य मार्ग से दूर हटोगे।
तो तुम पाप के भागी होंगे
और अपयश भी पाओगे ।। 2.33 ।।

तुमको निरत सब दु:ख ही देंगे,
तुम्हारा अपयश कह-कहकर ।
कीर्तिवान के लिए अकीर्ति,
होती अधिक मृत्यु से दु:खकर ।। 2.34 ।।

"तुम डरकर ही रण से भागे",
महारथी सब यही कहेंगे ।
जो तुम्हें योद्धा-वीर समझते,
वही तुम्हें कायर समझेंगे ।। 2.35 ।।

शत्रु अनेक करेंगे निन्दा,
तुम पर अन्य कटाक्ष करेंगे ।
शक्ति तुम्हारी शंकित होगी,
इससे बढ़कर क्या दुख देंगे ।। 2.36 ।।

युद्ध-मृत्यु से स्वर्ग मिलेगा,
या विजय प्राप्त कर राज्य करो ।
उठो, कौन्तेय! इसी समय तुम,
कृत-निश्चय हो, युद्ध करो ।। 2.37 ।।

सुख-दु:ख को सम, लाभ-हानि सम,
हार-जीत को सम मानो तुम ।
पाप न तुमको छू पायेगा,
जो युद्ध-हेतु ही युद्ध करो तुम ।। 2.38 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

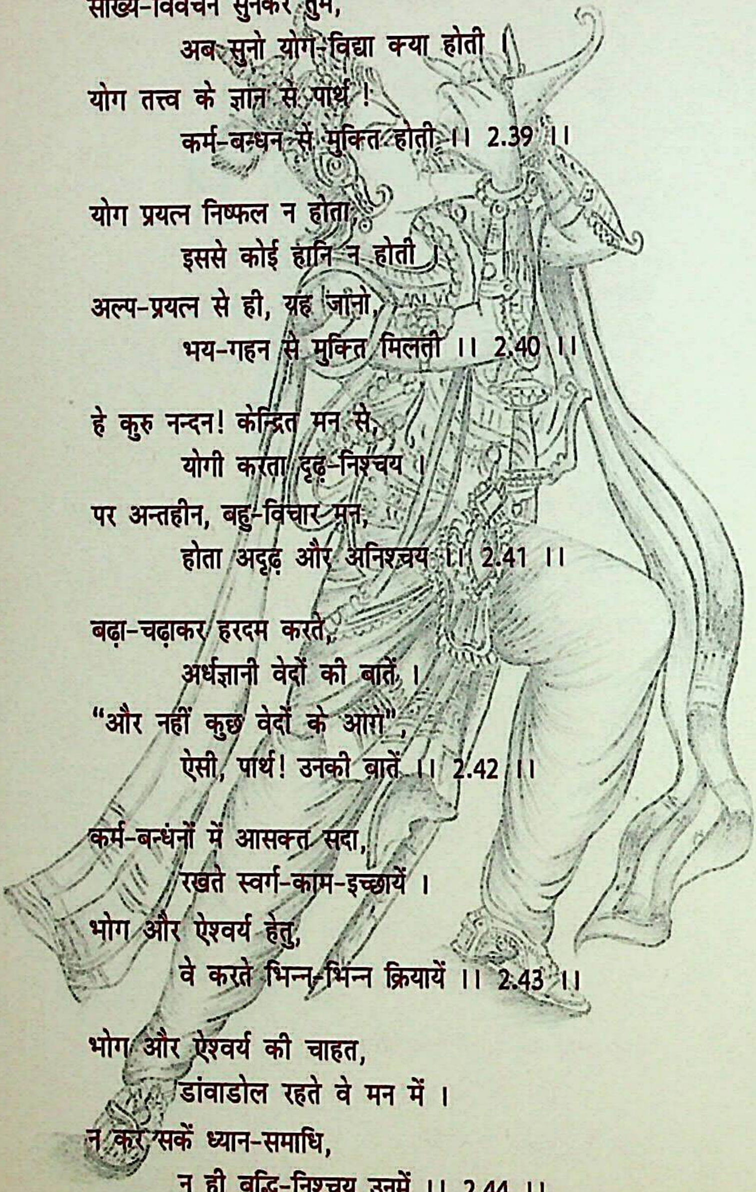

सांख्य-विवेचन सुनकर तुम,
अब सुनो योग-विद्या क्या होती ।
योग तत्त्व के ज्ञान से पार्थ !
कर्म-बन्धन से मुक्ति होती ।। 2.39 ।।

योग प्रयत्न निष्फल न होता,
इससे कोई हानि न होती ।
अल्प-प्रयत्न से ही, यह जानो,
भय-गहन से मुक्ति मिलती ।। 2.40 ।।

हे कुरु नन्दन! केन्द्रित मन से,
योगी करता दृढ़-निश्चय ।
पर अन्तहीन, बहु-विचार मन,
होता अदृढ़ और अनिश्चय ।। 2.41 ।।

बढ़ा-चढ़ाकर हरदम करते,
अर्धज्ञानी वेदों की बातें ।
"और नहीं कुछ वेदों के आगे",
ऐसी, पार्थ! उनकी बातें ।। 2.42 ।।

कर्म-बन्धनों में आसक्त सदा,
रखते स्वर्ग-काम-इच्छायें ।
भोग और ऐश्वर्य हेतु,
वे करते भिन्न-भिन्न क्रियायें ।। 2.43 ।।

भोग और ऐश्वर्य की चाहत,
डांवाडोल रहते वे मन में ।
न कर सकें ध्यान-समाधि,
न ही बुद्धि-निश्चय उनमें ।। 2.44 ।।

1. द्वन्द्व-रहित ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

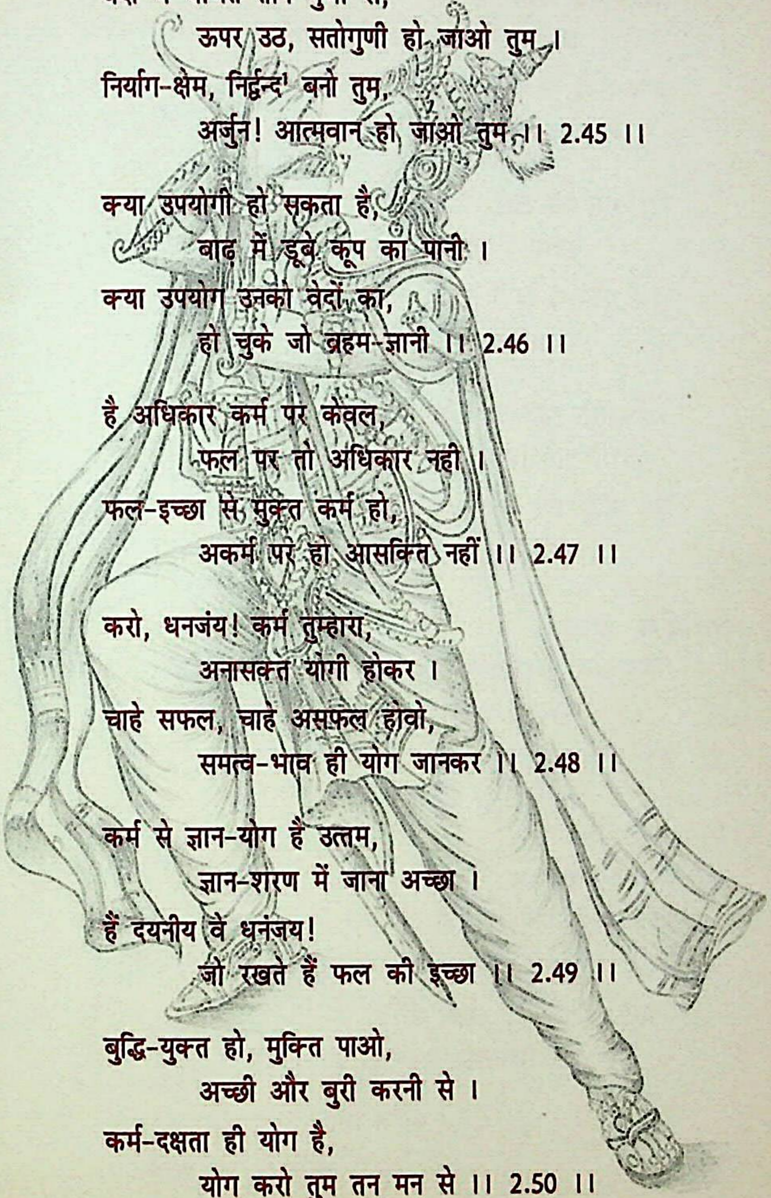

वेदों में वर्णित तीन गुणों से,
ऊपर उठ, सतोगुणी हो जाओ तुम ।
निर्याग-क्षेम, निर्द्वन्द[1] बनो तुम,
अर्जुन! आत्मवान हो जाओ तुम ।। 2.45 ।।

क्या उपयोगी हो सकता है,
बाढ़ में डूबे कूप का पानी ।
क्या उपयोग उनको वेदों का,
हो चुके जो ब्रह्म-ज्ञानी ।। 2.46 ।।

है अधिकार कर्म पर केवल,
फल पर तो अधिकार नही ।
फल-इच्छा से मुक्त कर्म हो,
अकर्म पर हो आसक्ति नहीं ।। 2.47 ।।

करो, धनजंय! कर्म तुम्हारा,
अनासक्त योगी होकर ।
चाहे सफल, चाहे असफल होवो,
समत्व-भाव ही योग जानकर ।। 2.48 ।।

कर्म से ज्ञान-योग है उत्तम,
ज्ञान-शरण में जाना अच्छा ।
हैं दयनीय वे धनंजय!
जो रखते हैं फल की इच्छा ।। 2.49 ।।

बुद्धि-युक्त हो, मुक्ति पाओ,
अच्छी और बुरी करनी से ।
कर्म-दक्षता ही योग है,
योग करो तुम तन मन से ।। 2.50 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

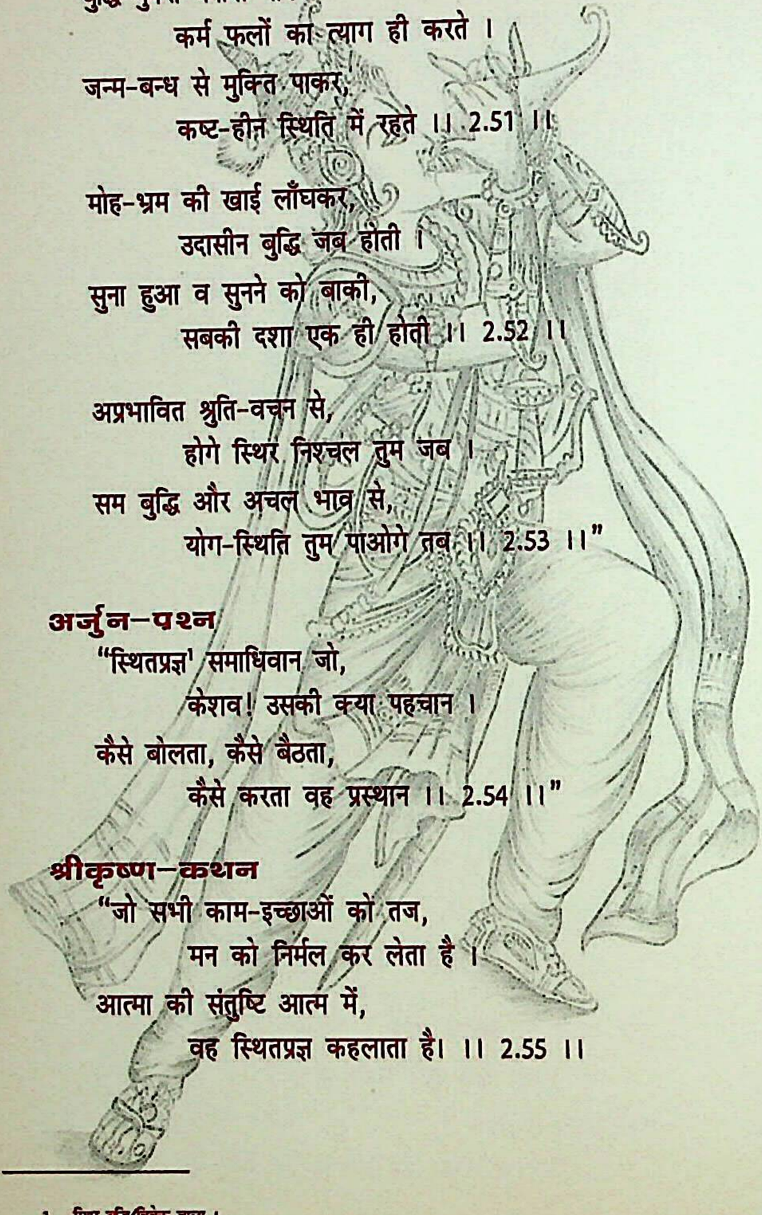

बुद्धि-युक्त मनीषी मानव
        कर्म फलों का त्याग ही करते ।
जन्म-बन्ध से मुक्ति पाकर,
        कष्ट-हीन स्थिति में रहते ।। 2.51 ।।

मोह-भ्रम की खाई लाँघकर,
        उदासीन बुद्धि जब होती ।
सुना हुआ व सुनने को बाकी,
        सबकी दशा एक ही होती ।। 2.52 ।।

अप्रभावित श्रुति-वचन से,
        होगे स्थिर निश्चल तुम जब ।
सम बुद्धि और अचल भाव से,
        योग-स्थिति तुम पाओगे तब ।। 2.53 ।।"

अर्जुन-प्रश्न

"स्थितप्रज्ञ[1] समाधिवान जो,
        केशव! उसकी क्या पहचान ।
कैसे बोलता, कैसे बैठता,
        कैसे करता वह प्रस्थान ।। 2.54 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"जो सभी काम-इच्छाओं को तज,
        मन को निर्मल कर लेता है ।
आत्मा की संतुष्टि आत्म में,
        वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। ।। 2.55 ।।

---

1. स्थिर बुद्धि/विवेक वाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

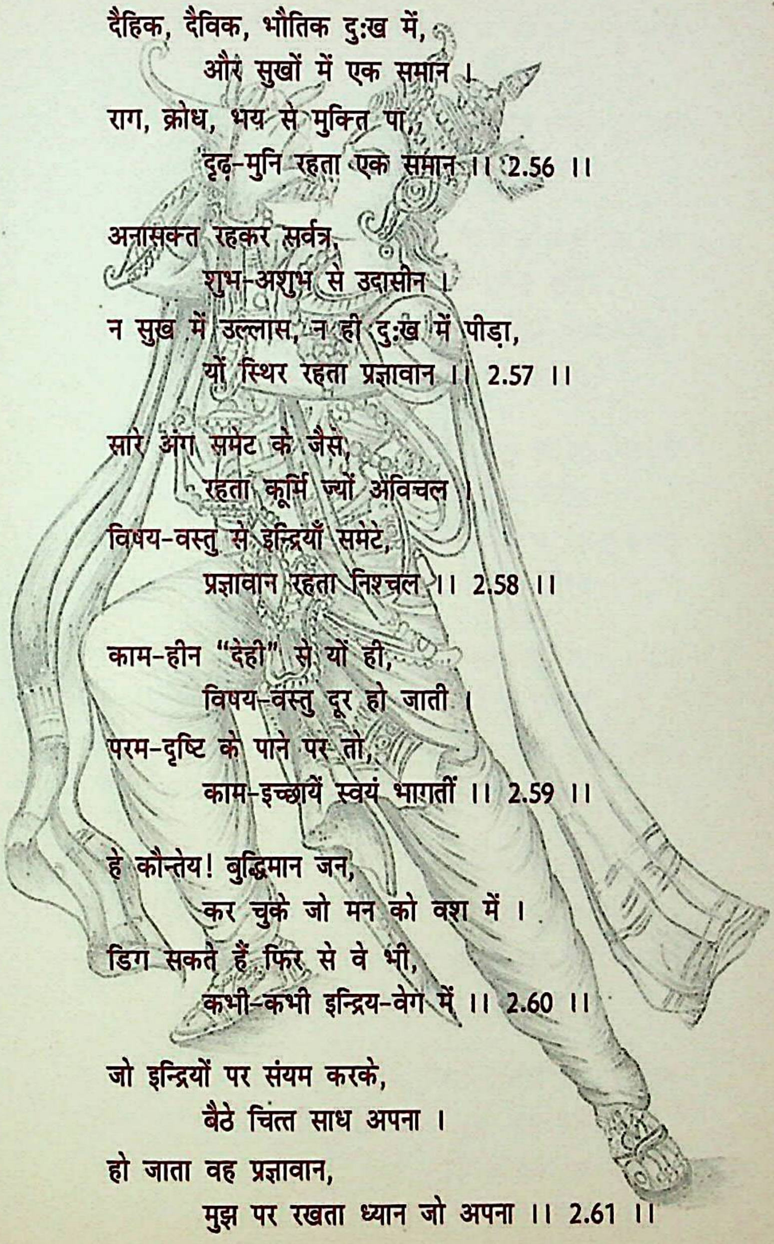

दैहिक, दैविक, भौतिक दुःख में,
और सुखों में एक समान ।
राग, क्रोध, भय से मुक्ति पा,
दृढ़-मुनि रहता एक समान ।। 2.56 ।।

अनासक्त रहकर सर्वत्र,
शुभ-अशुभ से उदासीन ।
न सुख में उल्लास, न ही दुःख में पीड़ा,
यों स्थिर रहता प्रज्ञावान ।। 2.57 ।।

सारे अंग समेट के जैसे,
रहता कूर्म ज्यों अविचल ।
विषय-वस्तु से इन्द्रियाँ समेटे,
प्रज्ञावान रहता निश्चल ।। 2.58 ।।

काम-हीन "देही" से यों ही,
विषय-वस्तु दूर हो जाती ।
परम-दृष्टि के पाने पर तो,
काम-इच्छायें स्वयं भागतीं ।। 2.59 ।।

हे कौन्तेय! बुद्धिमान जन,
कर चुके जो मन को वश में ।
डिग सकते हैं फिर से वे भी,
कभी-कभी इन्द्रिय-वेग में ।। 2.60 ।।

जो इन्द्रियों पर संयम करके,
बैठे चित्त साध अपना ।
हो जाता वह प्रज्ञावान,
मुझ पर रखता ध्यान जो अपना ।। 2.61 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

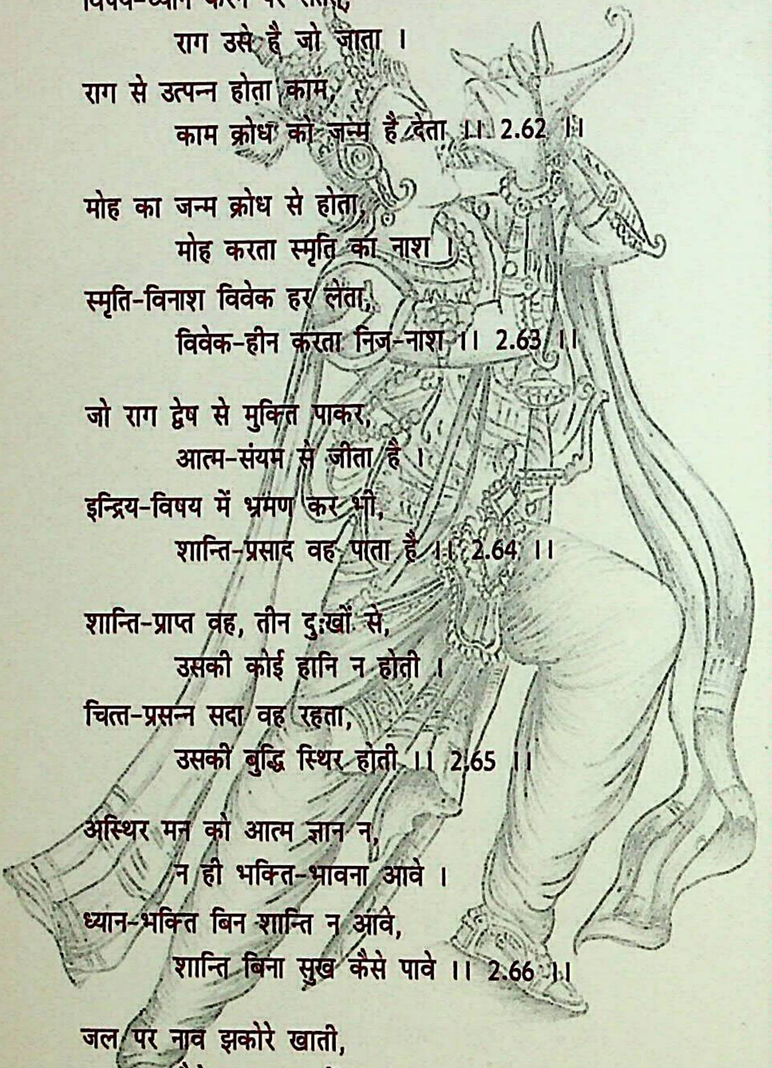

विषय-ध्यान करने पर संतत,
राग उसे है जो जाता ।
राग से उत्पन्न होता काम,
काम क्रोध को जन्म है देता ।। 2.62 ।।

मोह का जन्म क्रोध से होता,
मोह करता स्मृति का नाश ।
स्मृति-विनाश विवेक हर लेता,
विवेक-हीन करता निज-नाश ।। 2.63 ।।

जो राग द्वेष से मुक्ति पाकर,
आत्म-संयम से जीता है ।
इन्द्रिय-विषय में भ्रमण कर भी,
शान्ति-प्रसाद वह पाता है ।। 2.64 ।।

शान्ति-प्राप्त वह, तीन दुःखों से,
उसकी कोई हानि न होती ।
चित्त-प्रसन्न सदा वह रहता,
उसकी बुद्धि स्थिर होती ।। 2.65 ।।

अस्थिर मन को आत्म ज्ञान न,
न ही भक्ति-भावना आवे ।
ध्यान-भक्ति बिन शान्ति न आवे,
शान्ति बिना सुख कैसे पावे ।। 2.66 ।।

जल पर नाव झकोरे खाती,
जैसे हवा का झोंका खाकर ।
प्रज्ञानाश कर देता है मन,
इन्द्रियों से त्यों विचलित होकर ।। 2.67 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

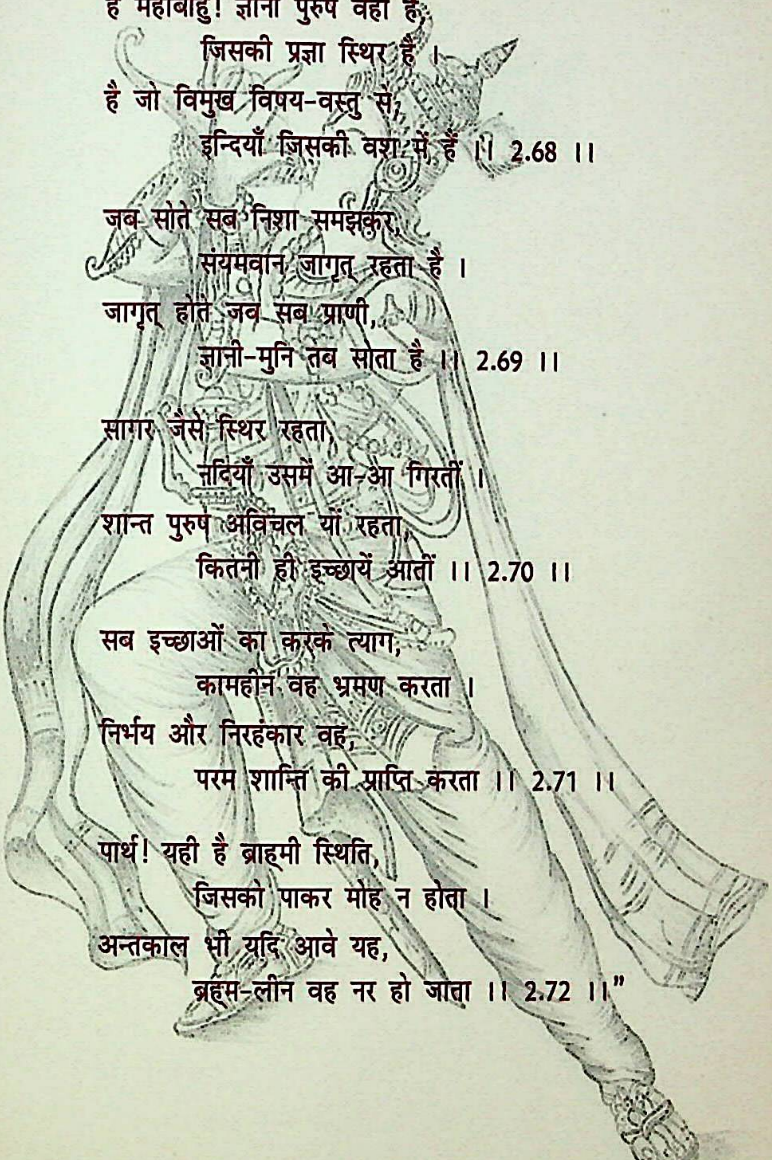

हे महाबाहु! ज्ञानी पुरुष वही है,
जिसकी प्रज्ञा स्थिर है ।
है जो विमुख विषय-वस्तु से,
इन्दियाँ जिसकी वश में हैं ।। 2.68 ।।

जब सोते सब निशा समझकर,
संयमवान जागृत् रहता है ।
जागृत् होते जब सब प्राणी,
ज्ञानी-मुनि तब सोता है ।। 2.69 ।।

सागर जैसे स्थिर रहता,
नदियाँ उसमें आ-आ गिरतीं ।
शान्त पुरुष अविचल यों रहता,
कितनी ही इच्छायें आतीं ।। 2.70 ।।

सब इच्छाओं का करके त्याग,
कामहीन वह भ्रमण करता ।
निर्भय और निरहंकार वह,
परम शान्ति की प्राप्ति करता ।। 2.71 ।।

पार्थ! यही है ब्राह्मी स्थिति,
जिसको पाकर मोह न होता ।
अन्तकाल भी यदि आवे यह,
ब्रह्म-लीन वह नर हो जाता ।। 2.72 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

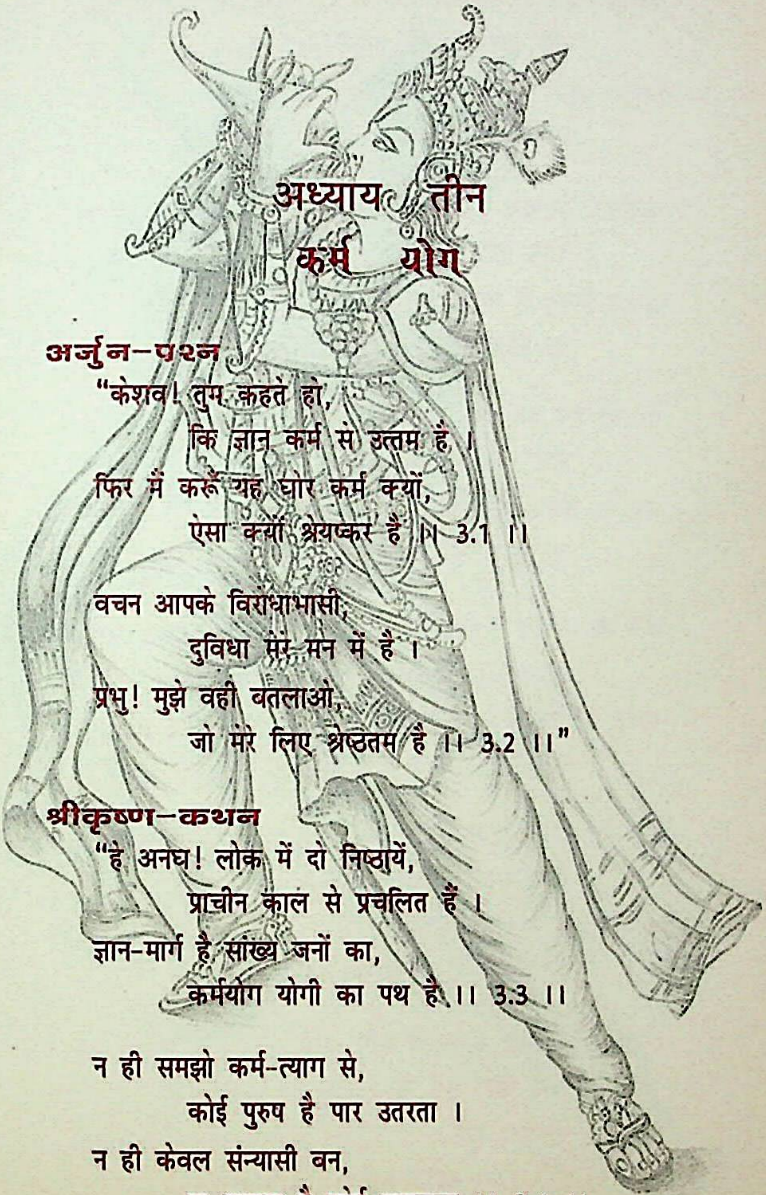

अध्याय तीन
कर्म योग

अर्जुन–प्रश्न

"केशव! तुम कहते हो,
कि ज्ञान कर्म से उत्तम है ।
फिर मैं करूँ यह घोर कर्म क्यों,
ऐसा क्यों श्रेयष्कर है ।। 3.1 ।।

वचन आपके विरोधाभासी,
दुविधा मेरे मन में है ।
प्रभु! मुझे वही बतलाओ,
जो मेरे लिए श्रेष्ठतम है ।। 3.2 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"हे अनघ! लोक में दो निष्ठायें,
प्राचीन काल से प्रचलित हैं ।
ज्ञान-मार्ग है सांख्य जनों का,
कर्मयोग योगी का पथ है ।। 3.3 ।।

न ही समझो कर्म-त्याग से,
कोई पुरुष है पार उतरता ।
न ही केवल संन्यासी बन,
पा सकता है कोई सफलता ।। 3.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

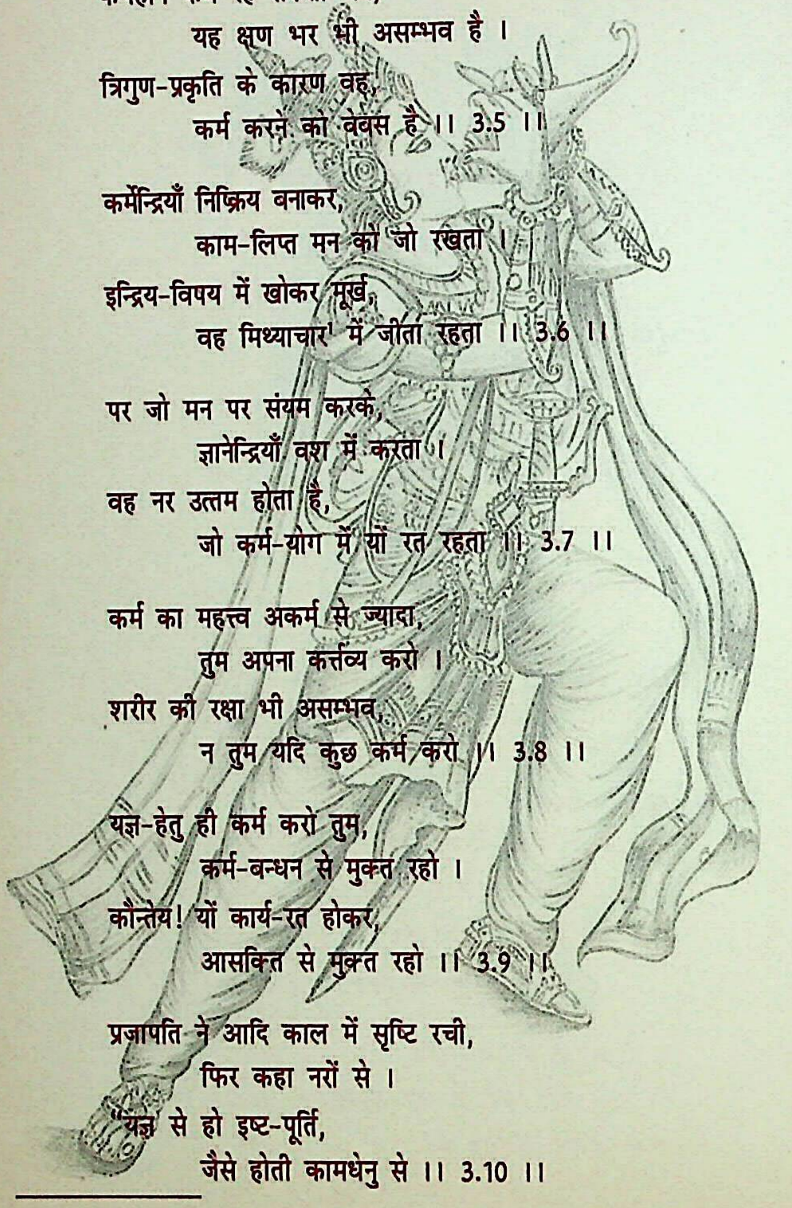

कर्महीन कब रह सकता जन,
यह क्षण भर भी असम्भव है ।
त्रिगुण-प्रकृति के कारण वह,
कर्म करने को बेबस है ।। 3.5 ।।

कर्मेन्द्रियाँ निष्क्रिय बनाकर,
काम-लिप्त मन को जो रखता ।
इन्द्रिय-विषय में खोकर मूर्ख,
वह मिथ्याचार[1] में जीता रहता ।। 3.6 ।।

पर जो मन पर संयम करके,
ज्ञानेन्द्रियाँ वश में करता ।
वह नर उत्तम होता है,
जो कर्म-योग में यों रत रहता ।। 3.7 ।।

कर्म का महत्त्व अकर्म से ज्यादा,
तुम अपना कर्त्तव्य करो ।
शरीर की रक्षा भी असम्भव,
न तुम यदि कुछ कर्म करो ।। 3.8 ।।

यज्ञ-हेतु ही कर्म करो तुम,
कर्म-बन्धन से मुक्त रहो ।
कौन्तेय! यों कार्य-रत होकर,
आसक्ति से मुक्त रहो ।। 3.9 ।।

प्रजापति ने आदि काल में सृष्टि रची,
फिर कहा नरों से ।
"यज्ञ से हो इष्ट-पूर्ति,
जैसे होती कामधेनु से ।। 3.10 ।।

---

1. दंभ/आडंबर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम संतुष्ट करो देवों को,
देव तुम्हें संतुष्ट करेंगे ।
यों संतुष्ट परस्पर होगे,
परम् लाभ उपजेंगे" ।। 3.11 ।।

यज्ञों से संतुष्ट देव,
मानव की इष्टि-पूर्ति करते ।
जो नर लेता बिना यज्ञ के,
उसको तो चोर ही कहते ।। 3.12 ।।

यज्ञों के अवशेष को खाकर,
संत पाप से मुक्ति पाते ।
पर जो निज-स्वाद-हेतु पकवान बनाते,
वे केवल पापों को खाते ।। 3.13 ।।

जीव पनपते अन्न को खाकर,
जो आता वर्षा-रूपी अनुकूल दशा से ।
अनुकूल दशा यज्ञों से आती,
यज्ञ होते हैं कर्मों से ।। 3.14 ।।

कर्म आते हैं ब्रह्म-वेद से,
ब्रह्मा स्वयं परमेश्वर में ।
सर्वव्यापी ब्रह्म अतः,
रहता सदा कर्म-यज्ञ में ।। 3.15 ।।

इस प्रकार स्थापित चक्र में,
जीता नहीं जो जीव यहाँ ।
रहकर लिप्त इन्द्रिय-सुख में,
करता है वह पाप यहाँ ।। 3.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर जो लीन आत्म रति में,
संतुष्ट आप में रहता ।
ऐसे आत्म-तृप्त मानव को,
कोई कार्य शेष न रहता ।। 3.17 ।।

न ही कृत पर उसकी रुचि है,
न होती अकृत पर ।
स्वार्थ-हीन वह होता है,
न ही आश्रित किसी अन्य पर ।। 3.18 ।।

अत: कर्म किये जाओ,
अनासक्त हर पल रहकर ।
परम-प्राप्ति करता है मानव,
अनासक्त कर्म के बल पर ।। 3.19 ।।

जनक आदि संसिद्ध हुए,
कर्म मार्ग पर ही चलकर ।
यदि नहीं और कुछ, करो कर्म तुम,
लोक-भलाई ध्यान में रखकर ।। 3.20 ।।

महान् पुरुष के पद-चिह्नों पर,
जन-समुदाय चला करता ।
अनुकरणीय वही लोक में होता,
माप-दण्ड जो वह बनाता ।। 3.21 ।।

मेरे लिये तीनों लोकों में,
कोई कर्तव्य शेष नहीं ।
पृथा-पुत्र! करूँ कर्म मैं फिर भी,
कोई इच्छा यद्यपि शेष नहीं ।। 3.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

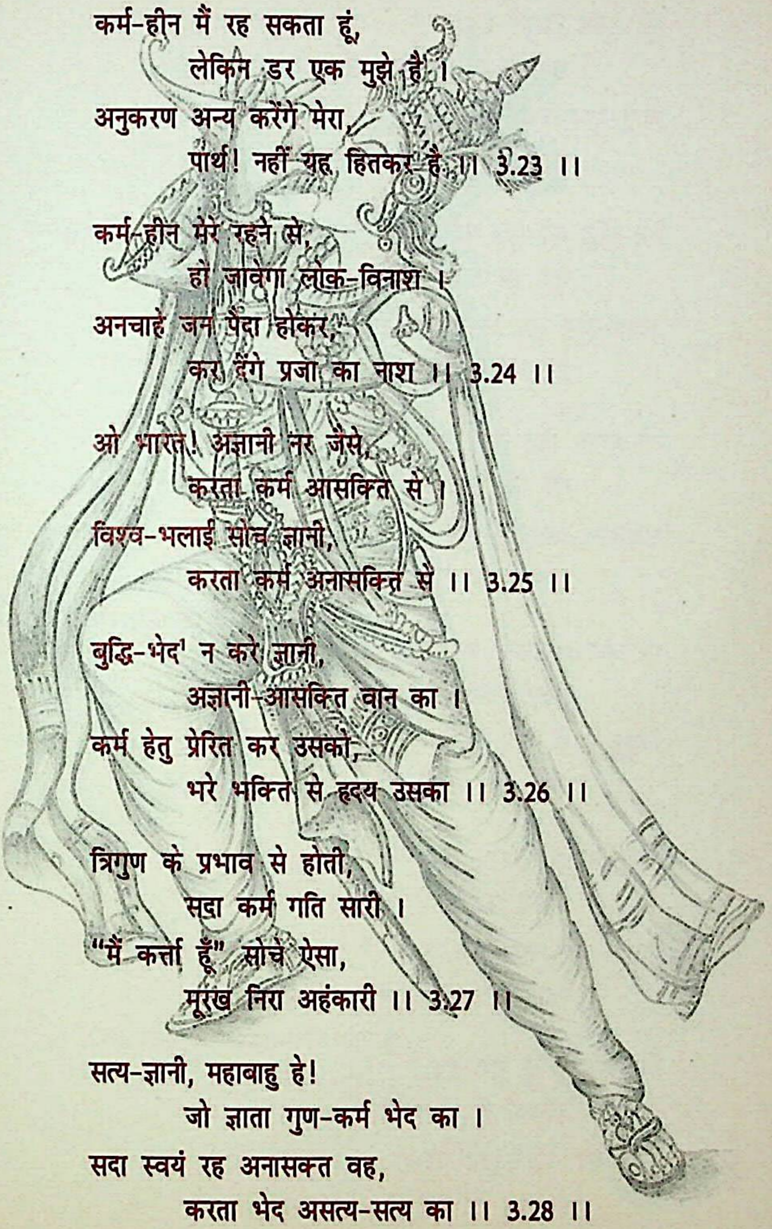

कर्म-हीन मैं रह सकता हूं,
लेकिन डर एक मुझे है ।
अनुकरण अन्य करेंगे मेरा,
पार्थ! नहीं यह हितकर है ।। 3.23 ।।

कर्म-हीन मेरे रहने से,
हो जावेगा लोक-विनाश ।
अनचाहे जन पैदा होकर,
कर देंगे प्रजा का नाश ।। 3.24 ।।

ओ भारत! अज्ञानी नर जैसे,
करता कर्म आसक्ति से ।
विश्व-भलाई सोच ज्ञानी,
करता कर्म अनासक्ति से ।। 3.25 ।।

बुद्धि-भेद[1] न करे ज्ञानी,
अज्ञानी-आसक्ति वान का ।
कर्म हेतु प्रेरित कर उसको,
भरे भक्ति से हृदय उसका ।। 3.26 ।।

त्रिगुण के प्रभाव से होती,
सदा कर्म गति सारी ।
"मैं कर्त्ता हूँ" सोचे ऐसा,
मूरख निरा अहंकारी ।। 3.27 ।।

सत्य-ज्ञानी, महाबाहु हे!
जो ज्ञाता गुण-कर्म भेद का ।
सदा स्वयं रह अनासक्त वह,
करता भेद असत्य-सत्य का ।। 3.28 ।।

1. मन को पीड़ा देना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

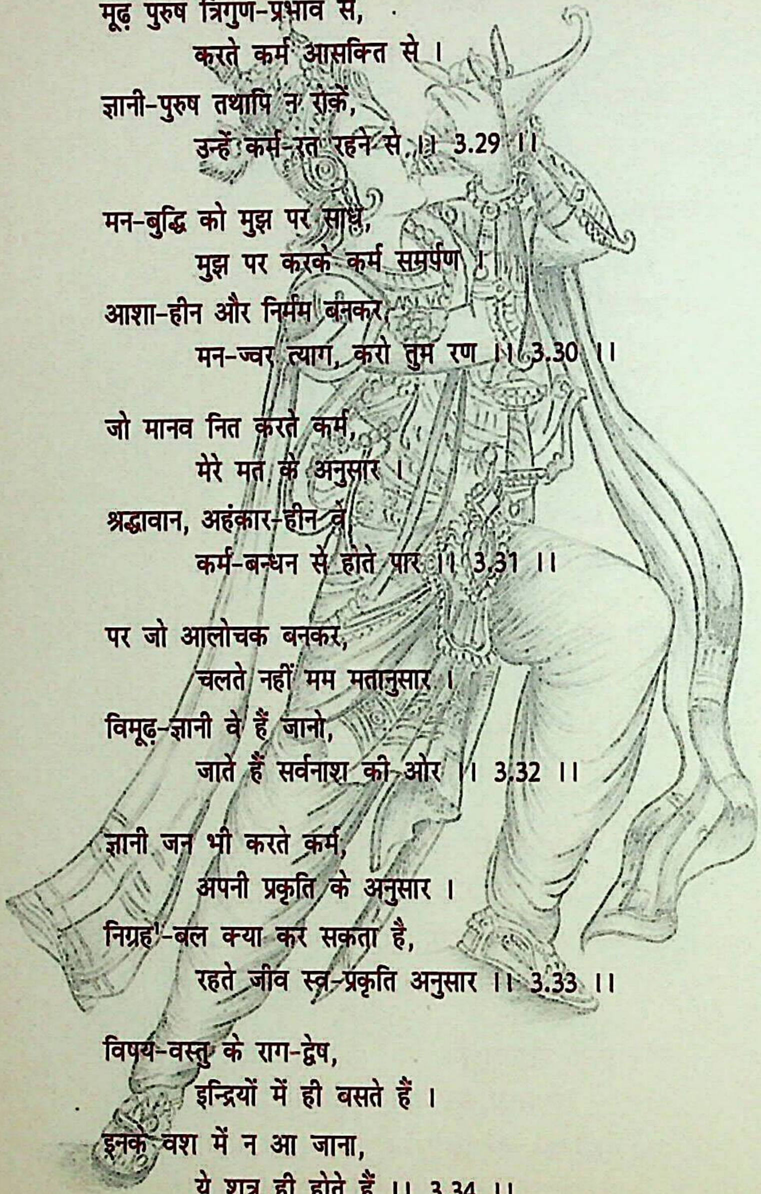

मूढ़ पुरुष त्रिगुण-प्रभाव से,
करते कर्म आसक्ति से ।
ज्ञानी-पुरुष तथापि न रोकें,
उन्हें कर्म-रत रहने से ।। 3.29 ।।

मन-बुद्धि को मुझ पर साध,
मुझ पर करके कर्म समर्पण ।
आशा-हीन और निर्मम बनकर,
मन-ज्वर त्याग, करो तुम रण ।। 3.30 ।।

जो मानव नित करते कर्म,
मेरे मत के अनुसार ।
श्रद्धावान, अहंकार-हीन वे
कर्म-बन्धन से होते पार ।। 3.31 ।।

पर जो आलोचक बनकर,
चलते नहीं मम मतानुसार ।
विमूढ़-ज्ञानी वे हैं जानो,
जाते हैं सर्वनाश की ओर ।। 3.32 ।।

ज्ञानी जन भी करते कर्म,
अपनी प्रकृति के अनुसार ।
निग्रह[1]-बल क्या कर सकता है,
रहते जीव स्व-प्रकृति अनुसार ।। 3.33 ।।

विषय-वस्तु के राग-द्वेष,
इन्द्रियों में ही बसते हैं ।
इनके वश में न आ जाना,
ये शत्रु ही होते हैं ।। 3.34 ।।

1. निरोध, रोक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

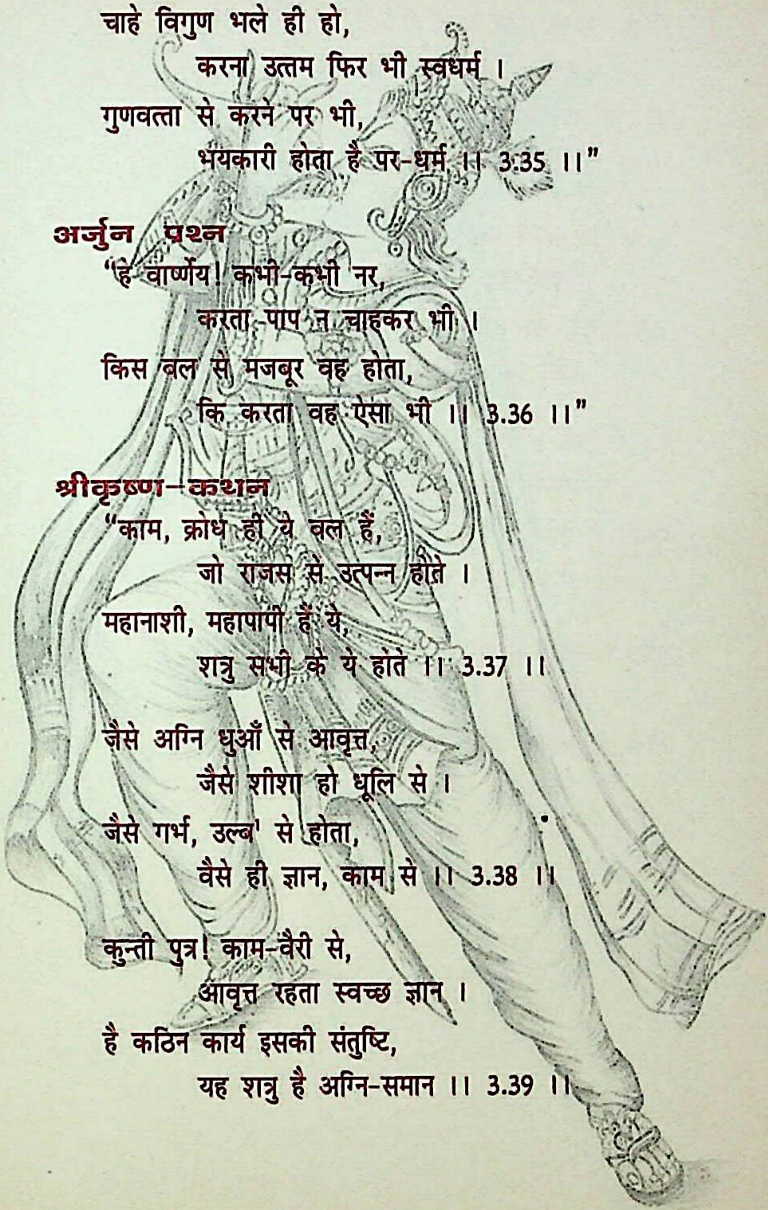

चाहे विगुण भले ही हो,
करना उत्तम फिर भी स्वधर्म ।
गुणवत्ता से करने पर भी,
भयकारी होता है पर-धर्म ।। 3.35 ।।"

अर्जुन प्रश्न

"हे वार्ष्णेय! कभी-कभी नर,
करता पाप न चाहकर भी ।
किस बल से मजबूर वह होता,
कि करता वह ऐसा भी ।। 3.36 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"काम, क्रोध ही ये बल हैं,
जो राजस से उत्पन्न होते ।
महानाशी, महापापी हैं ये,
शत्रु सभी के ये होते ।। 3.37 ।।

जैसे अग्नि धुआँ से आवृत्त,
जैसे शीशा हो धूलि से ।
जैसे गर्भ, उल्ब[1] से होता,
वैसे ही ज्ञान, काम से ।। 3.38 ।।

कुन्ती पुत्र! काम-वैरी से,
आवृत्त रहता स्वच्छ ज्ञान ।
है कठिन कार्य इसकी संतुष्टि,
यह शत्रु है अग्नि-समान ।। 3.39 ।।

---

1. गर्भ (फोइटस) को लपेटने वाली परत ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

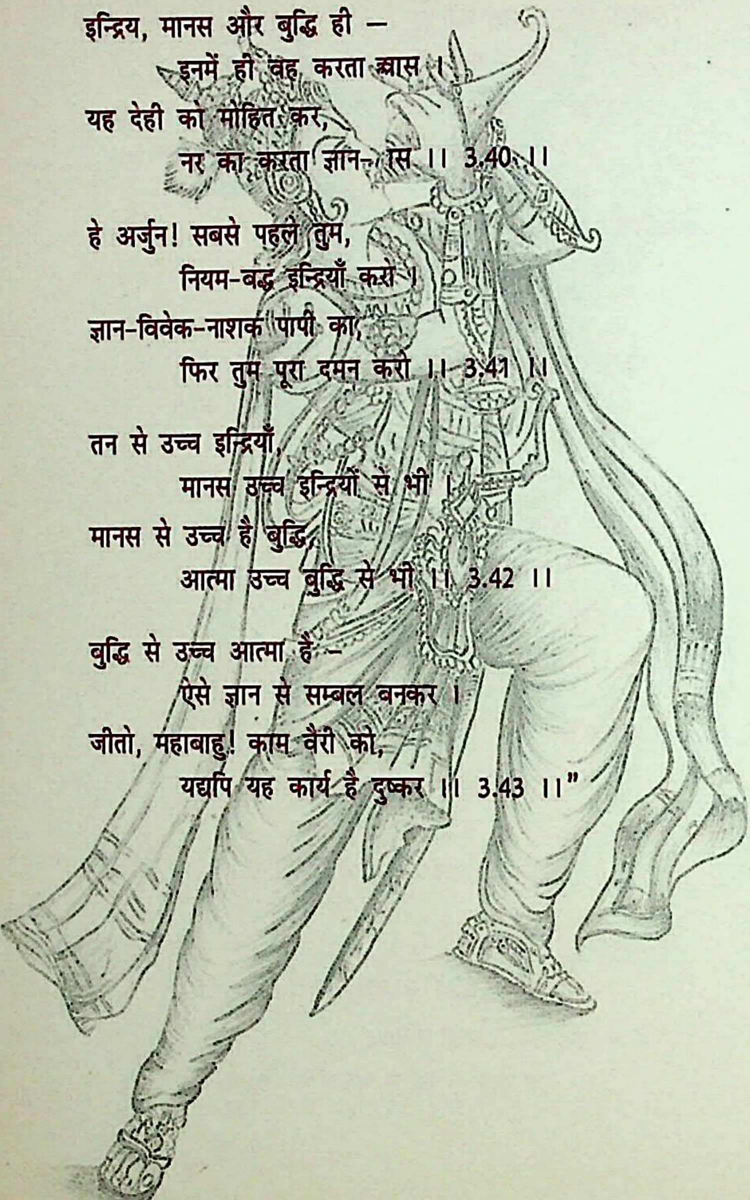

इन्द्रिय, मानस और बुद्धि ही –
इनमें ही वह करता वास ।
यह देही को मोहित कर,
नर का करता ज्ञान-ह्रास ।। 3.40 ।।

हे अर्जुन! सबसे पहले तुम,
नियम-बद्ध इन्द्रियाँ करो ।
ज्ञान-विवेक-नाशक पापी का,
फिर तुम पूरा दमन करो ।। 3.41 ।।

तन से उच्च इन्द्रियाँ,
मानस उच्च इन्द्रियों से भी ।
मानस से उच्च है बुद्धि,
आत्मा उच्च बुद्धि से भी ।। 3.42 ।।

बुद्धि से उच्च आत्मा है –
ऐसे ज्ञान से सम्बल बनकर ।
जीतो, महाबाहु! काम वैरी को,
यद्यपि यह कार्य है दुष्कर ।। 3.43 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

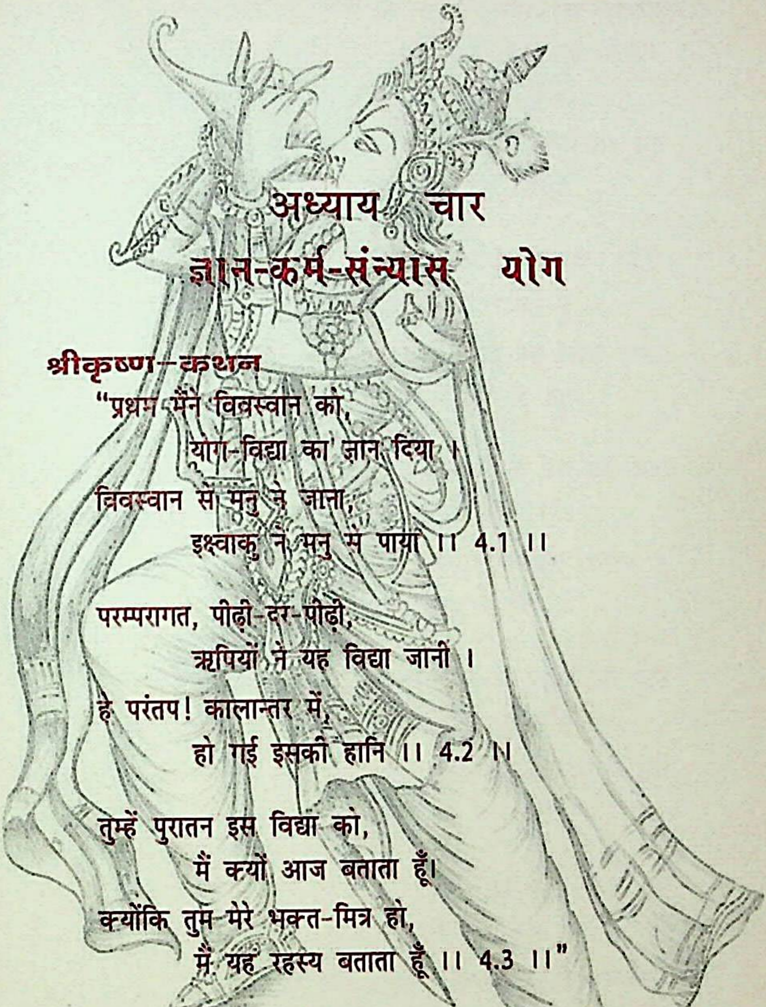

अध्याय चार
ज्ञान-कर्म-संन्यास योग

श्रीकृष्ण–कथन

"प्रथम मैंने विवस्वान को,
योग-विद्या का ज्ञान दिया ।
विवस्वान से मनु ने जाना,
इक्ष्वाकु ने मनु से पाया ।। 4.1 ।।

परम्परागत, पीढ़ी-दर-पीढ़ी,
ऋषियों ने यह विद्या जानी ।
हे परंतप! कालान्तर में,
हो गई इसकी हानि ।। 4.2 ।।

तुम्हें पुरातन इस विद्या को,
मैं क्यों आज बताता हूँ।
क्योंकि तुम मेरे भक्त-मित्र हो,
मैं यह रहस्य बताता हूँ ।। 4.3 ।।"

अर्जुन–प्रश्न

"विवस्वान पहले जन्मे थे,
आपका जन्म उपरान्त हुआ।
मैं कैसे यह समझ सकूँ,
आपने उनको योग का ज्ञान दिया ।। 4.4 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण—कथन

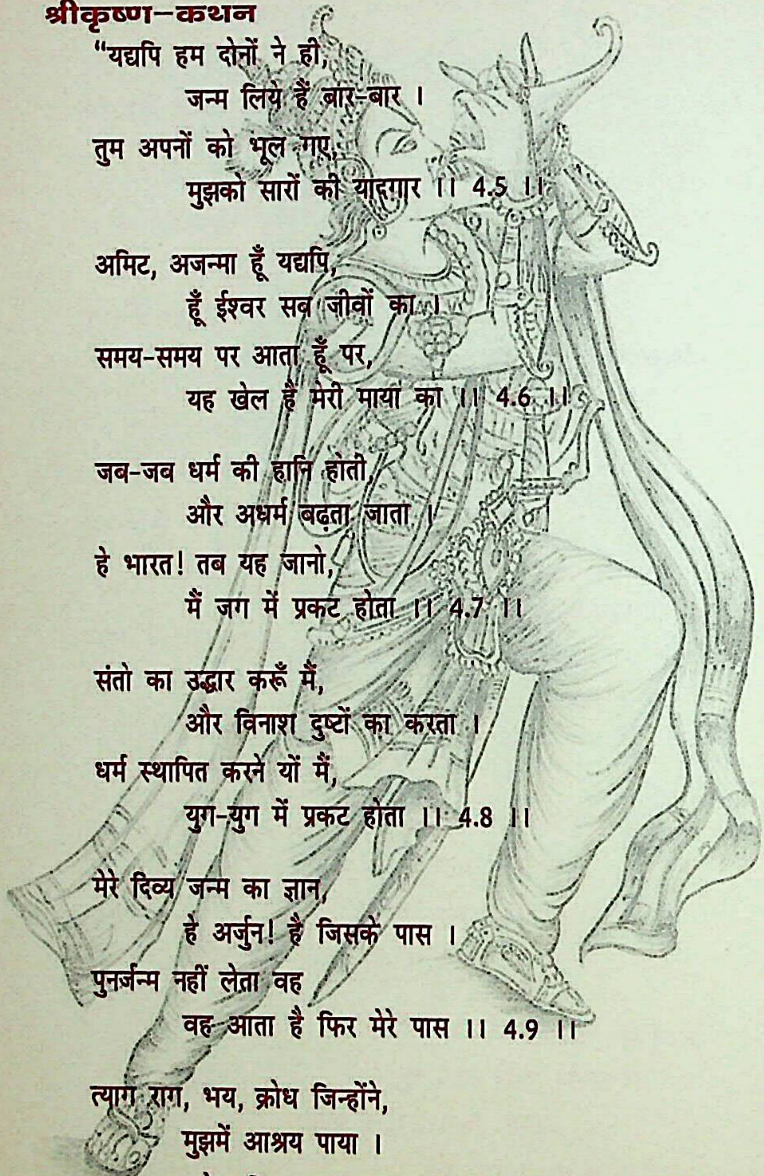

"यद्यपि हम दोनों ने ही,
जन्म लिये हैं बार-बार ।
तुम अपनों को भूल गए,
मुझको सारों की यादगार ।। 4.5 ।।

अमिट, अजन्मा हूँ यद्यपि,
हूँ ईश्वर सब जीवों का ।
समय-समय पर आता हूँ पर,
यह खेल है मेरी माया का ।। 4.6 ।।

जब-जब धर्म की हानि होती,
और अधर्म बढ़ता जाता ।
हे भारत! तब यह जानो,
मैं जग में प्रकट होता ।। 4.7 ।।

संतो का उद्धार करूँ मैं,
और विनाश दुष्टों का करता ।
धर्म स्थापित करने यों मैं,
युग-युग में प्रकट होता ।। 4.8 ।।

मेरे दिव्य जन्म का ज्ञान,
हे अर्जुन! है जिसके पास ।
पुनर्जन्म नहीं लेता वह
वह आता है फिर मेरे पास ।। 4.9 ।।

त्याग राग, भय, क्रोध जिन्होंने,
मुझमें आश्रय पाया ।
ज्ञान-तपस से शुद्धि पाकर,
बहुतों ने मुझको पाया ।। 4.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

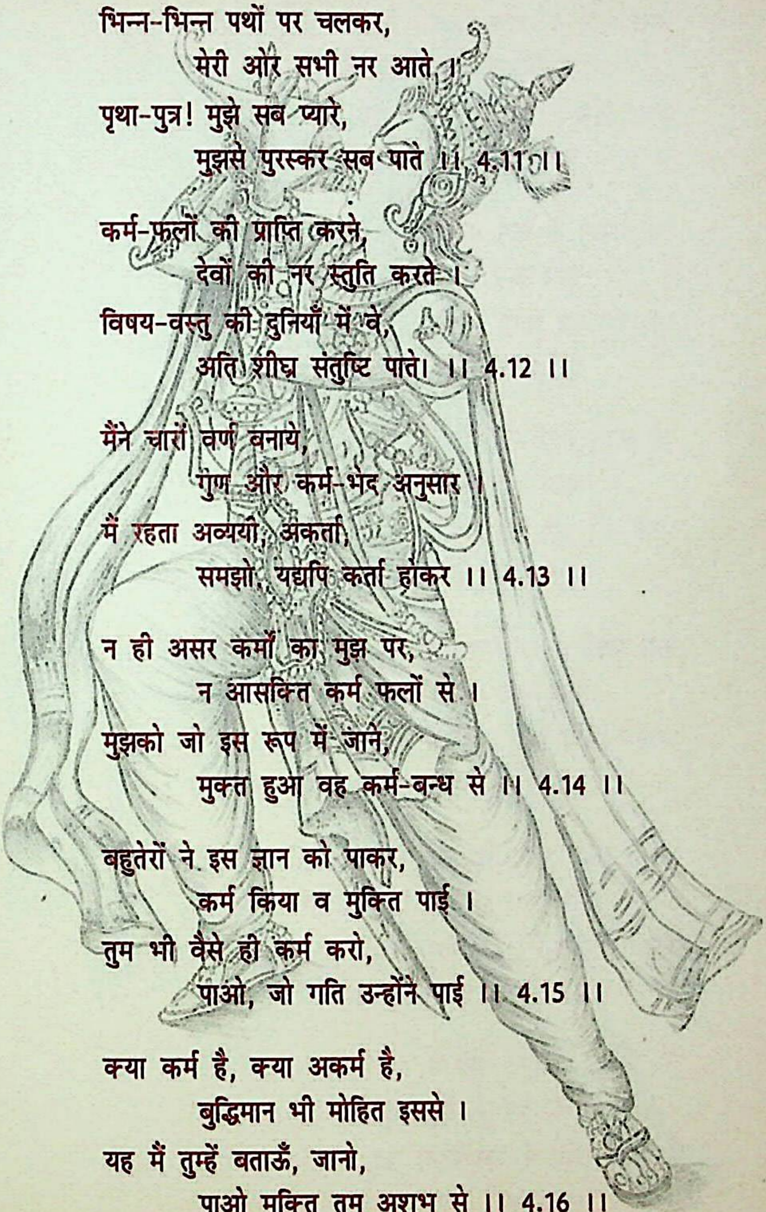

भिन्न-भिन्न पथों पर चलकर,
मेरी ओर सभी नर आते ।
पृथा-पुत्र! मुझे सब प्यारे,
मुझसे पुरस्कर सब पाते ।। 4.11 ।।

कर्म-फलों की प्राप्ति करने,
देवों की नर स्तुति करते ।
विषय-वस्तु की दुनियाँ में वे,
अति शीघ्र संतुष्टि पाते। ।। 4.12 ।।

मैंने चारों वर्ण बनाये,
गुण और कर्म-भेद अनुसार ।
मैं रहता अव्ययी, अकर्ता,
समझो, यद्यपि कर्ता होकर ।। 4.13 ।।

न ही असर कर्मों का मुझ पर,
न आसक्ति कर्म फलों से ।
मुझको जो इस रूप में जाने,
मुक्त हुआ वह कर्म-बन्ध से ।। 4.14 ।।

बहुतेरों ने इस ज्ञान को पाकर,
कर्म किया व मुक्ति पाई ।
तुम भी वैसे ही कर्म करो,
पाओ, जो गति उन्होंने पाई ।। 4.15 ।।

क्या कर्म है, क्या अकर्म है,
बुद्धिमान भी मोहित इससे ।
यह मैं तुम्हें बताऊँ, जानो,
पाओ मुक्ति तुम अशुभ से ।। 4.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

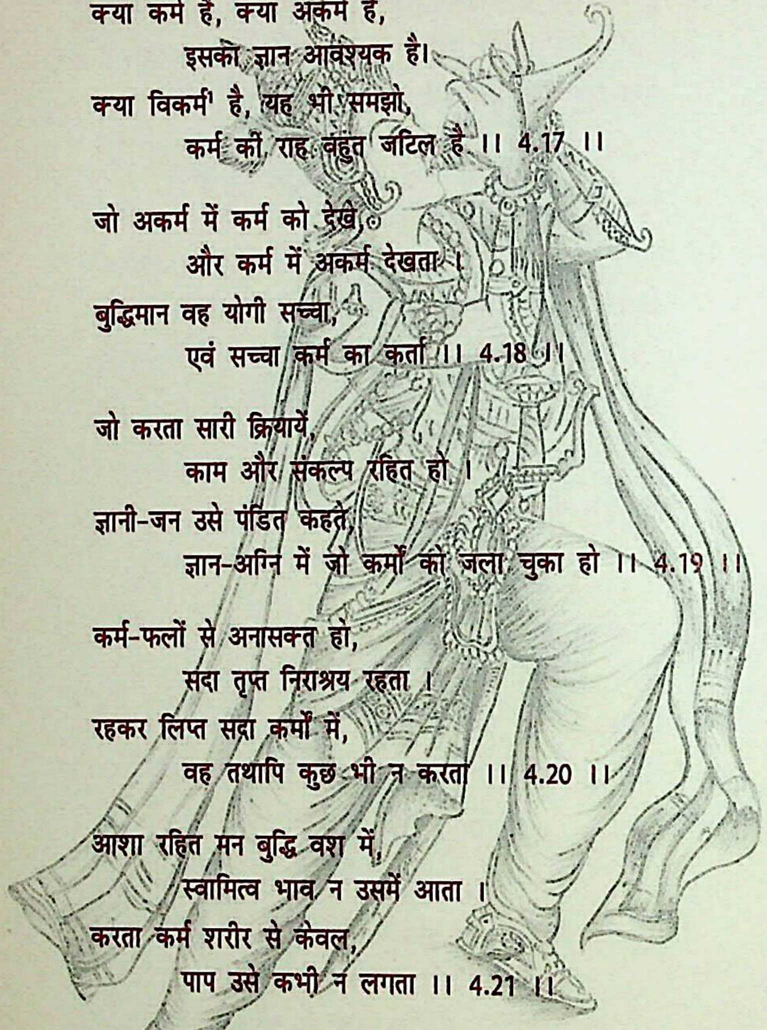

क्या कर्म है, क्या अकर्म है,
इसका ज्ञान आवश्यक है।
क्या विकर्म[1] है, यह भी समझो,
कर्म की राह बहुत जटिल है ।। 4.17 ।।

जो अकर्म में कर्म को देखे,
और कर्म में अकर्म देखता ।
बुद्धिमान वह योगी सच्चा,
एवं सच्चा कर्म का कर्ता ।। 4.18 ।।

जो करता सारी क्रियायें,
काम और संकल्प रहित हो ।
ज्ञानी-जन उसे पंडित कहते,
ज्ञान-अग्नि में जो कर्मों को जला चुका हो ।। 4.19 ।।

कर्म-फलों से अनासक्त हो,
सदा तृप्त निराश्रय रहता ।
रहकर लिप्त सदा कर्मों में,
वह तथापि कुछ भी न करता ।। 4.20 ।।

आशा रहित मन बुद्धि वश में,
स्वामित्व भाव न उसमें आता ।
करता कर्म शरीर से केवल,
पाप उसे कभी न लगता ।। 4.21 ।।

जो मिलता, संतुष्ट उसी में,
द्वन्द, द्वेष से ऊपर उठकर ।
सिद्धि-असिद्धि में सम रहता वह,
करता कर्म अबन्धित रहकर ।। 4.22 ।।

1. अनुचित कार्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका मन है ज्ञान में स्थित,
वह जीवन-मुक्त, आसक्ति हीन ।
यज्ञ-हेतु ही कर्म वह करता,
उसके सारे कर्म विलीन ।। 4.23 ।।

ब्रह्म ही अर्पण, ब्रह्म ही घी है,
और ब्रह्म ही अग्नि में ।
वही ब्रह्म को पाता है,
जो देखे ब्रह्म सब कर्मों में ।। 4.24 ।।

करते यज्ञ कुछ योगी,
केवल देवों को आहुति चढ़ाकर ।
अन्य आत्म की आहुति देते,
परम-ब्रह्म की अग्नि पर ।। 4.25 ।।

कुछ श्रवण और अन्य इन्द्रियाँ
करते आहुत संयम-अग्नि में ।
कुछ ध्वनि और अन्य इन्द्रियाँ,
करते आहुत यज्ञ-अग्नि में ।। 4.26 ।।

ज्ञान दीप से अग्नि जलाकर,
संयम-योग में आहुति देते ।
इन्द्रिय कर्म व प्राण कर्म को,
आहुति दे वे उन्हें जलाते ।। 4.27 ।।

कुछ देते द्रव्य की आहुति,
अन्य आहुति तप की करते ।
कुछ स्वाध्याय-ज्ञान की आहुति,
अन्य कठिन व्रतों को रखते ।। 4.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ अपान को प्राण में आहुत,
कुछ प्राण को अपान में ।
ऐसे प्राण-अपान रोककर,
करते आहुति प्राणायाम में ।। 4.29 ।।

अन्य आहार नियन्त्रित करके,
प्राण की प्राण में आहुति देते ।
ये सब यज्ञ-ज्ञाता हैं,
इनके पाप नष्ट हो जाते ।। 4.30 ।।

यज्ञ-शिष्ट[1] अमृत जो खाते,
कुरुवर! वे जाते ब्रह्म-सनातन में ।
बिना यज्ञ इस लोक में सुख नहीं,
कैसे हो सकता है अन्य लोक में ।। 4.31 ।।

बहुत प्रकार की यज्ञ-विधि यों,
परम-ब्रह्म के सम्मुख हैं ।
जानो, ये सब कर्म से जन्मीं
मोक्ष-लक्ष्य पर पहुंचाती हैं ।। 4.32 ।।

हे परंतप! अधिक श्रेष्ठ है,
द्रव्य-यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ ही ।
क्योंकि सारे कर्मों का होता,
अन्त, पार्थ! ज्ञान में ही ।।

ज्ञानी गुरु से प्रश्न करो,
दंडवत होकर सेवा भाव से ।
पाओ दीक्षा सत्य-ज्ञान की,
उस सत्‌दर्शी ज्ञानी से ।। 4.34 ।।

1. यज्ञ की बची हुई सामग्री ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

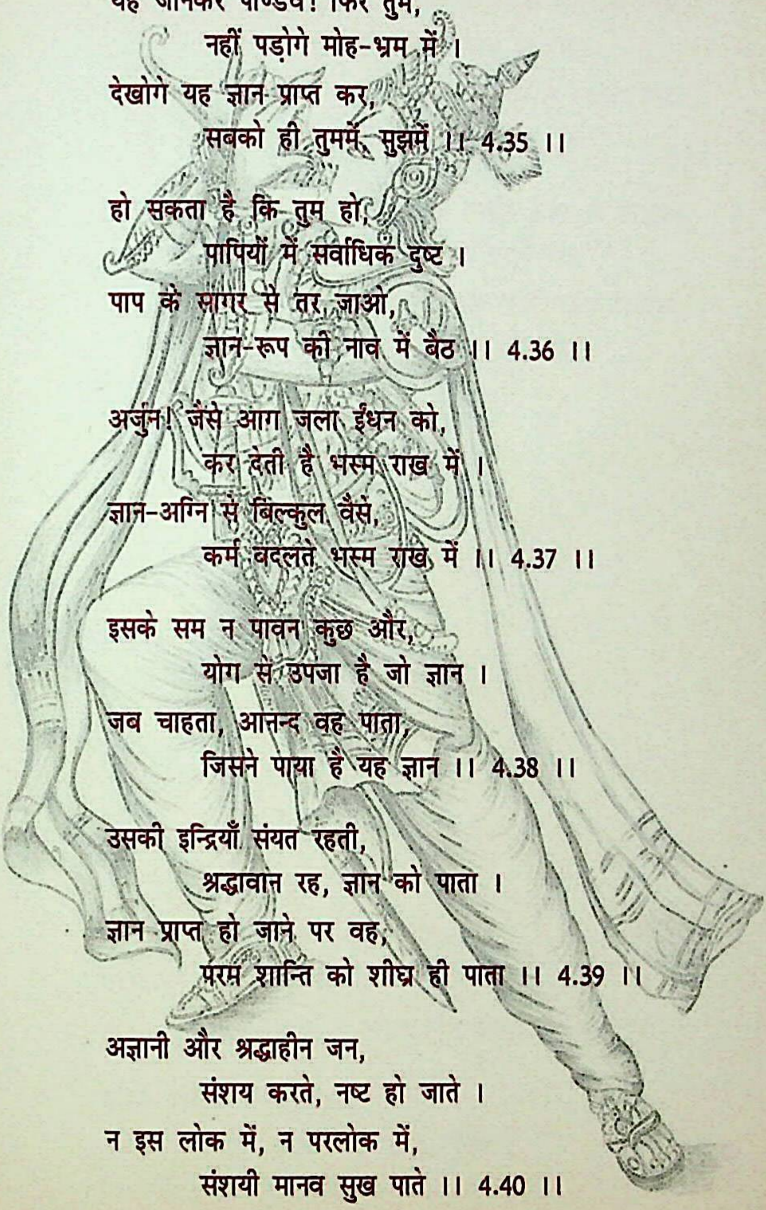

यह जानकर पाण्डव! फिर तुम,
नहीं पड़ोगे मोह-भ्रम में ।
देखोगे यह ज्ञान प्राप्त कर,
सबको ही तुममें, मुझमें ।। 4.35 ।।

हो सकता है कि तुम हो,
पापियों में सर्वाधिक दुष्ट ।
पाप के सागर से तर जाओ,
ज्ञान-रूप की नाव में बैठ ।। 4.36 ।।

अर्जुन! जैसे आग जला ईंधन को,
कर देती है भस्म राख में ।
ज्ञान-अग्नि से बिल्कुल वैसे,
कर्म बदलते भस्म राख में ।। 4.37 ।।

इसके सम न पावन कुछ और,
योग से उपजा है जो ज्ञान ।
जब चाहता, आनन्द वह पाता,
जिसने पाया है यह ज्ञान ।। 4.38 ।।

उसकी इन्द्रियाँ संयत रहती,
श्रद्धावान रह, ज्ञान को पाता ।
ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह,
परम शान्ति को शीघ्र ही पाता ।। 4.39 ।।

अज्ञानी और श्रद्धाहीन जन,
संशय करते, नष्ट हो जाते ।
न इस लोक में, न परलोक में,
संशयी मानव सुख पाते ।। 4.40 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग के द्वारा कर्म त्यागकर,
ज्ञान से होकर संशय हीन ।
कर्म बन्धन से मुक्ति पाकर,
वह हुआ, धनजंय! आत्म लीन ।। 4.41 ।।

अज्ञान से उपजे संशय को,
ज्ञान-शस्त्र से काटो मारो ।
भारत! शरण योग की लेकर,
उठो और तुम युद्ध करो ।। 4.42 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

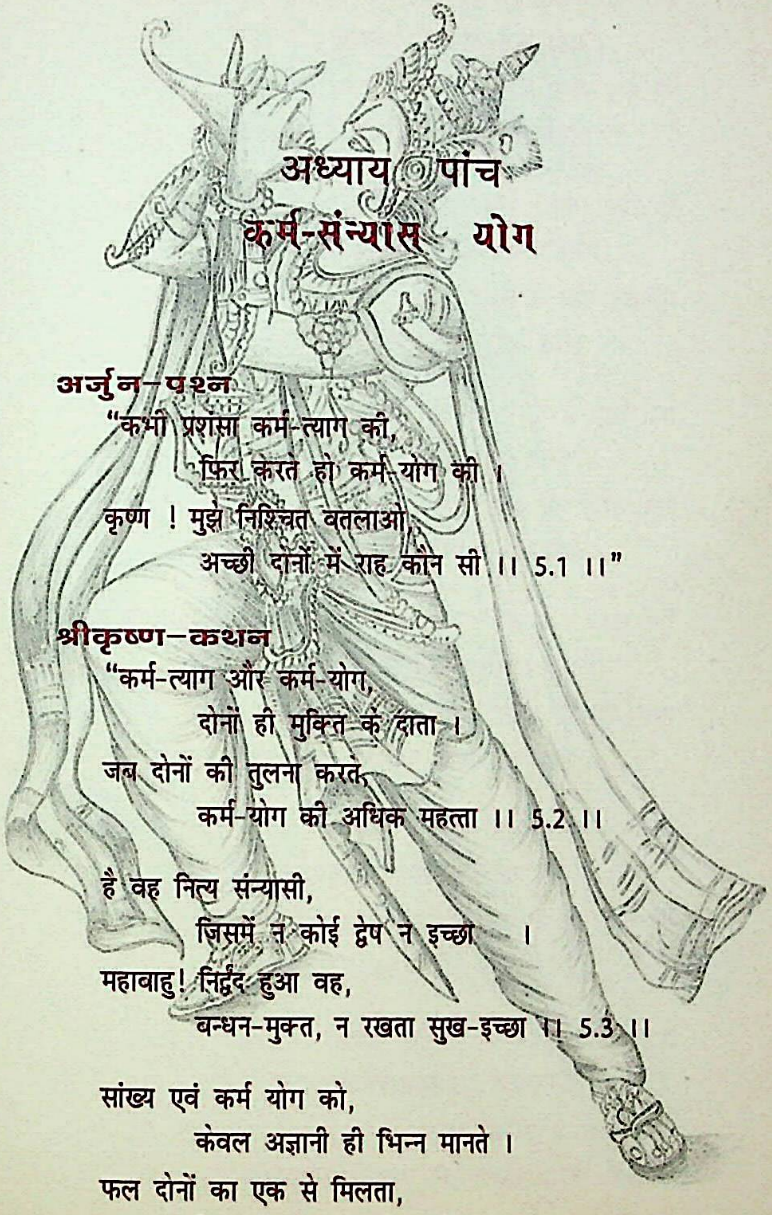

अध्याय पांच
कर्म-संन्यास योग

अर्जुन–प्रश्न

"कभी प्रशंसा कर्म-त्याग की,
फिर करते हो कर्म-योग की ।
कृष्ण ! मुझे निश्चित बतलाओ,
अच्छी दोनों में राह कौन सी ।। 5.1 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"कर्म-त्याग और कर्म-योग,
दोनों ही मुक्ति के दाता ।
जब दोनों की तुलना करते,
कर्म-योग की अधिक महत्ता ।। 5.2 ।।

है वह नित्य संन्यासी,
जिसमें न कोई द्वेष न इच्छा ।
महाबाहु! निर्द्वंद हुआ वह,
बन्धन-मुक्त, न रखता सुख-इच्छा ।। 5.3 ।।

सांख्य एवं कर्म योग को,
केवल अज्ञानी ही भिन्न मानते ।
फल दोनों का एक से मिलता,
ऐसा पंडित, विदुजन कहते ।। 5.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

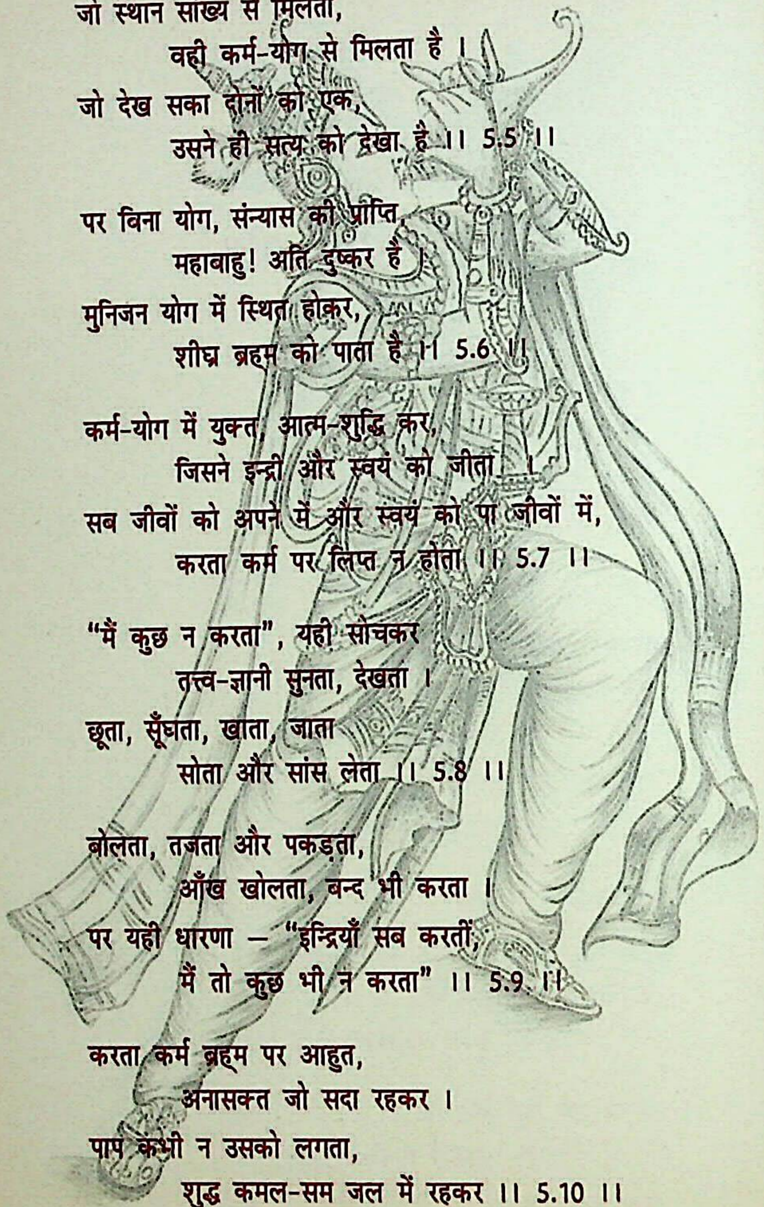

जो स्थान सांख्य से मिलता,
वही कर्म-योग से मिलता है ।
जो देख सका दोनों को एक,
उसने ही सत्य को देखा है ।। 5.5 ।।

पर विना योग, संन्यास की प्राप्ति,
महाबाहु! अति दुष्कर है ।
मुनिजन योग में स्थित होकर,
शीघ्र ब्रह्म को पाता है ।। 5.6 ।।

कर्म-योग में युक्त, आत्म-शुद्धि कर,
जिसने इन्द्री और स्वयं को जीता ।
सब जीवों को अपने में और स्वयं को पा जीवों में,
करता कर्म पर लिप्त न होता ।। 5.7 ।।

"मैं कुछ न करता", यही सोचकर
तत्त्व-ज्ञानी सुनता, देखता ।
छूता, सूँघता, खाता, जाता
सोता और सांस लेता ।। 5.8 ।।

बोलता, तजता और पकड़ता,
आँख खोलता, बन्द भी करता ।
पर यही धारणा – "इन्द्रियाँ सब करतीं,
मैं तो कुछ भी न करता" ।। 5.9 ।।

करता कर्म ब्रह्म पर आहुत,
अनासक्त जो सदा रहकर ।
पाप कभी न उसको लगता,
शुद्ध कमल-सम जल में रहकर ।। 5.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

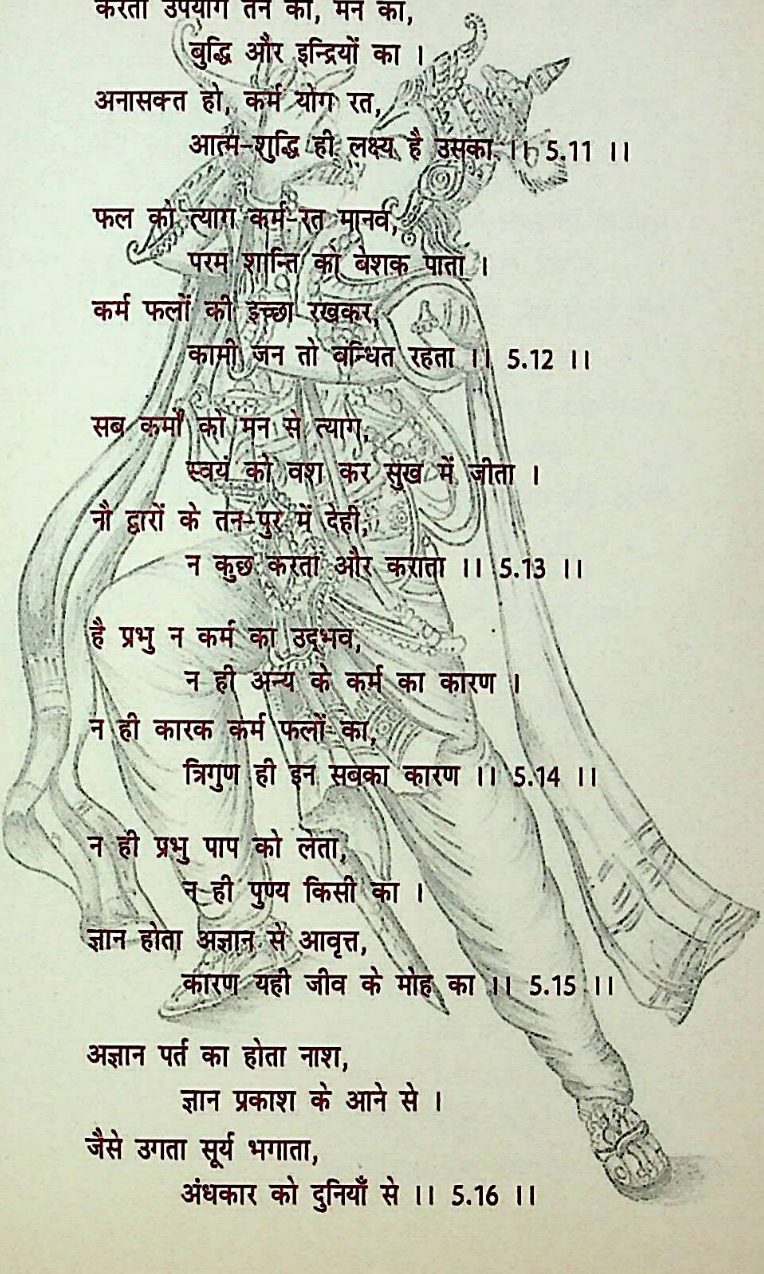

करता उपयोग तन का, मन का,
बुद्धि और इन्द्रियों का ।
अनासक्त हो, कर्म योग रत,
आत्म-शुद्धि ही लक्ष्य है उसका ।। 5.11 ।।

फल को त्याग कर्म-रत मानव,
परम शान्ति को बेशक पाता ।
कर्म फलों की इच्छा रखकर,
कामी जन तो बन्धित रहता ।। 5.12 ।।

सब कर्मों को मन से त्याग,
स्वयं को वश कर सुख में जीता ।
नौ द्वारों के तन-पुर में देही,
न कुछ करता और कराता ।। 5.13 ।।

है प्रभु न कर्म का उद्भव,
न ही अन्य के कर्म का कारण ।
न ही कारक कर्म फलों का,
त्रिगुण ही इन सबका कारण ।। 5.14 ।।

न ही प्रभु पाप को लेता,
न ही पुण्य किसी का ।
ज्ञान होता अज्ञान से आवृत्त,
कारण यही जीव के मोह का ।। 5.15 ।।

अज्ञान पर्त का होता नाश,
ज्ञान प्रकाश के आने से ।
जैसे उगता सूर्य भगाता,
अंधकार को दुनियाँ से ।। 5.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

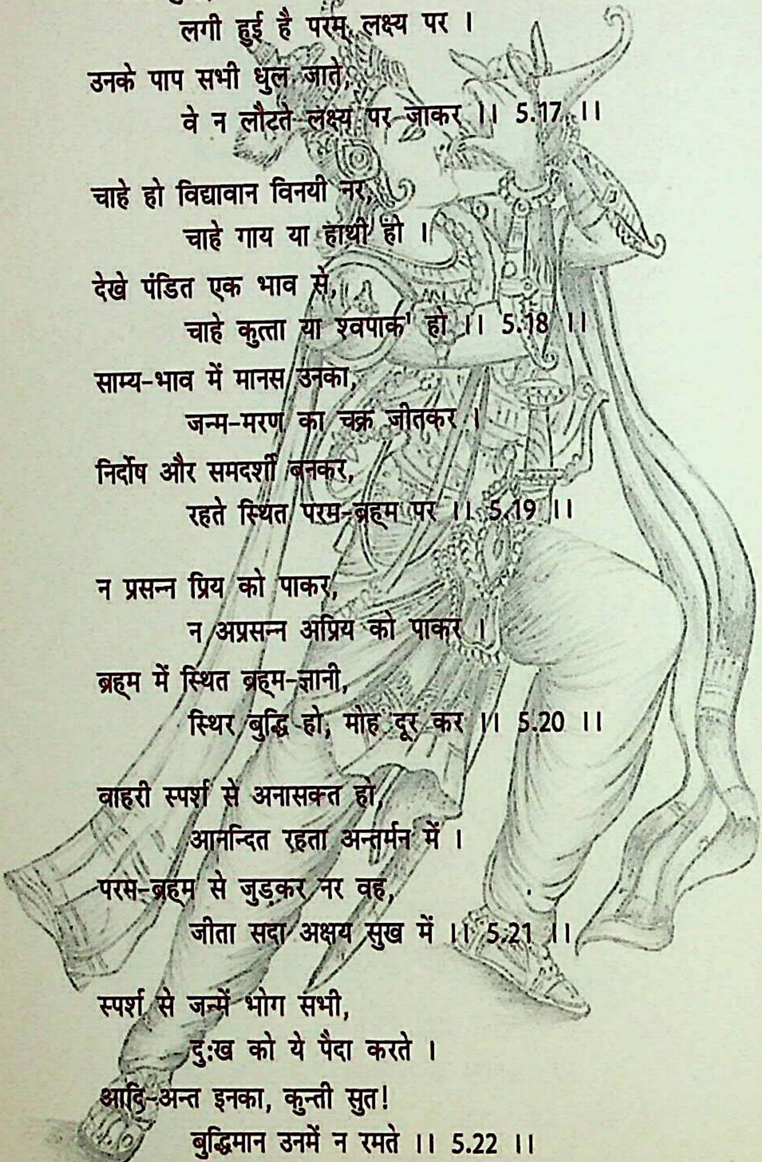

जिनकी बुद्धि, आत्म व निष्ठा,
लगी हुई है परम् लक्ष्य पर ।
उनके पाप सभी धुल जाते,
वे न लौटते लक्ष्य पर जाकर ।। 5.17 ।।

चाहे हो विद्यावान विनयी नर,
चाहे गाय या हाथी ही ।
देखे पंडित एक भाव से,
चाहे कुत्ता या श्वपाक[1] हो ।। 5.18 ।।

साम्य-भाव में मानस उनका,
जन्म-मरण का चक्र जीतकर ।
निर्दोष और समदर्शी बनकर,
रहते स्थित परम-ब्रह्म पर ।। 5.19 ।।

न प्रसन्न प्रिय को पाकर,
न अप्रसन्न अप्रिय को पाकर ।
ब्रह्म में स्थित ब्रह्म-ज्ञानी,
स्थिर बुद्धि हो, मोह दूर कर ।। 5.20 ।।

बाहरी स्पर्श से अनासक्त हो,
आनन्दित रहता अन्तर्मन में ।
परम-ब्रह्म से जुड़कर नर वह,
जीता सदा अक्षय सुख में ।। 5.21 ।।

स्पर्श से जन्में भोग सभी,
दु:ख को ये पैदा करते ।
आदि-अन्त इनका, कुन्ती सुत!
बुद्धिमान उनमें न रमते ।। 5.22 ।।

1. बहिष्कृत ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

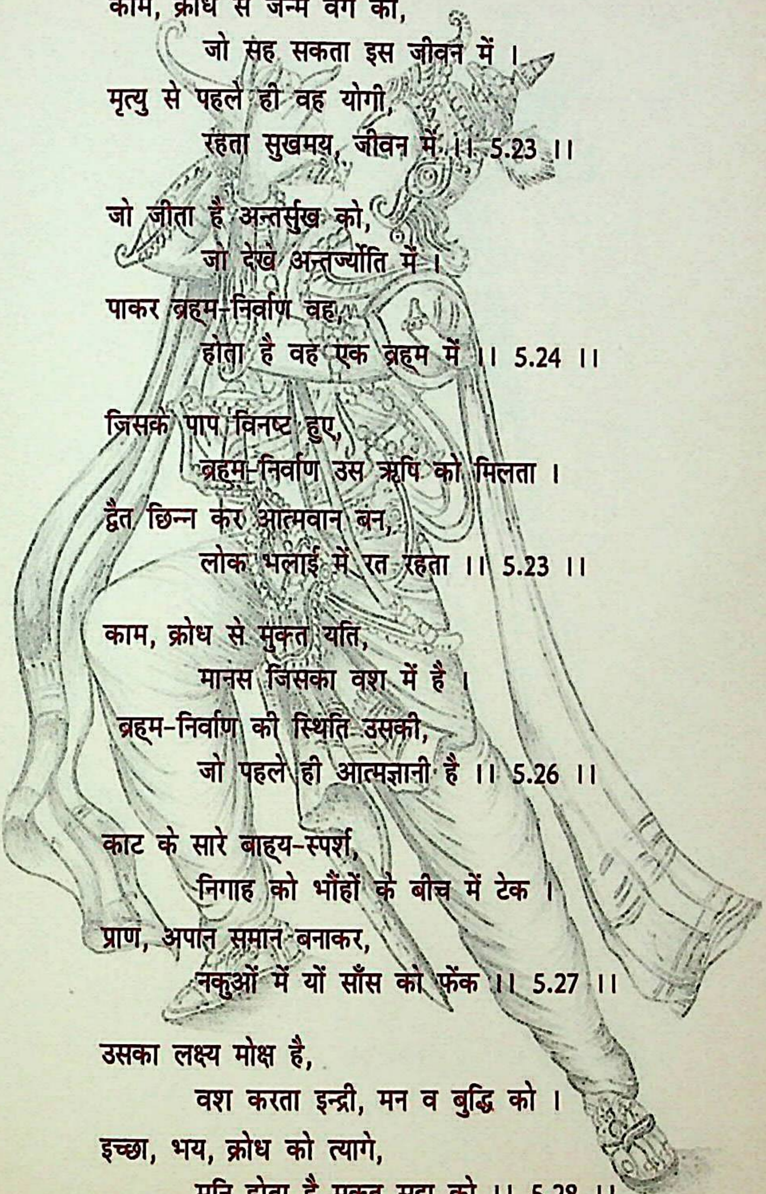

काम, क्रोध से जन्मे वेग को,
जो सह सकता इस जीवन में ।
मृत्यु से पहले ही वह योगी,
रहता सुखमय, जीवन में ।। 5.23 ।।

जो जीता है अन्तर्सुख को,
जो देखे अन्तर्ज्योति में ।
पाकर ब्रह्म-निर्वाण वह,
होता है वह एक ब्रह्म में ।। 5.24 ।।

जिसके पाप विनष्ट हुए,
ब्रह्म-निर्वाण उस ऋषि को मिलता ।
द्वैत छिन्न कर आत्मवान बन,
लोक भलाई में रत रहता ।। 5.23 ।।

काम, क्रोध से मुक्त यति,
मानस जिसका वश में है ।
ब्रह्म-निर्वाण की स्थिति उसकी,
जो पहले ही आत्मज्ञानी है ।। 5.26 ।।

काट के सारे बाह्य-स्पर्श,
निगाह को भौंहों के बीच में टेक ।
प्राण, अपान समान बनाकर,
नकुओं में यों साँस को फेंक ।। 5.27 ।।

उसका लक्ष्य मोक्ष है,
वश करता इन्द्री, मन व बुद्धि को ।
इच्छा, भय, क्रोध को त्यागे,
मुनि होता है मुक्त सदा को ।। 5.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे मान सब लोकों का ईश्वर,
मुझको ही यज्ञ-तपों का भोक्ता ।
मुझे मानकर मित्र सभी का,
वह शान्ति को पा जाता ।। 5.29 ।।"

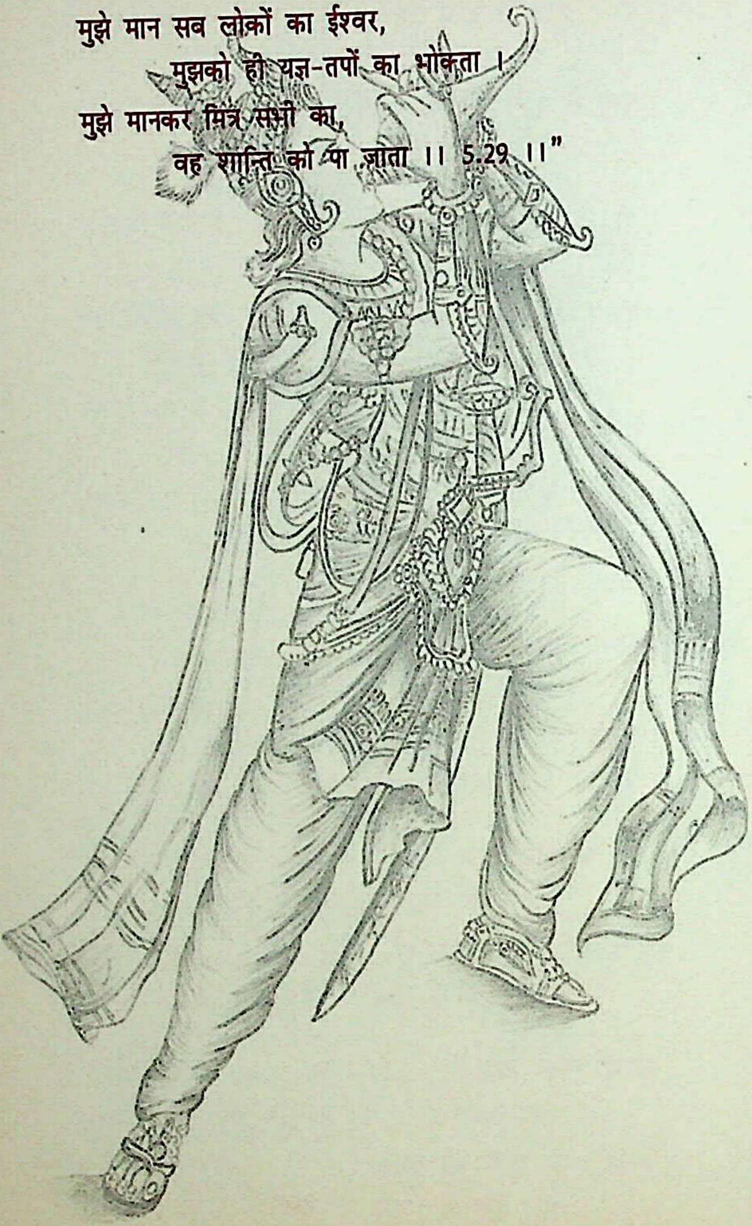

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

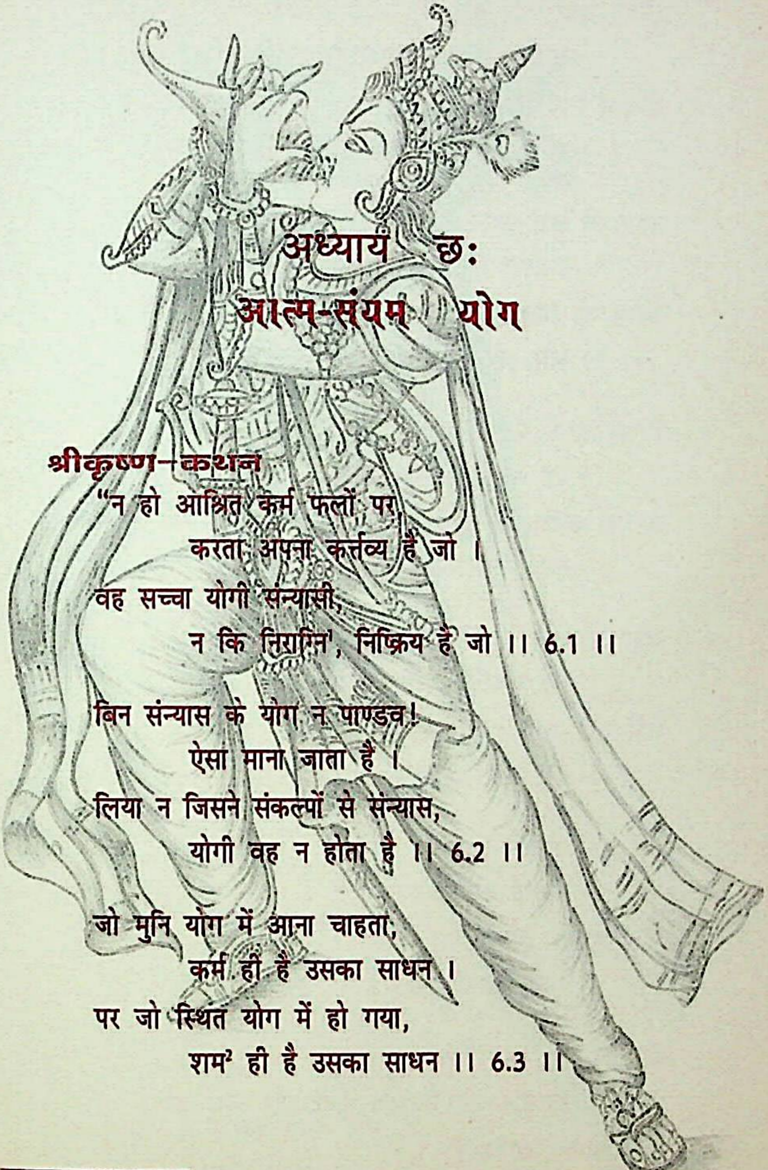

अध्याय छः
आत्म-संयम योग

श्रीकृष्ण-कथन

"न हो आश्रित कर्म फलों पर,
करता अपना कर्त्तव्य है जो ।
वह सच्चा योगी संन्यासी,
न कि निरग्नि[1], निष्क्रिय है जो ।। 6.1 ।।

बिन संन्यास के योग न पाण्डव!
ऐसा माना जाता है ।
लिया न जिसने संकल्पों से संन्यास,
योगी वह न होता है ।। 6.2 ।।

जो मुनि योग में आना चाहता,
कर्म ही है उसका साधन ।
पर जो स्थित योग में हो गया,
शम[2] ही है उसका साधन ।। 6.3 ।।

---

1. बिन ऊर्जा के/निस्तेज ।
2. शान्त स्थिति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

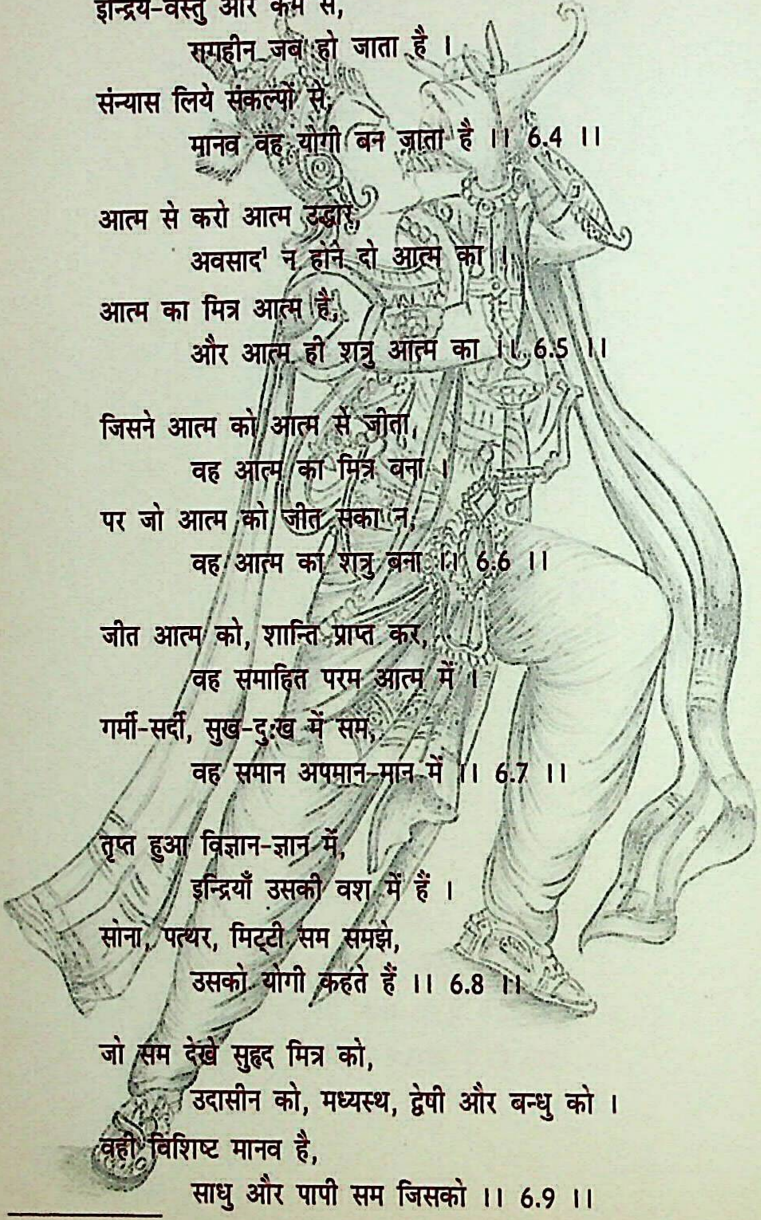

इन्द्रिय-वस्तु और कर्म से,
    रागहीन जब हो जाता है ।
संन्यास लिये संकल्पों से,
    मानव वह योगी बन जाता है ।। 6.4 ।।

आत्म से करो आत्म उद्धार,
    अवसाद[1] न होने दो आत्म का ।
आत्म का मित्र आत्म है,
    और आत्म ही शत्रु आत्म का ।। 6.5 ।।

जिसने आत्म को आत्म से जीता,
    वह आत्म का मित्र बना ।
पर जो आत्म को जीत सका न,
    वह आत्म का शत्रु बना ।। 6.6 ।।

जीत आत्म को, शान्ति प्राप्त कर,
    वह समाहित परम आत्म में ।
गर्मी-सर्दी, सुख-दुःख में सम,
    वह समान अपमान-मान में ।। 6.7 ।।

तृप्त हुआ विज्ञान-ज्ञान में,
    इन्द्रियाँ उसकी वश में हैं ।
सोना, पत्थर, मिट्टी सम समझे,
    उसको योगी कहते हैं ।। 6.8 ।।

जो सम देखे सुहृद मित्र को,
    उदासीन को, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धु को ।
वही विशिष्ट मानव है,
    साधु और पापी सम जिसको ।। 6.9 ।।

---

1. निम्न करना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

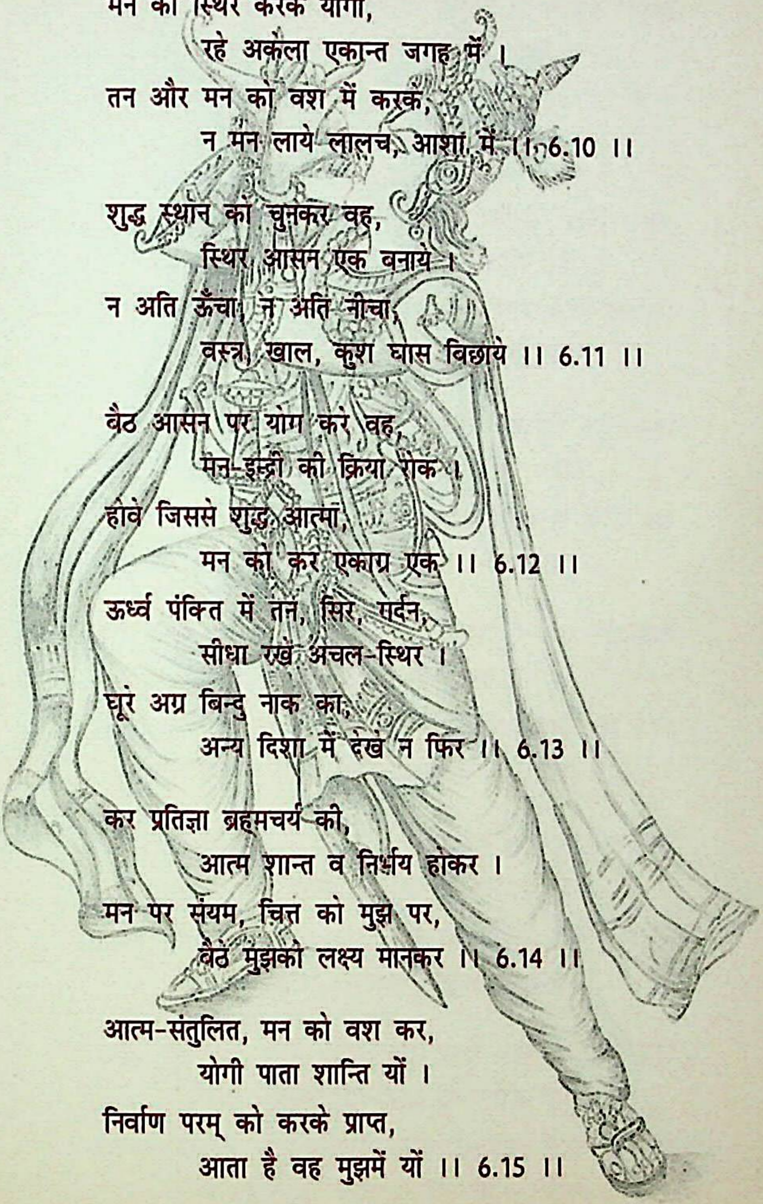

मन को स्थिर करके योगी,
रहे अकेला एकान्त जगह में ।
तन और मन को वश में करके,
न मन लाये लालच, आशा में ।। 6.10 ।।

शुद्ध स्थान को चुनकर वह,
स्थिर आसन एक बनाये ।
न अति ऊँचा, न अति नीचा,
वस्त्र, खाल, कुश घास बिछाये ।। 6.11 ।।

बैठ आसन पर योग करे वह,
मन-इन्द्री की क्रिया रोक ।
होवे जिससे शुद्ध आत्मा,
मन को कर एकाग्र एक ।। 6.12 ।।

ऊर्ध्व पंक्ति में तन, सिर, गर्दन,
सीधा रखे अचल-स्थिर ।
घूरे अग्र बिन्दु नाक का,
अन्य दिशा में देखे न फिर ।। 6.13 ।।

कर प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की,
आत्म शान्त व निर्भय होकर ।
मन पर संयम, चित्त को मुझ पर,
बैठे मुझको लक्ष्य मानकर ।। 6.14 ।।

आत्म-संतुलित, मन को वश कर,
योगी पाता शान्ति यों ।
निर्वाण परम् को करके प्राप्त,
आता है वह मुझमें यों ।। 6.15 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

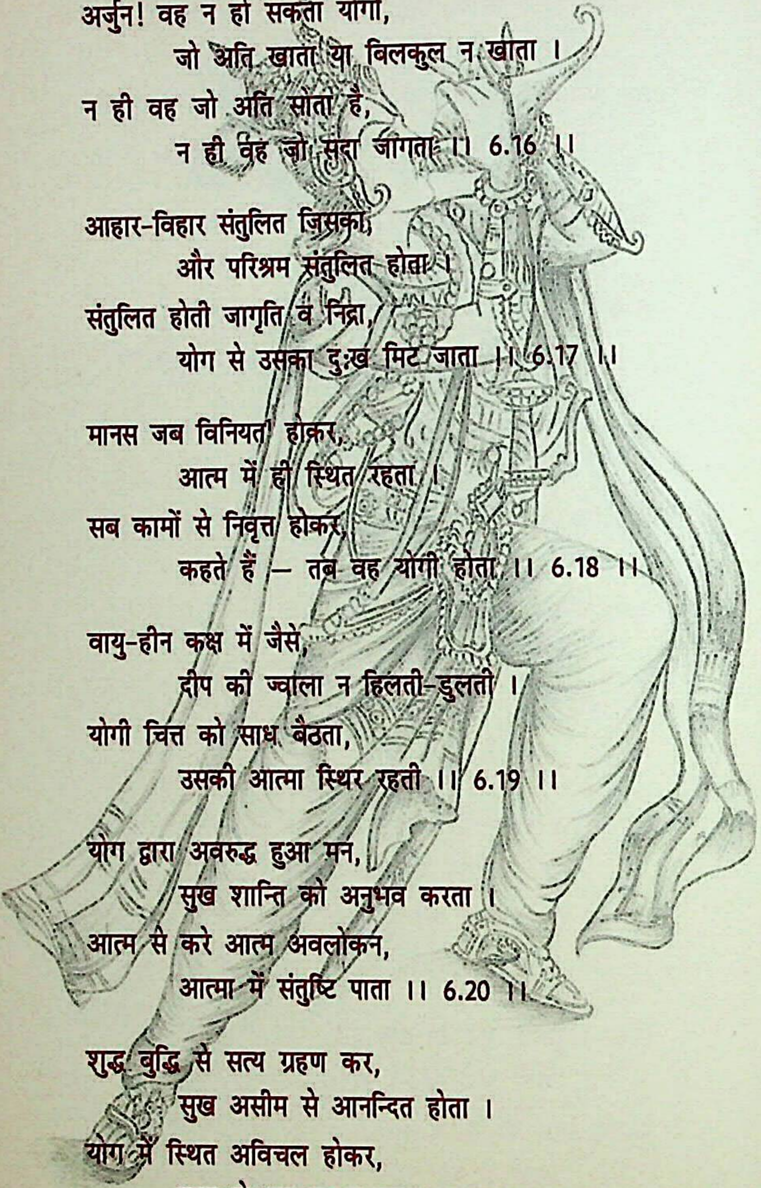

अर्जुन! वह न हो सकता योगी,
जो अति खाता या बिलकुल न खाता ।
न ही वह जो अति सोता है,
न ही वह जो सदा जागता ।। 6.16 ।।

आहार-विहार संतुलित जिसका,
और परिश्रम संतुलित होता ।
संतुलित होती जागृति व निद्रा,
योग से उसका दुःख मिट जाता ।। 6.17 ।।

मानस जब विनियत[1] होकर,
आत्म में ही स्थित रहता ।
सब कामों से निवृत्त होकर,
कहते हैं — तब वह योगी होता ।। 6.18 ।।

वायु-हीन कक्ष में जैसे,
दीप की ज्वाला न हिलती-डुलती ।
योगी चित्त को साध बैठता,
उसकी आत्मा स्थिर रहती ।। 6.19 ।।

योग द्वारा अवरुद्ध हुआ मन,
सुख शान्ति को अनुभव करता ।
आत्म से करे आत्म अवलोकन,
आत्मा में संतुष्टि पाता ।। 6.20 ।।

शुद्ध बुद्धि से सत्य ग्रहण कर,
सुख असीम से आनन्दित होता ।
योग में स्थित अविचल होकर,
सत्य से वह दूर न रहता ।। 6.21 ।।

1. पूर्ण रूपेण अनुशासित ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

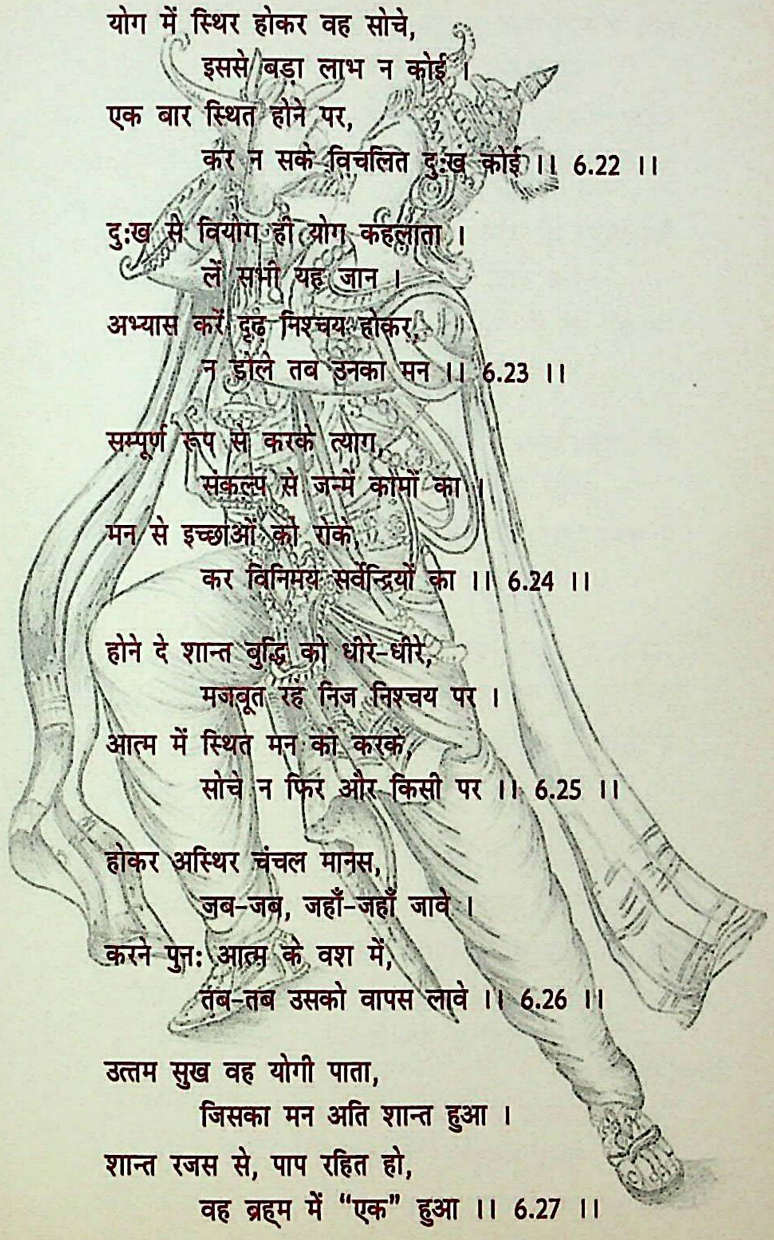

योग में स्थिर होकर वह सोचे,
इससे बड़ा लाभ न कोई ।
एक बार स्थित होने पर,
कर न सके विचलित दुःख कोई ।। 6.22 ।।

दुःख से वियोग ही योग कहलाता ।
लें सभी यह जान ।
अभ्यास करें दृढ़ निश्चय होकर,
न डोले तब उनका मन ।। 6.23 ।।

सम्पूर्ण रूप से करके त्याग,
संकल्प से जन्में कामों का ।
मन से इच्छाओं को रोके,
कर विनिमय सर्वेन्द्रियों का ।। 6.24 ।।

होने दे शान्त बुद्धि को धीरे-धीरे,
मजबूत रहे निज निश्चय पर ।
आत्म में स्थित मन को करके,
सोचे न फिर और किसी पर ।। 6.25 ।।

होकर अस्थिर चंचल मानस,
जब-जब, जहाँ-जहाँ जावे ।
करने पुनः आत्म के वश में,
तब-तब उसको वापस लावे ।। 6.26 ।।

उत्तम सुख वह योगी पाता,
जिसका मन अति शान्त हुआ ।
शान्त रजस से, पाप रहित हो,
वह ब्रह्म में "एक" हुआ ।। 6.27 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

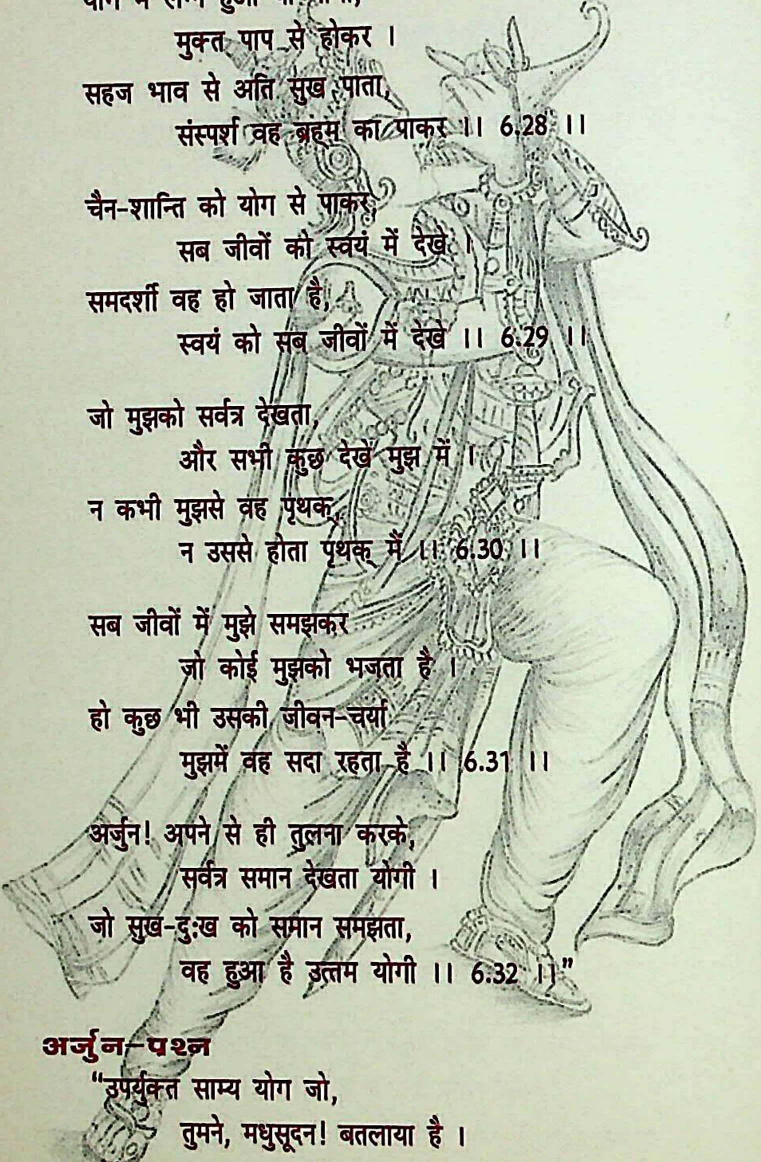

योग में लग्न हुआ यों योगी,
मुक्त पाप से होकर ।
सहज भाव से अति सुख पाता,
संस्पर्श वह ब्रह्म का पाकर ।। 6.28 ।।

चैन-शान्ति को योग से पाकर,
सब जीवों को स्वयं में देखे ।
समदर्शी वह हो जाता है,
स्वयं को सब जीवों में देखे ।। 6.29 ।।

जो मुझको सर्वत्र देखता,
और सभी कुछ देखे मुझ में ।
न कभी मुझसे वह पृथक,
न उससे होता पृथक् मैं ।। 6.30 ।।

सब जीवों में मुझे समझकर
जो कोई मुझको भजता है ।
हो कुछ भी उसकी जीवन-चर्या
मुझमें वह सदा रहता है ।। 6.31 ।।

अर्जुन! अपने से ही तुलना करके,
सर्वत्र समान देखता योगी ।
जो सुख-दुःख को समान समझता,
वह हुआ है उत्तम योगी ।। 6.32 ।।"

अर्जुन-प्रश्न

"उपर्युक्त साम्य योग जो,
तुमने, मधुसूदन! बतलाया है ।
कैसे इस पर आचरण होगा,
मन अति चंचल, अस्थिर है ।। 6.33 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे कृष्ण! मानस अति चंचल,
बेचैन बली यह सुदृढ़ है ।
इसको वश में कर पाना,
वायु को वश में करने जैसा दुष्कर है ।। 6.34 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"दुष्कर है चंचल मन का वशीकरण,
महाबाहु! इसमें न कोई संशय है ।
पर करने से अभ्यास, कुन्ती सुत!
व वैराग्य से यह सम्भव है ।। 6.35 ।।

योग-प्राप्ति कठिन है उसको,
जो आत्म-संयम न करे ।
वशीकरण आत्म का सम्भव,
यदि कोई ठीक उपाय करे ।। 6.36 ।।"

अर्जुन–प्रश्न

"श्रद्धावत् उपाय करके भी,
जो मन को योग में ला न सका ।
असफल हुआ योग में जो यों,
होता है, कृष्ण! क्या उसका ।। 6.37 ।।

गिरकर यों वह नष्ट हुआ,
जैसे छिन्न एक बादल होता ।
महाबाहु! प्रतिष्ठा हीन वह,
हो मोहित, ब्रह्म के पथ से डिगता ।। 6.38 ।।

पूर्ण रूप से दूर करो,
हे कृष्ण! मेरे इस संशय को ।
और नहीं कोई इस जग में,
जो कर सके दूर इसको ।। 6.39 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

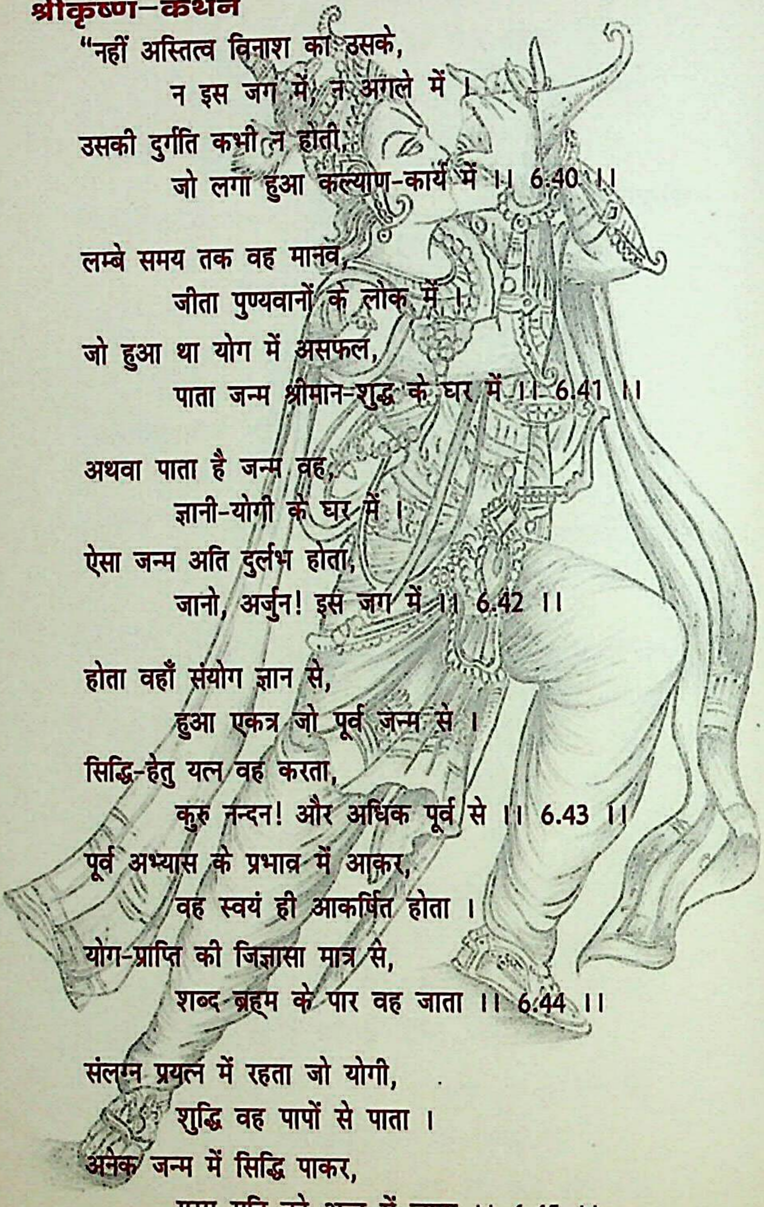

श्रीकृष्ण–कथन

"नहीं अस्तित्व विनाश का उसके,
न इस जग में, न अगले में ।
उसकी दुर्गति कभी न होती,
जो लगा हुआ कल्याण-कार्य में ।। 6.40 ।।

लम्बे समय तक वह मानव,
जीता पुण्यवानों के लोक में ।
जो हुआ था योग में असफल,
पाता जन्म श्रीमान-शुद्ध के घर में ।। 6.41 ।।

अथवा पाता है जन्म वह,
ज्ञानी-योगी के घर में ।
ऐसा जन्म अति दुर्लभ होता,
जानो, अर्जुन! इस जग में ।। 6.42 ।।

होता वहाँ संयोग ज्ञान से,
हुआ एकत्र जो पूर्व जन्म से ।
सिद्धि-हेतु यत्न वह करता,
कुरु नन्दन! और अधिक पूर्व से ।। 6.43 ।।
पूर्व अभ्यास के प्रभाव में आकर,
वह स्वयं ही आकर्षित होता ।
योग-प्राप्ति की जिज्ञासा मात्र से,
शब्द ब्रह्म के पार वह जाता ।। 6.44 ।।

संलग्न प्रयत्न में रहता जो योगी,
शुद्धि वह पापों से पाता ।
अनेक जन्म में सिद्धि पाकर,
परम् गति को अन्त में जाता ।। 6.45 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तपस्वी से योगी बड़ा है,
और ज्ञानी से भी वह बड़ा ।
अर्जुन! तुम योगी बन जाओ,
कर्मी से भी है वह बड़ा ।। 6.46 ।।

और योगियों में भी योगी,
रहकर जो अति श्रद्धावान ।
अन्तर्मन से मुझको भजता,
वही श्रेष्ठ है भक्तिवान ।। 6.47 ।।"

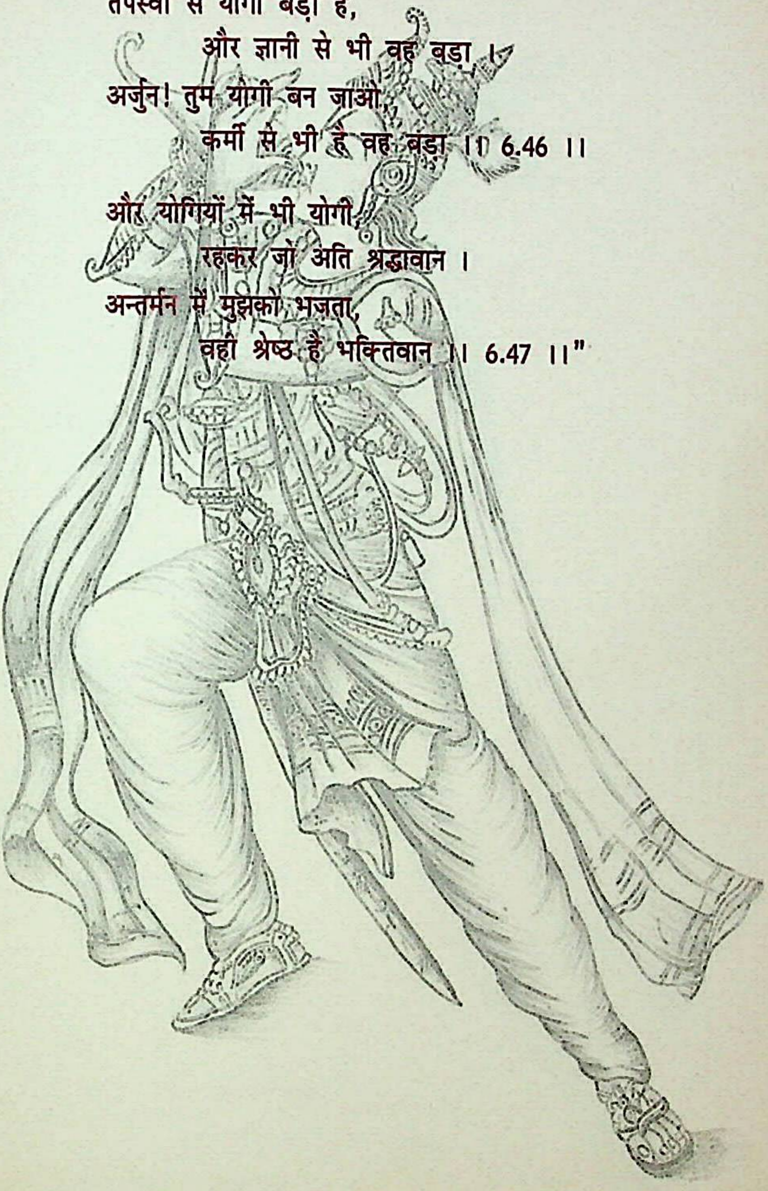

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

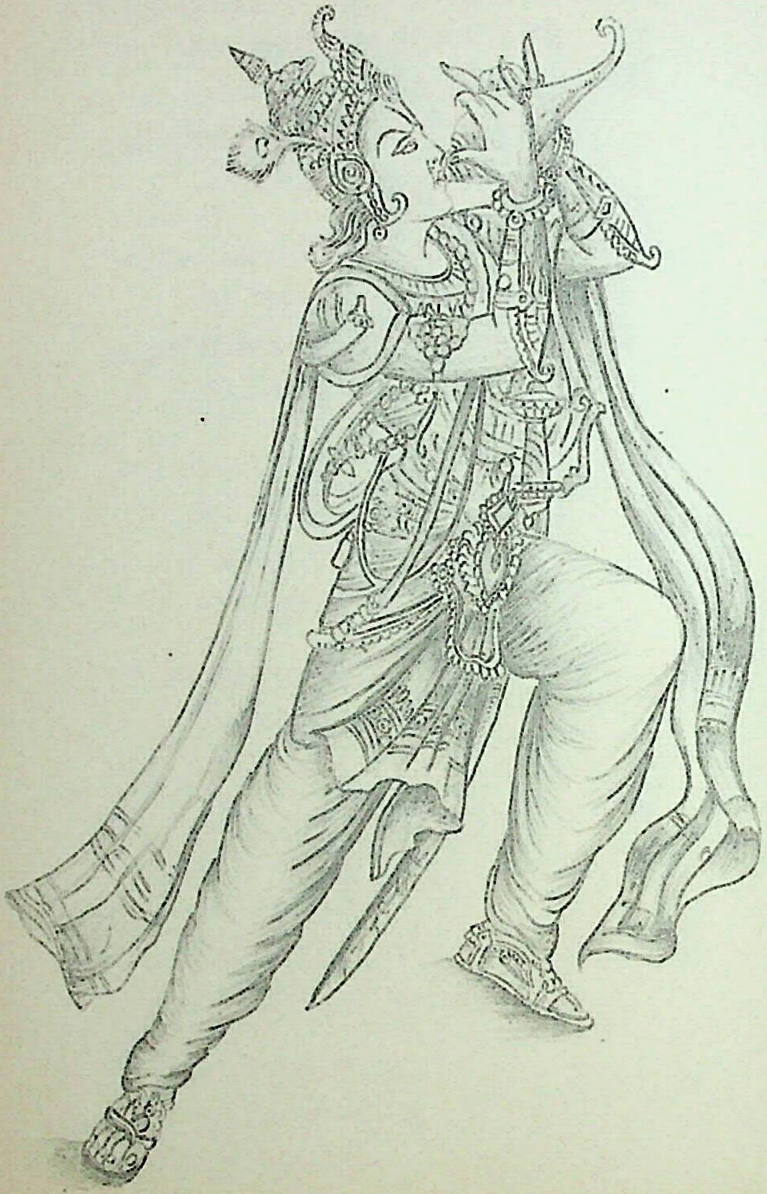

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

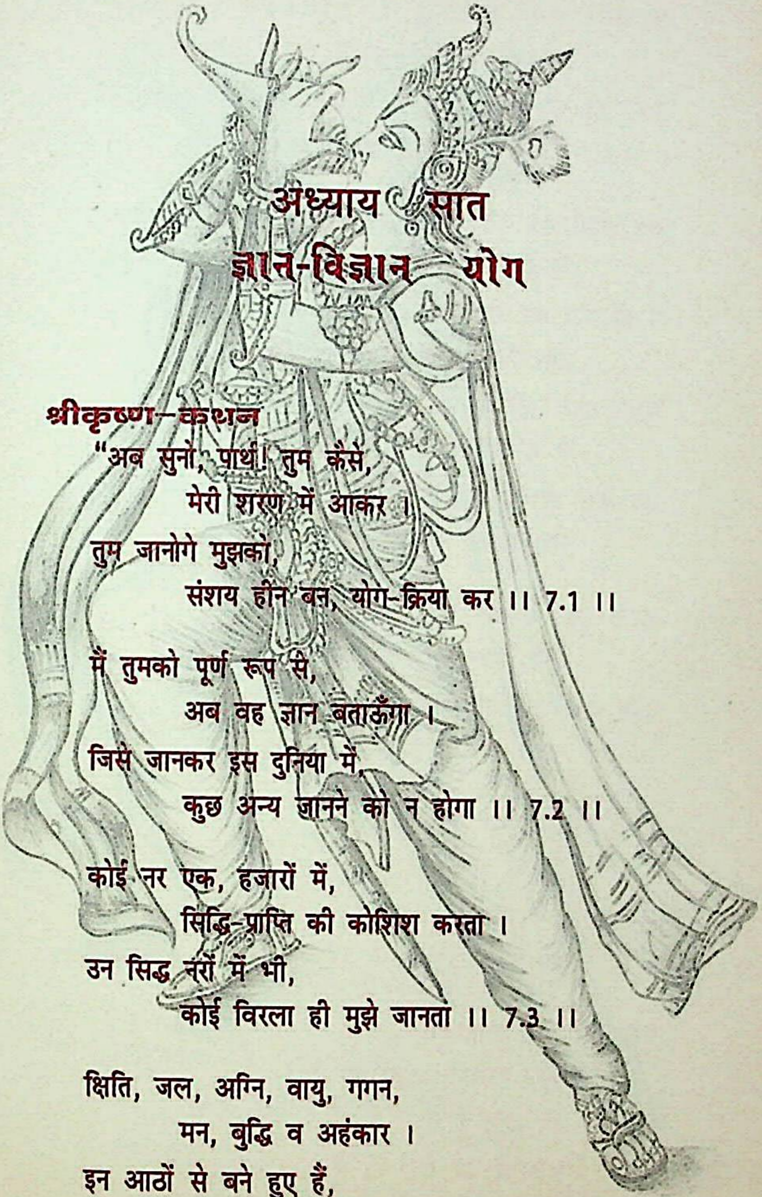

अध्याय सात
ज्ञान-विज्ञान योग

श्रीकृष्ण–कथन

"अब सुनो, पार्थ! तुम कैसे,
मेरी शरण में आकर ।
तुम जानोगे मुझको,
संशय हीन बन, योग-क्रिया कर ।। 7.1 ।।

मैं तुमको पूर्ण रूप से,
अब वह ज्ञान बताऊँगा ।
जिसे जानकर इस दुनिया में,
कुछ अन्य जानने को न होगा ।। 7.2 ।।

कोई नर एक, हजारों में,
सिद्धि-प्राप्ति की कोशिश करता ।
उन सिद्ध नरों में भी,
कोई विरला ही मुझे जानता ।। 7.3 ।।

क्षिति, जल, अग्नि, वायु, गगन,
मन, बुद्धि व अहंकार ।
इन आठों से बने हुए हैं,
मेरी अपरा प्रकृति के प्रकार ।। 7.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

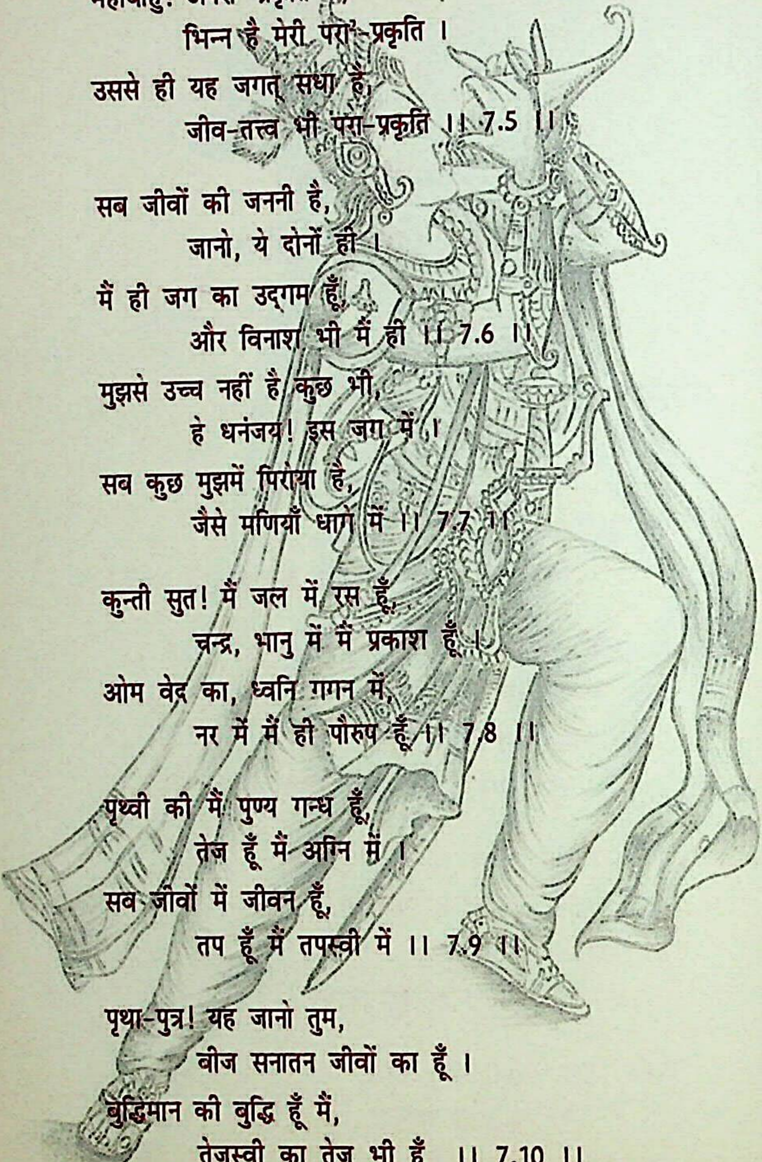

महाबाहु! अपरा[1] प्रकृति से,
भिन्न है मेरी परा[2]-प्रकृति ।
उससे ही यह जगत् सधा है,
जीव-तत्त्व भी परा-प्रकृति ।। 7.5 ।।

सब जीवों की जननी है,
जानो, ये दोनों ही ।
मैं ही जग का उद्गम हूँ,
और विनाश भी मैं ही ।। 7.6 ।।
मुझसे उच्च नहीं है कुछ भी,
हे धनंजय! इस जग में ।
सब कुछ मुझमें पिरोया है,
जैसे मणियाँ धागे में ।। 7.7 ।।

कुन्ती सुत! मैं जल में रस हूँ,
चन्द्र, भानु में मैं प्रकाश हूँ ।
ओम वेद का, ध्वनि गगन में,
नर में मैं ही पौरुष हूँ ।। 7.8 ।।

पृथ्वी की मैं पुण्य गन्ध हूँ,
तेज हूँ मैं अग्नि में ।
सब जीवों में जीवन हूँ,
तप हूँ मैं तपस्वी में ।। 7.9 ।।

पृथा-पुत्र! यह जानो तुम,
बीज सनातन जीवों का हूँ ।
बुद्धिमान की बुद्धि हूँ मैं,
तेजस्वी का तेज भी हुँ ।। 7.10 ।।

1. निम्न ।
2. उच्च ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

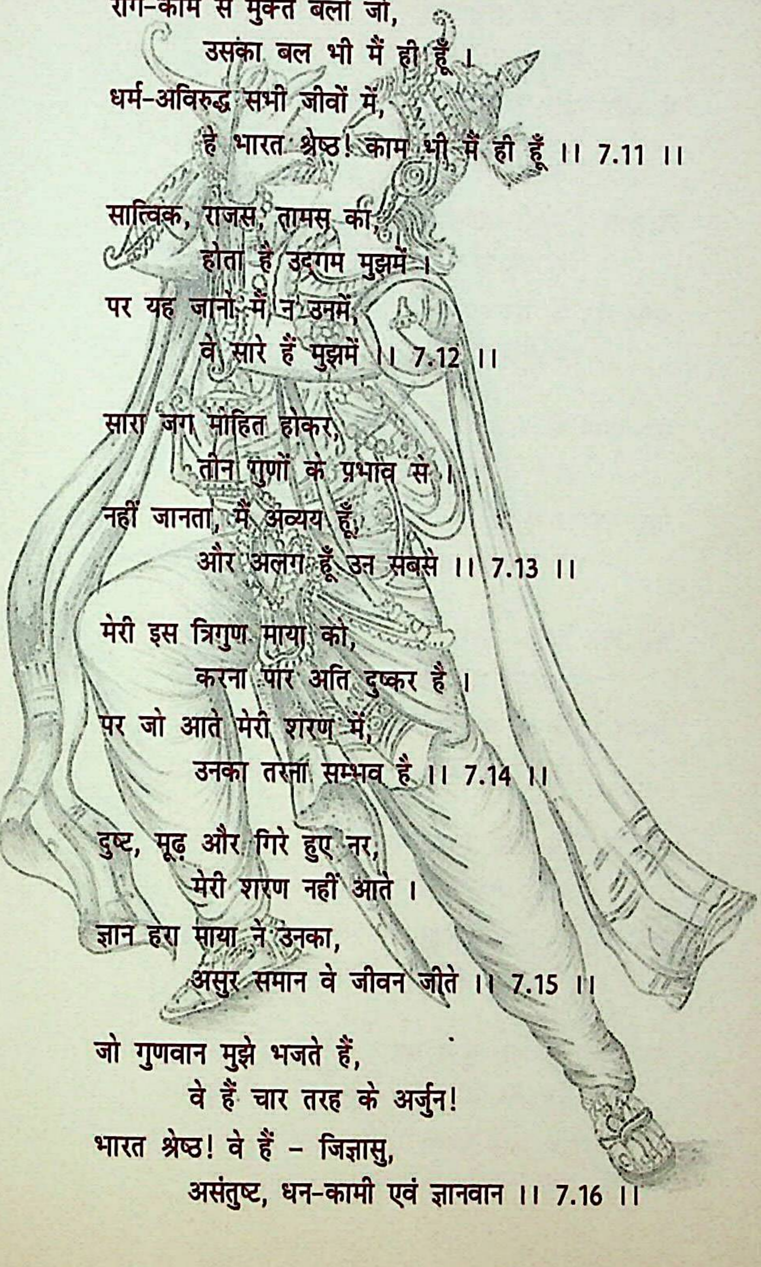

राग-काम से मुक्त बली जो,
उसका बल भी मैं ही हूँ।
धर्म-अविरुद्ध सभी जीवों में,
हे भारत श्रेष्ठ! काम भी मैं ही हूँ ।। 7.11 ।।

सात्विक, राजस, तामस को,
होता है उद्‌गम मुझमें।
पर यह जानो मैं न उनमें,
वे सारे हैं मुझमें ।। 7.12 ।।

सारा जग मोहित होकर,
तीन गुणों के प्रभाव से।
नहीं जानता, मैं अव्यय हूँ,
और अलग हूँ उन सबसे ।। 7.13 ।।

मेरी इस त्रिगुण माया को,
करना पार अति दुष्कर है।
पर जो आते मेरी शरण में,
उनका तरना सम्भव है ।। 7.14 ।।

दुष्ट, मूढ़ और गिरे हुए नर,
मेरी शरण नहीं आते।
ज्ञान हरा माया ने उनका,
असुर समान वे जीवन जीते ।। 7.15 ।।

जो गुणवान मुझे भजते हैं,
वे हैं चार तरह के अर्जुन!
भारत श्रेष्ठ! वे हैं - जिज्ञासु,
असंतुष्ट, धन-कामी एवं ज्ञानवान ।। 7.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

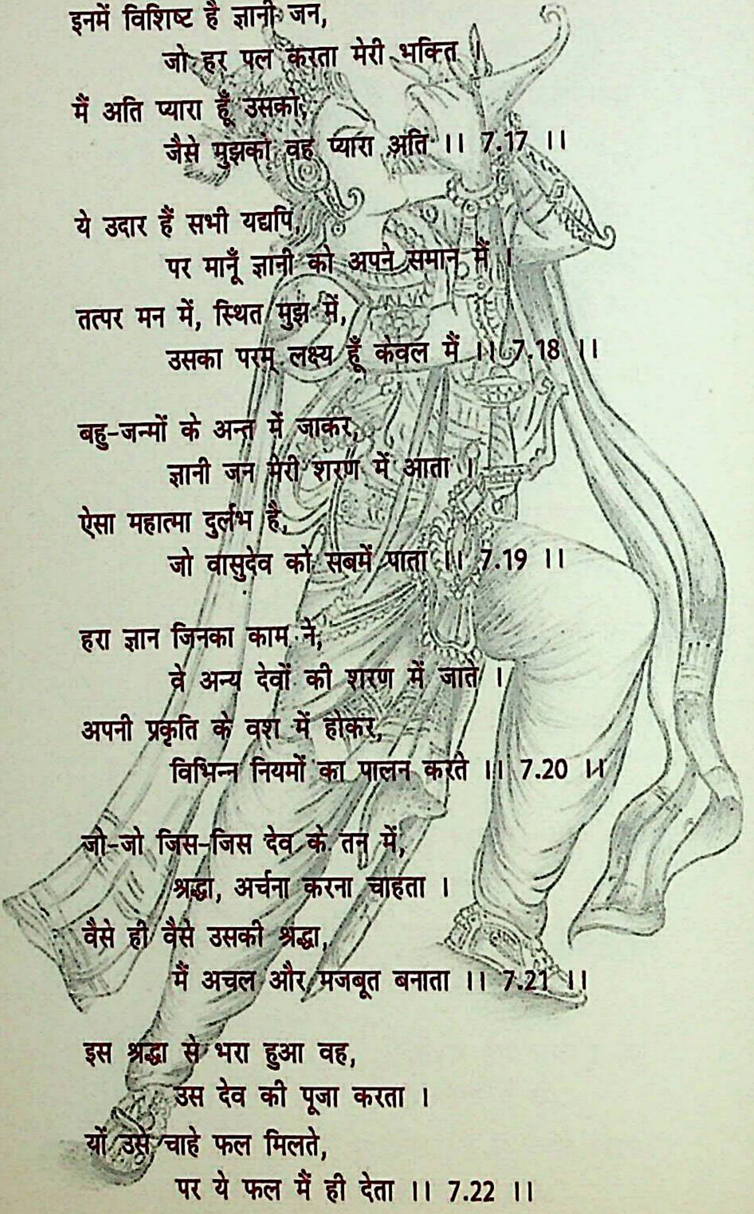

इनमें विशिष्ट है ज्ञानी जन,
जो हर पल करता मेरी भक्ति ।
मैं अति प्यारा हूँ उसको,
जैसे मुझको वह प्यारा अति ।। 7.17 ।।

ये उदार हैं सभी यद्यपि,
पर मानूँ ज्ञानी को अपने समान मैं ।
तत्पर मन में, स्थित मुझ में,
उसका परम् लक्ष्य हूँ केवल मैं ।। 7.18 ।।

बहु-जन्मों के अन्त में जाकर,
ज्ञानी जन मेरी शरण में आता ।
ऐसा महात्मा दुर्लभ है,
जो वासुदेव को सबमें पाता ।। 7.19 ।।

हरा ज्ञान जिनका काम ने,
वे अन्य देवों की शरण में जाते ।
अपनी प्रकृति के वश में होकर,
विभिन्न नियमों का पालन करते ।। 7.20 ।।

जो-जो जिस-जिस देव के तन में,
श्रद्धा, अर्चना करना चाहता ।
वैसे ही वैसे उसकी श्रद्धा,
मैं अचल और मजबूत बनाता ।। 7.21 ।।

इस श्रद्धा से भरा हुआ वह,
उस देव की पूजा करता ।
यों उसे चाहे फल मिलते,
पर ये फल मैं ही देता ।। 7.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

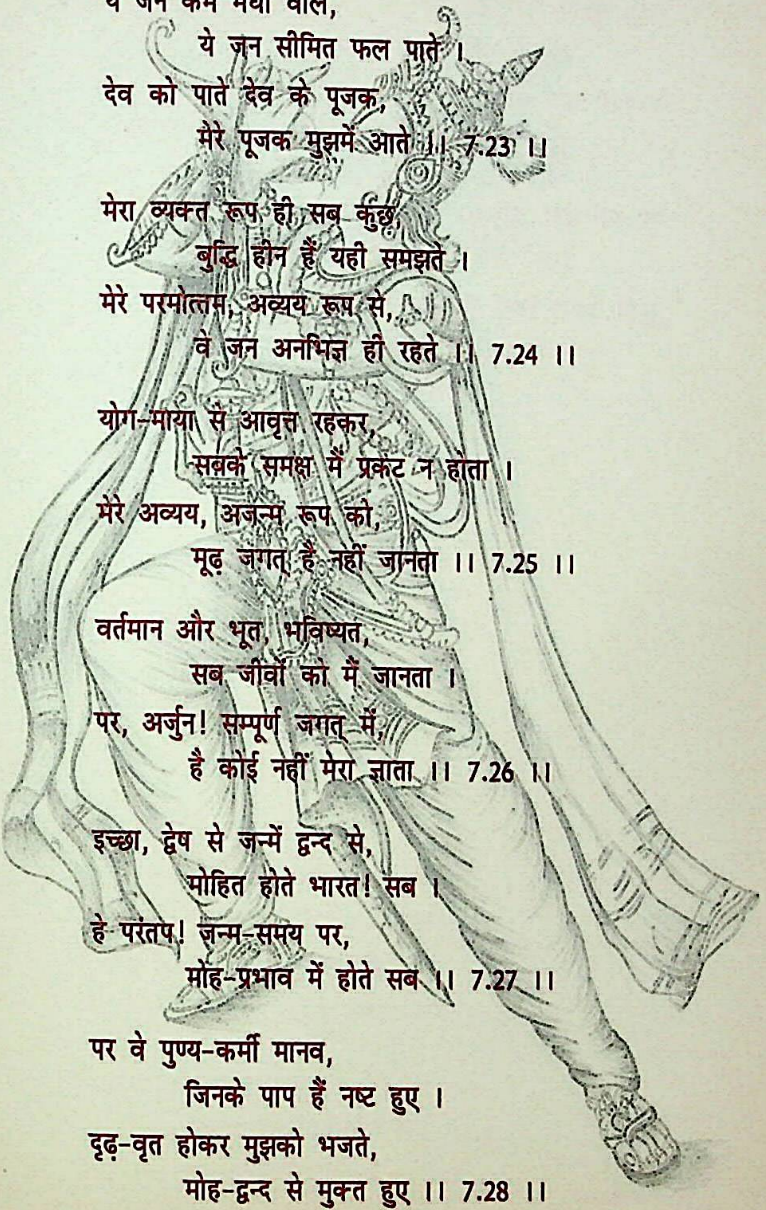

ये जन कम मेधा वाले,
ये जन सीमित फल पाते ।
देव को पाते देव के पूजक,
मेरे पूजक मुझमें आते ।। 7.23 ।।

मेरा व्यक्त रूप ही सब कुछ,
बुद्धि हीन हैं यही समझते ।
मेरे परमोत्तम, अव्यय रूप से,
वे जन अनभिज्ञ ही रहते ।। 7.24 ।।

योग-माया से आवृत्त रहकर,
सबके समक्ष मैं प्रकट न होता ।
मेरे अव्यय, अजन्म रूप को,
मूढ़ जगत् है नहीं जानता ।। 7.25 ।।

वर्तमान और भूत, भविष्यत,
सब जीवों को मैं जानता ।
पर, अर्जुन! सम्पूर्ण जगत् में,
है कोई नहीं मेरा ज्ञाता ।। 7.26 ।।

इच्छा, द्वेष से जन्में द्वन्द से,
मोहित होते भारत! सब ।
हे परंतप! जन्म-समय पर,
मोह-प्रभाव में होते सब ।। 7.27 ।।

पर वे पुण्य-कर्मी मानव,
जिनके पाप हैं नष्ट हुए ।
दृढ़-वृत होकर मुझको भजते,
मोह-द्वन्द से मुक्त हुए ।। 7.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मृत्यु, बुढ़ापे से मुक्ति पाने,
जो-जो मेरी शरण में आते ।
अध्यात्म-कर्म को समझ पूर्णतः
परम-ब्रह्म को वे-वे पाते ।। 7.29 ।।

मेरे अधिभूत[1] अधिदेव[2] अधियज्ञ[3] रूप –
इनको जो कोई जाने ।
मुझमें अपना चित्त लगाकर,
अन्तकाल में भी मुझे जाने ।। 7.30 ।।"

1. भौतिक पदार्थ सम्बन्धी ।
2. ईश्वर से सम्बन्धित ।
3. यज्ञ सम्बन्धी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

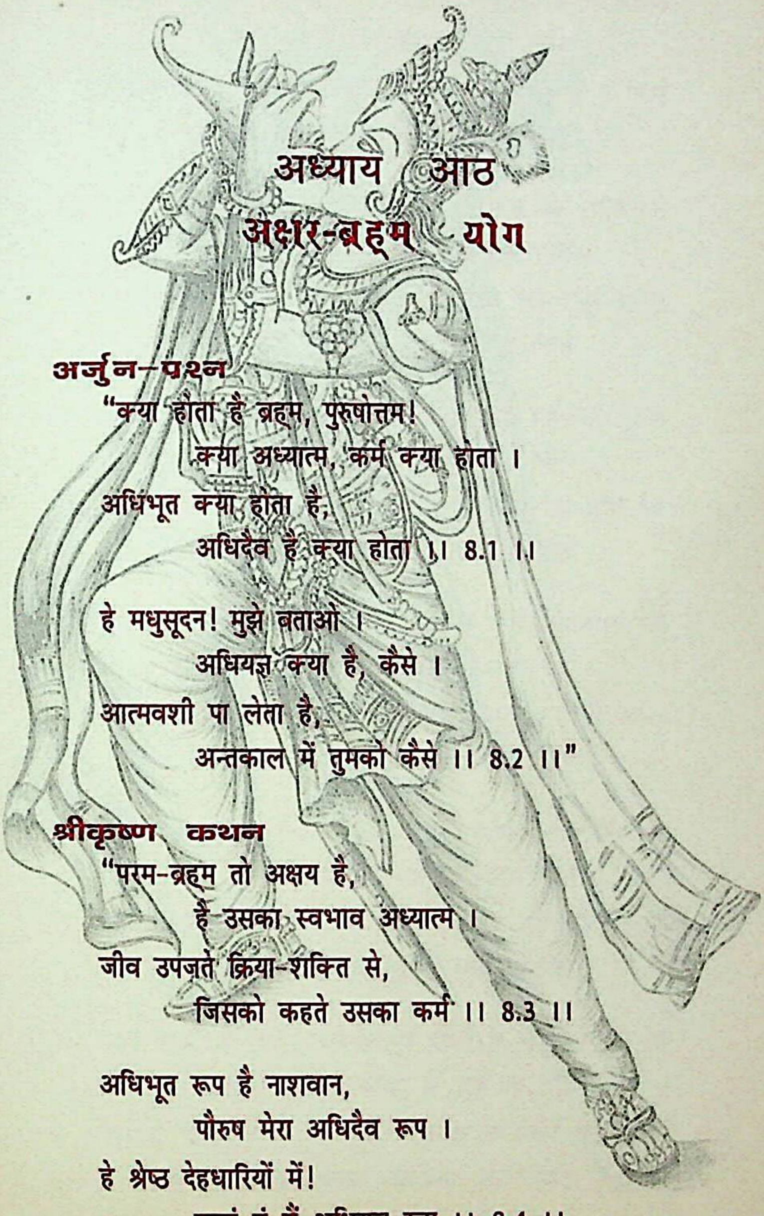

अध्याय आठ
अक्षर-ब्रह्म योग

अर्जुन-प्रश्न

"क्या होता है ब्रह्म, पुरुषोत्तम!
क्या अध्यात्म, कर्म क्या होता ।
अधिभूत क्या होता है,
अधिदैव है क्या होता ।। 8.1 ।।

हे मधुसूदन! मुझे बताओ ।
अधियज्ञ क्या है, कैसे ।
आत्मवशी पा लेता है,
अन्तकाल में तुमको कैसे ।। 8.2 ।।"

श्रीकृष्ण कथन

"परम-ब्रह्म तो अक्षय है,
है उसका स्वभाव अध्यात्म ।
जीव उपजते क्रिया-शक्ति से,
जिसको कहते उसका कर्म ।। 8.3 ।।

अधिभूत रूप है नाशवान,
पौरुष मेरा अधिदैव रूप ।
हे श्रेष्ठ देहधारियों में!
स्वयं हूं मैं अधियज्ञ रूप ।। 8.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

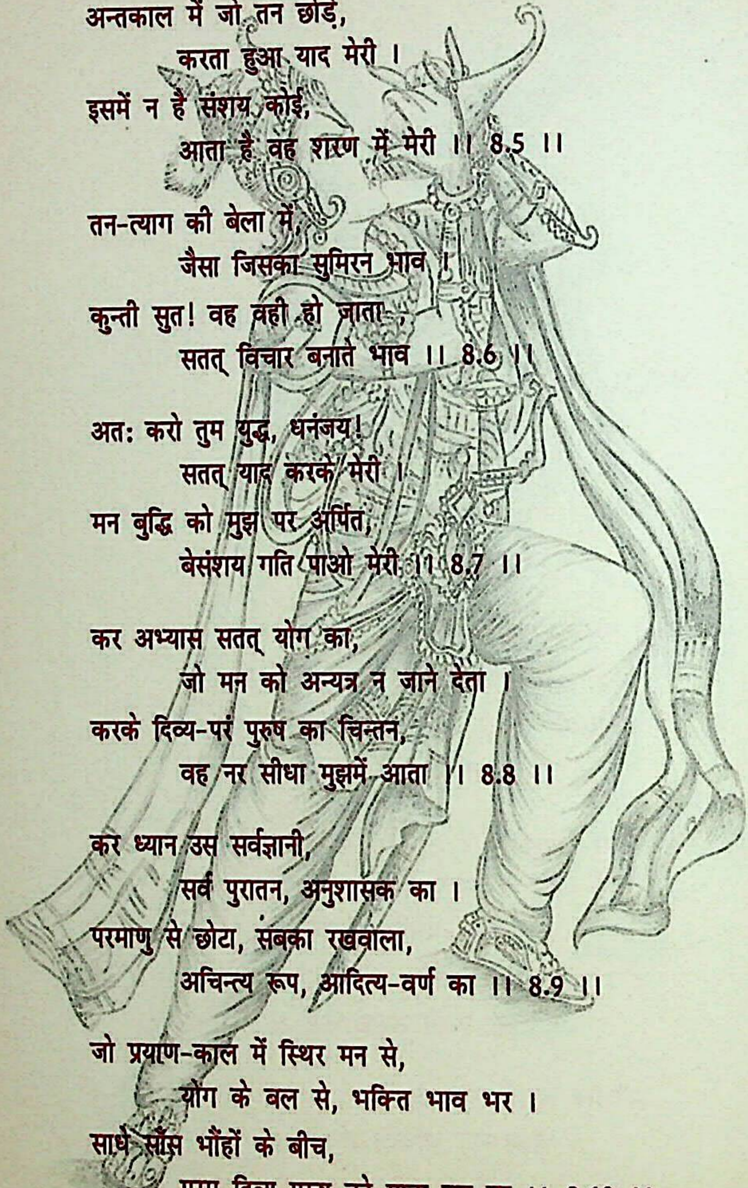

अन्तकाल में जो तन छोड़े,
करता हुआ याद मेरी ।
इसमें न है संशय कोई,
आता है वह शरण में मेरी ।। 8.5 ।।

तन-त्याग की बेला में,
जैसा जिसका सुमिरन भाव ।
कुन्ती सुत! वह वही हो जाता ,
सतत् विचार बनाते भाव ।। 8.6 ।।

अत: करो तुम युद्ध, धनंजय!
सतत् याद करके मेरी ।
मन बुद्धि को मुझ पर अर्पित,
बेसंशय गति पाओ मेरी ।। 8.7 ।।

कर अभ्यास सतत् योग का,
जो मन को अन्यत्र न जाने देता ।
करके दिव्य-परं पुरुष का चिन्तन,
वह नर सीधा मुझमें आता ।। 8.8 ।।

कर ध्यान उस सर्वज्ञानी,
सर्व पुरातन, अनुशासक का ।
परमाणु से छोटा, सबका रखवाला,
अचिन्त्य रूप, आदित्य-वर्ण का ।। 8.9 ।।

जो प्रयाण-काल में स्थिर मन से,
योग के बल से, भक्ति भाव भर ।
साधे साँस भौंहों के बीच,
परम् दिव्य पुरुष को पाता वह नर ।। 8.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

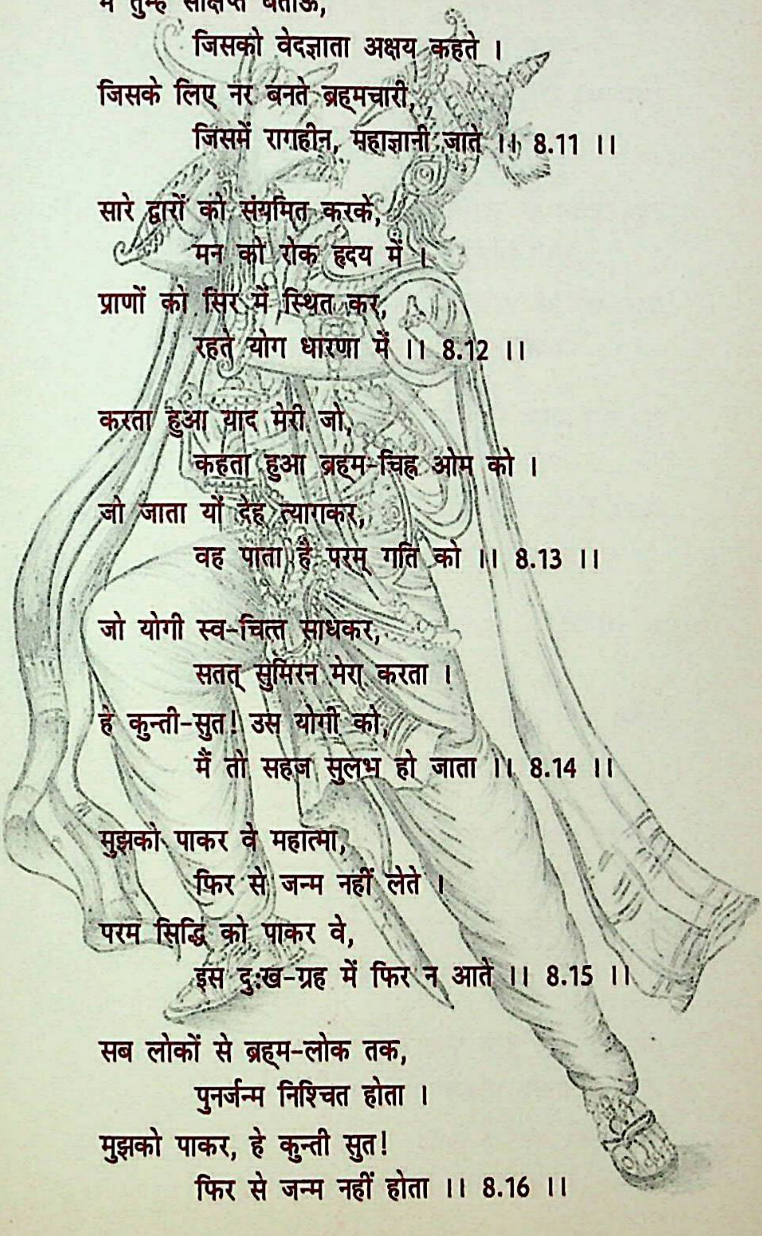

मैं तुम्हें संक्षिप्त बताऊं,
जिसको वेदज्ञाता अक्षय कहते ।
जिसके लिए नर बनते ब्रह्मचारी,
जिसमें रागहीन, महाज्ञानी जाते ।। 8.11 ।।

सारे द्वारों को संयमित करके,
मन को रोक हृदय में ।
प्राणों को सिर में स्थित कर,
रहते योग धारणा में ।। 8.12 ।।

करता हुआ याद मेरी जो,
कहता हुआ ब्रह्म-चिह्न ओम को ।
जो जाता यों देह त्यागकर,
वह पाता है परम् गति को ।। 8.13 ।।

जो योगी स्व-चित्त साधकर,
सतत् सुमिरन मेरा करता ।
हे कुन्ती-सुत! उस योगी को,
मैं तो सहज सुलभ हो जाता ।। 8.14 ।।

मुझको पाकर वे महात्मा,
फिर से जन्म नहीं लेते ।
परम सिद्धि को पाकर वे,
इस दुःख-ग्रह में फिर न आते ।। 8.15 ।।

सब लोकों से ब्रह्म-लोक तक,
पुनर्जन्म निश्चित होता ।
मुझको पाकर, हे कुन्ती सुत!
फिर से जन्म नहीं होता ।। 8.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मा का एक दिवस बनता,
मानव के सहस्त्र युगों से ।
ब्रह्मा की रात्रि भी बनती,
मानव के सहस्त्र युगों से ।। 8.17 ।।

ब्रह्म-दिवस के उद्भव के संग,
सभी व्यक्त, अव्यक्त से आते ।
ब्रह्म-रात्रि के आने पर फिर,
व्यक्त नष्ट हो, अव्यक्त में जाते ।। 8.18 ।।

इस जीव समूह की फिर से,
उत्पत्ति होती, प्रलय होती ।
व्यक्त दिवस में, अव्यक्त रात्रि में,
यह क्रिया पार्थ! स्वचालित होती ।। 8.19 ।।

पर इस व्यक्त-अव्यक्त से ऊपर,
एक अन्य अव्यक्त सनातन है ।
उसका नाश कभी न होता,
जबकि सबकी प्रलय होती है ।। 8.20 ।।

अव्यक्त-अक्षय जिसको कहते,
वही जीव की परम् गति है ।
वहाँ पहुँच फिर जीव न लौटें,
मेरा वही परम् धाम है ।। 8.21 ।।

पृथा-पुत्र! वह परम पुरुष,
अनन्य भक्ति से मिल सकता है ।
जिसमें सारे जीव हैं स्थित,
जिससे व्याप्त सभी कुछ है ।। 8.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किस-किस काल में जाने से,
योगी फिर न वापस आता ।
भरत श्रेष्ठ! मैं तुम्हें बताऊं,
किस काल में जाकर वापस आता ।। 8.23 ।।

शुक्ल पक्ष, उत्तरायण षटमासा,
अग्नि, ज्योति या दिवस काल में ।
इस पथ-काल में जाने वाला,
जाता ब्रहम-ज्ञानी ब्रहम में ।। 8.24 ।।

कृष्ण-पक्ष दक्षिणायन षटमासा,
धूम्र, अन्धेरे निशाकाल में ।
योगी आता पुनः लौटकर,
यदि वह जाता ऐसे काल में ।। 8.25 ।।

एक उजाला, एक अंधेरा,
दो पथ जाने जाते हैं ।
नहीं लौटते एक पे जाकर,
अन्य पे जाकर फिर आते हैं ।। 8.26 ।।

इन दो पथों के ज्ञान को पाकर,
योगी कोई न होता मोहित ।
अतः पृथा-सुत अर्जुन! तुम,
रहो सदा योग में स्थित ।। 8.27 ।।

वेद पाठ, तप, यज्ञ, दान, सब,
मिलता पुण्य-फल इन सबसे ।
पर इन सबसे योग उच्च है,
परम् धाम नर पाता इससे ।। 8.28 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

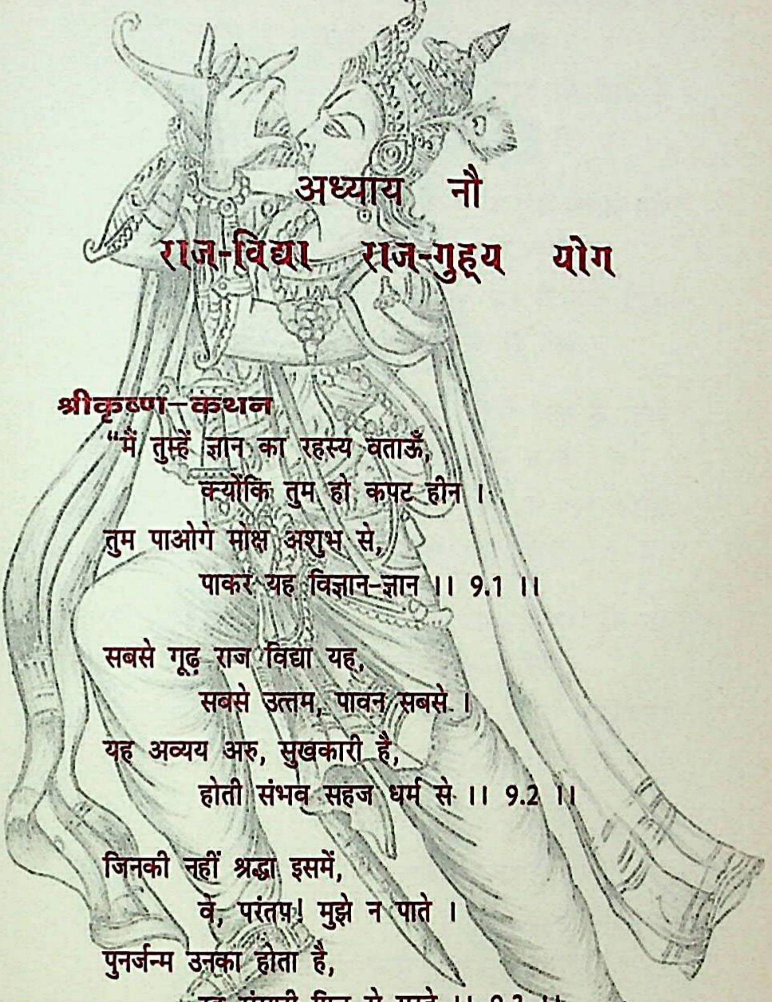

अध्याय नौ
राज-विद्या राज-गुह्य योग

श्रीकृष्ण–कथन

"मैं तुम्हें ज्ञान का रहस्य बताऊँ,
क्योंकि तुम हो कपट हीन ।
तुम पाओगे मोक्ष अशुभ से,
पाकर यह विज्ञान-ज्ञान ।। 9.1 ।।

सबसे गूढ़ राज विद्या यह,
सबसे उत्तम, पावन सबसे ।
यह अव्यय अरु, सुखकारी है,
होती संभव सहज धर्म से ।। 9.2 ।।

जिनकी नहीं श्रद्धा इसमें,
वे, परंतप! मुझे न पाते ।
पुनर्जन्म उनका होता है,
रह संसारी फिर से मरते ।। 9.3 ।।

मेरी अव्यक्त मूर्ति से,
है व्याप्त यह सारा जगत् ।
सारे जीव मुझमें स्थित हैं,
मैं नहीं उनमें स्थित ।। 9.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

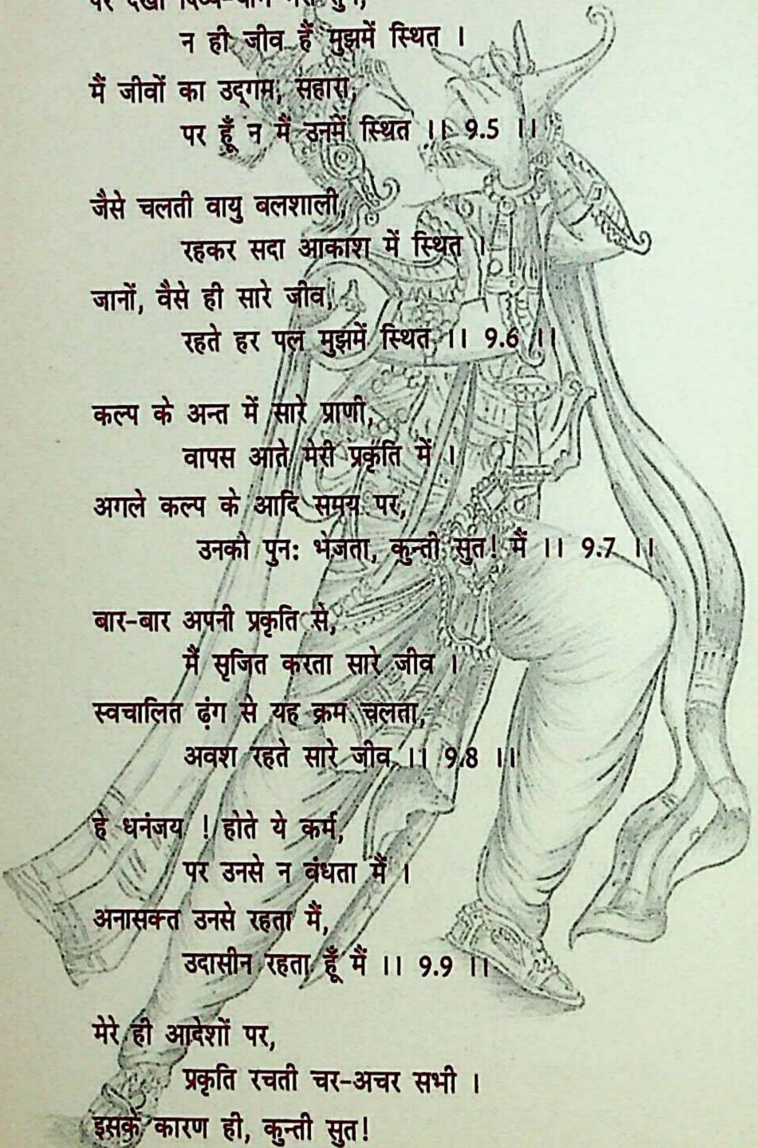

पर देखो दिव्य-योग मेरा तुम,
न ही जीव हैं मुझमें स्थित ।
मैं जीवों का उद्गम, सहारा,
पर हूँ न मैं उनमें स्थित ।। 9.5 ।।

जैसे चलती वायु बलशाली,
रहकर सदा आकाश में स्थित ।
जानों, वैसे ही सारे जीव,
रहते हर पल मुझमें स्थित ।। 9.6 ।।

कल्प के अन्त में सारे प्राणी,
वापस आते मेरी प्रकृति में ।
अगले कल्प के आदि समय पर,
उनको पुनः भेजता, कुन्ती सुत! मैं ।। 9.7 ।।

बार-बार अपनी प्रकृति से,
मैं सृजित करता सारे जीव ।
स्वचालित ढ़ंग से यह क्रम चलता,
अवश रहते सारे जीव ।। 9.8 ।।

हे धनंजय ! होते ये कर्म,
पर उनसे न बंधता मैं ।
अनासक्त उनसे रहता मैं,
उदासीन रहता हूँ मैं ।। 9.9 ।।

मेरे ही आदेशों पर,
प्रकृति रचती चर-अचर सभी ।
इसके कारण ही, कुन्ती सुत!
चलता रहता यह जगत् सभी ।। 9.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

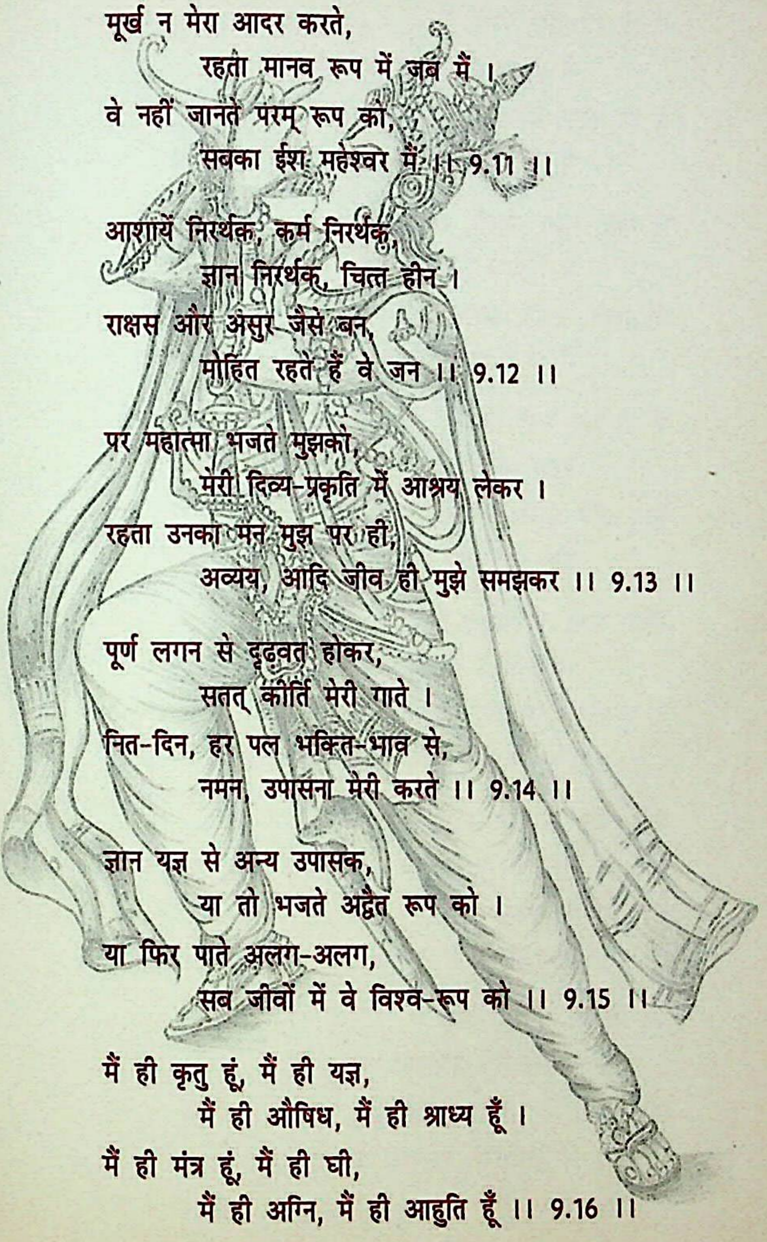

मूर्ख न मेरा आदर करते,
रहता मानव रूप में जब मैं ।
वे नहीं जानते परम् रूप को,
सबका ईश महेश्वर मैं ।। 9.11 ।।

आशायें निरर्थक, कर्म निरर्थक,
ज्ञान निरर्थक, चित्त हीन ।
राक्षस और असुर जैसे बन,
मोहित रहते हैं वे जन ।। 9.12 ।।

पर महात्मा भजते मुझको,
मेरी दिव्य-प्रकृति में आश्रय लेकर ।
रहता उनका मन मुझ पर ही,
अव्यय, आदि जीव ही मुझे समझकर ।। 9.13 ।।

पूर्ण लगन से दृढ़वत होकर,
सतत् कीर्ति मेरी गाते ।
नित-दिन, हर पल भक्ति-भाव से,
नमन, उपासना मेरी करते ।। 9.14 ।।

ज्ञान यज्ञ से अन्य उपासक,
या तो भजते अद्वैत रूप को ।
या फिर पाते अलग-अलग,
सब जीवों में वे विश्व-रूप को ।। 9.15 ।।

मैं ही कृतु हूं, मैं ही यज्ञ,
मैं ही औषिध, मैं ही श्राध्य हूँ ।
मैं ही मंत्र हूं, मैं ही घी,
मैं ही अग्नि, मैं ही आहुति हूँ ।। 9.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

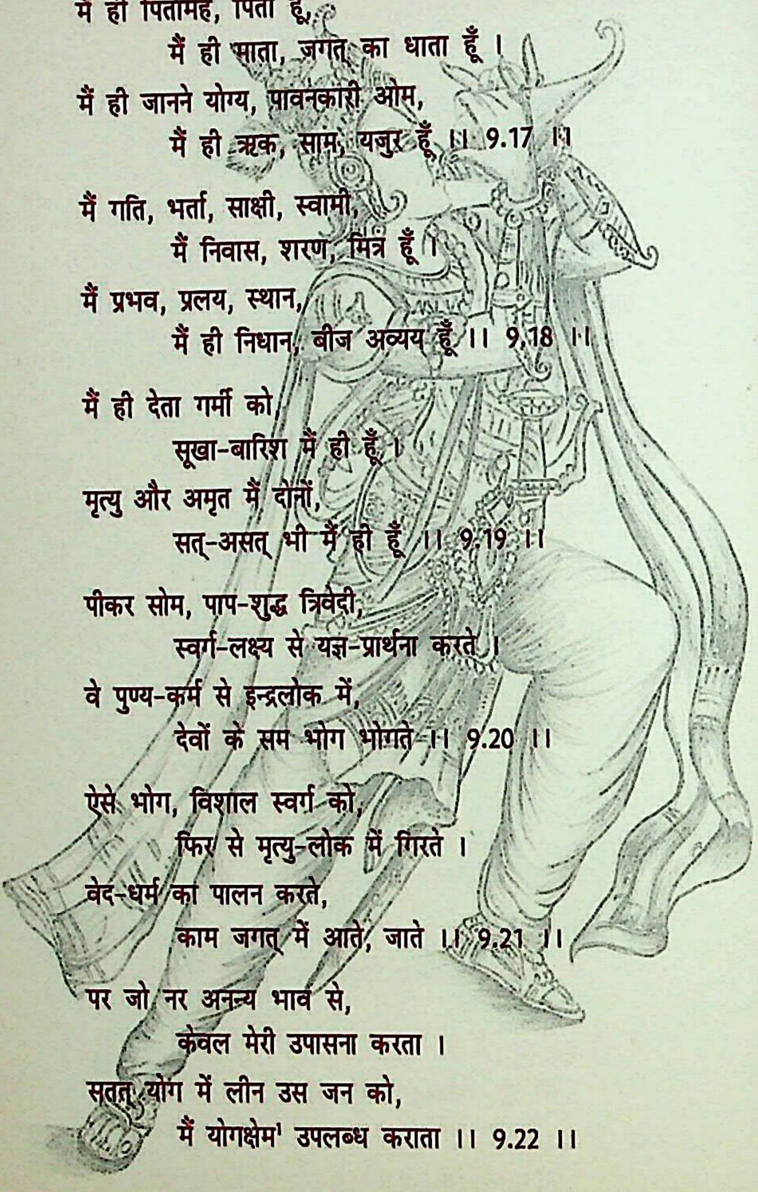

मैं ही पितामह, पिता हूँ,
मैं ही माता, जगत् का धाता हूँ ।
मैं ही जानने योग्य, पावनकारी ओम,
मैं ही ऋक, साम, यजुर हूँ ।। 9.17 ।।

मैं गति, भर्ता, साक्षी, स्वामी,
मैं निवास, शरण, मित्र हूँ ।
मैं प्रभव, प्रलय, स्थान,
मैं ही निधान, बीज अव्यय हूँ ।। 9.18 ।।

मैं ही देता गर्मी को,
सूखा-बारिश मैं ही हूँ ।
मृत्यु और अमृत मैं दोनों,
सत्-असत् भी मैं ही हूँ ।। 9.19 ।।

पीकर सोम, पाप-शुद्ध त्रिवेदी,
स्वर्ग-लक्ष्य से यज्ञ-प्रार्थना करते ।
वे पुण्य-कर्म से इन्द्रलोक में,
देवों के सम भोग भोगते ।। 9.20 ।।

ऐसे भोग, विशाल स्वर्ग को,
फिर से मृत्यु-लोक में गिरते ।
वेद-धर्म का पालन करते,
काम जगत् में आते, जाते ।। 9.21 ।।

पर जो नर अनन्य भाव से,
केवल मेरी उपासना करता ।
सतत् योग में लीन उस जन को,
मैं योगक्षेम[1] उपलब्ध कराता ।। 9.22 ।।

---

1. आवश्यक को प्राप्त करना एवं प्राप्त किये का संरक्षण करना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

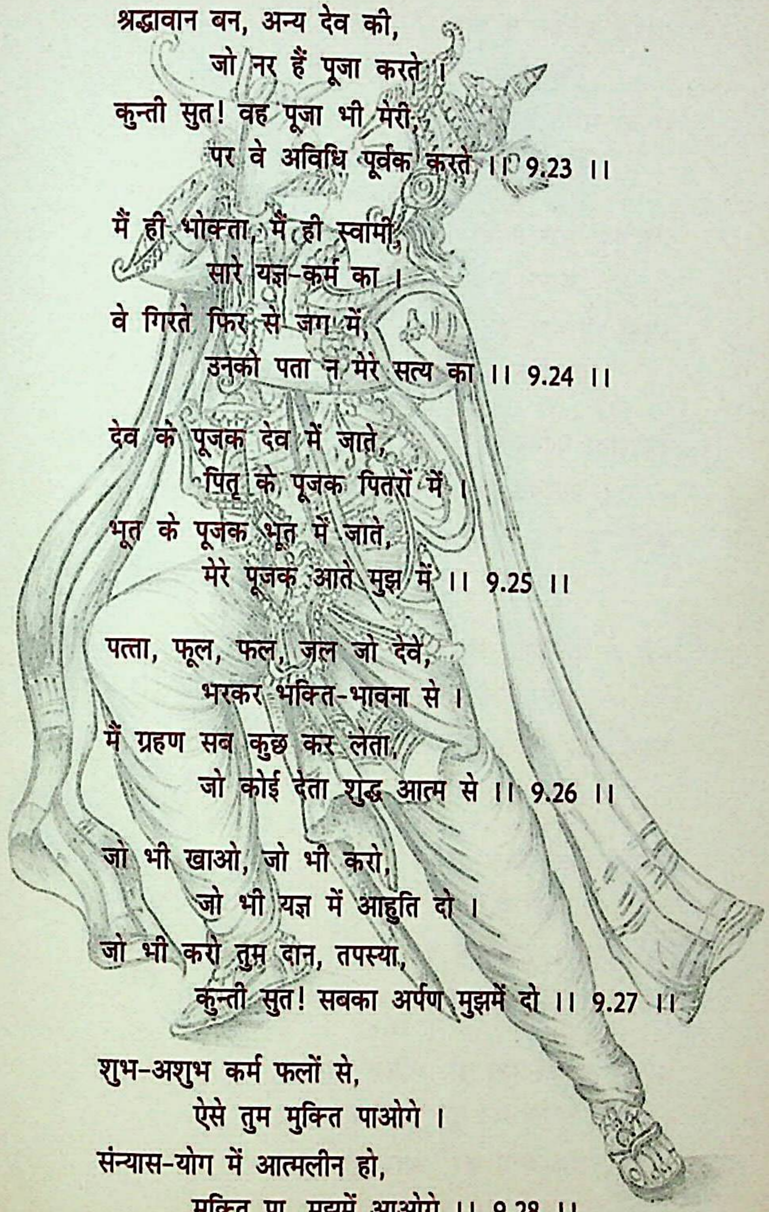

श्रद्धावान बन, अन्य देव की,
जो नर हैं पूजा करते ।
कुन्ती सुत! वह पूजा भी मेरी,
पर वे अविधि पूर्वक करते ।। 9.23 ।।

मैं ही भोक्ता, मैं ही स्वामी,
सारे यज्ञ-कर्म का ।
वे गिरते फिर से जग में,
उनको पता न मेरे सत्य का ।। 9.24 ।।

देव के पूजक देव में जाते,
पितृ के पूजक पितरों में ।
भूत के पूजक भूत में जाते,
मेरे पूजक आते मुझ में ।। 9.25 ।।

पत्ता, फूल, फल, जल जो देवे,
भरकर भक्ति-भावना से ।
मैं ग्रहण सब कुछ कर लेता,
जो कोई देता शुद्ध आत्म से ।। 9.26 ।।

जो भी खाओ, जो भी करो,
जो भी यज्ञ में आहुति दो ।
जो भी करो तुम दान, तपस्या,
कुन्ती सुत! सबका अर्पण मुझमें दो ।। 9.27 ।।

शुभ-अशुभ कर्म फलों से,
ऐसे तुम मुक्ति पाओगे ।
संन्यास-योग में आत्मलीन हो,
मुक्ति पा, मुझमें आओगे ।। 9.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

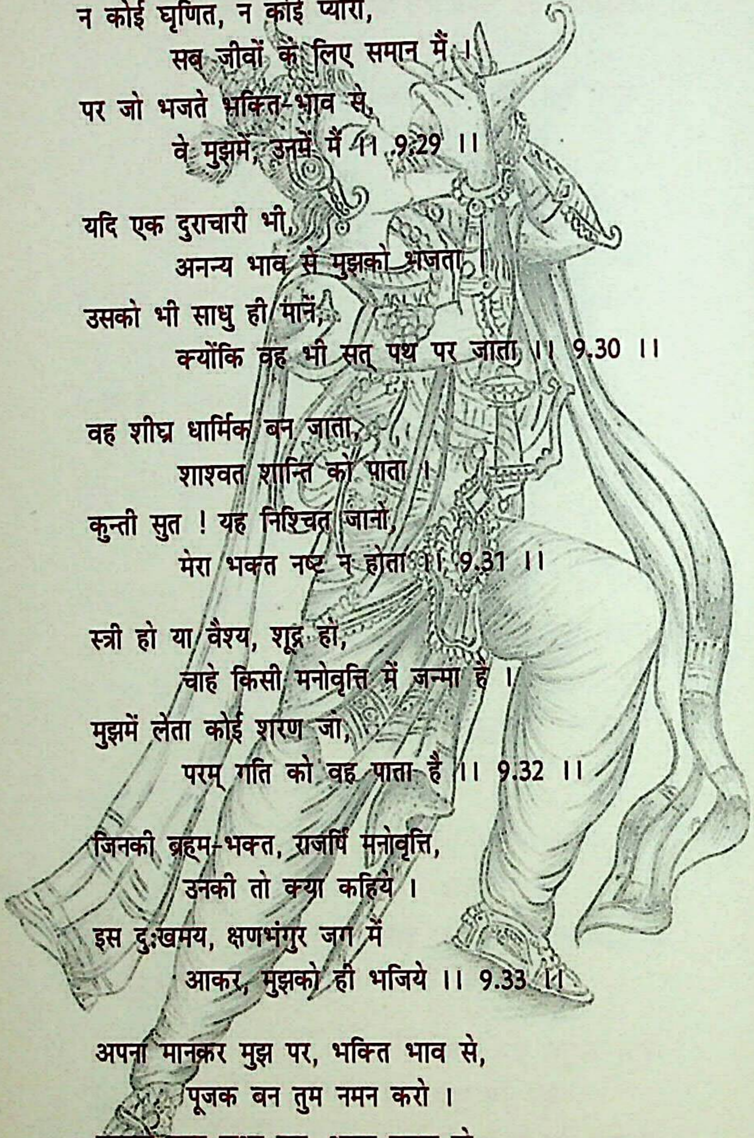

न कोई घृणित, न कोई प्यारा,
सब जीवों के लिए समान मैं ।
पर जो भजते भक्ति-भाव से,
वे मुझमें, उनमें मैं ।। 9.29 ।।

यदि एक दुराचारी भी,
अनन्य भाव से मुझको भजता ।
उसको भी साधु ही मानें,
क्योंकि वह भी सत् पथ पर जाता ।। 9.30 ।।

वह शीघ्र धार्मिक बन जाता,
शाश्वत शान्ति को पाता ।
कुन्ती सुत ! यह निश्चित जानो,
मेरा भक्त नष्ट न होता ।। 9.31 ।।

स्त्री हो या वैश्य, शूद्र हो,
चाहे किसी मनोवृत्ति में जन्मा है ।
मुझमें लेता कोई शरण जो,
परम् गति को वह पाता है ।। 9.32 ।।

जिनकी ब्रह्म-भक्त, राजर्षि मनोवृत्ति,
उनकी तो क्या कहिये ।
इस दुःखमय, क्षणभंगुर जग में
आकर, मुझको ही भजिये ।। 9.33 ।।

अपना मानकर मुझ पर, भक्ति भाव से,
पूजक बन तुम नमन करो ।
मुझको परम-लक्ष्य कर, आत्म-युक्त हो,
मुझको तुम यों प्राप्त करो ।। 9.34 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

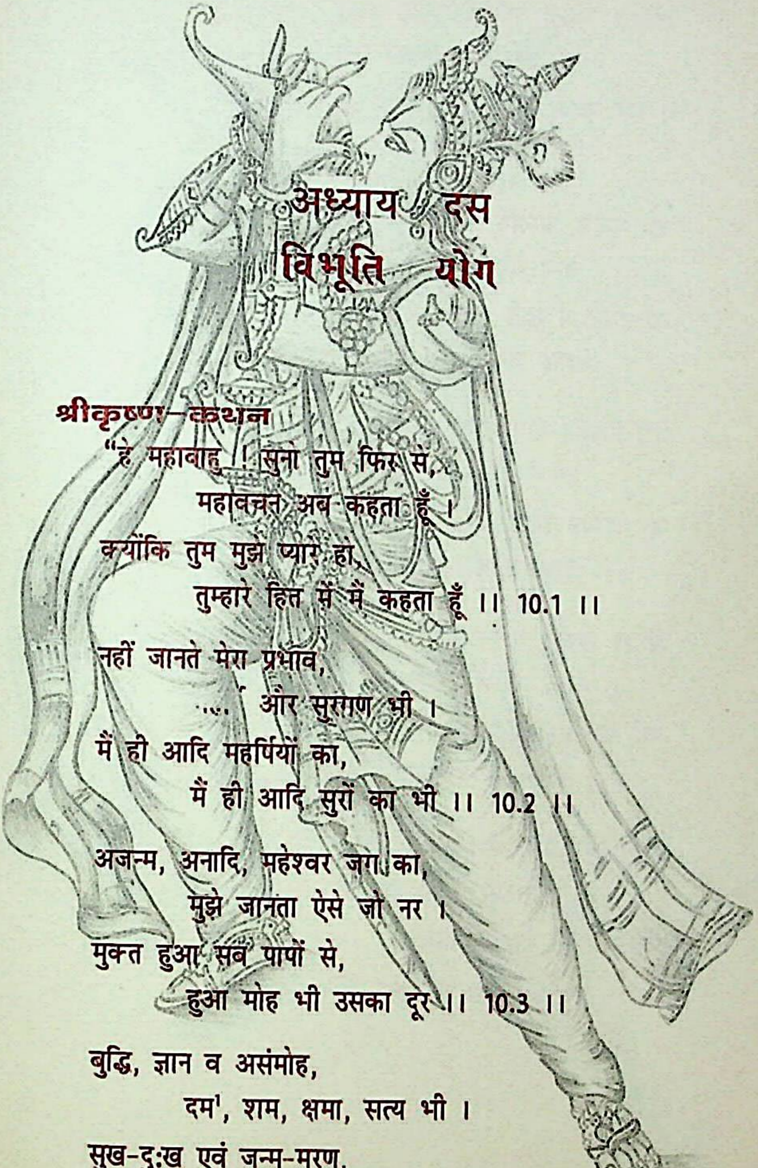

अध्याय दस
विभूति योग

श्रीकृष्ण–कथन

“हे महाबाहु ! सुनो तुम फिर से,
महावचन अब कहता हूँ ।
क्योंकि तुम मुझे प्यारे हो,
तुम्हारे हित में मैं कहता हूँ ।। 10.1 ।।

नहीं जानते मेरा प्रभाव,
... और सुरगण भी ।
मैं ही आदि महर्षियों का,
मैं ही आदि सुरों का भी ।। 10.2 ।।

अजन्म, अनादि, महेश्वर जग का,
मुझे जानता ऐसे जो नर ।
मुक्त हुआ सब पापों से,
हुआ मोह भी उसका दूर ।। 10.3 ।।

बुद्धि, ज्ञान व असंमोह,
दम[1], शम, क्षमा, सत्य भी ।
सुख–दुःख एवं जन्म–मरण,
एवं भय–अभय भी ।। 10.4 ।।

---

1. स्व-प्रतिबन्ध ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

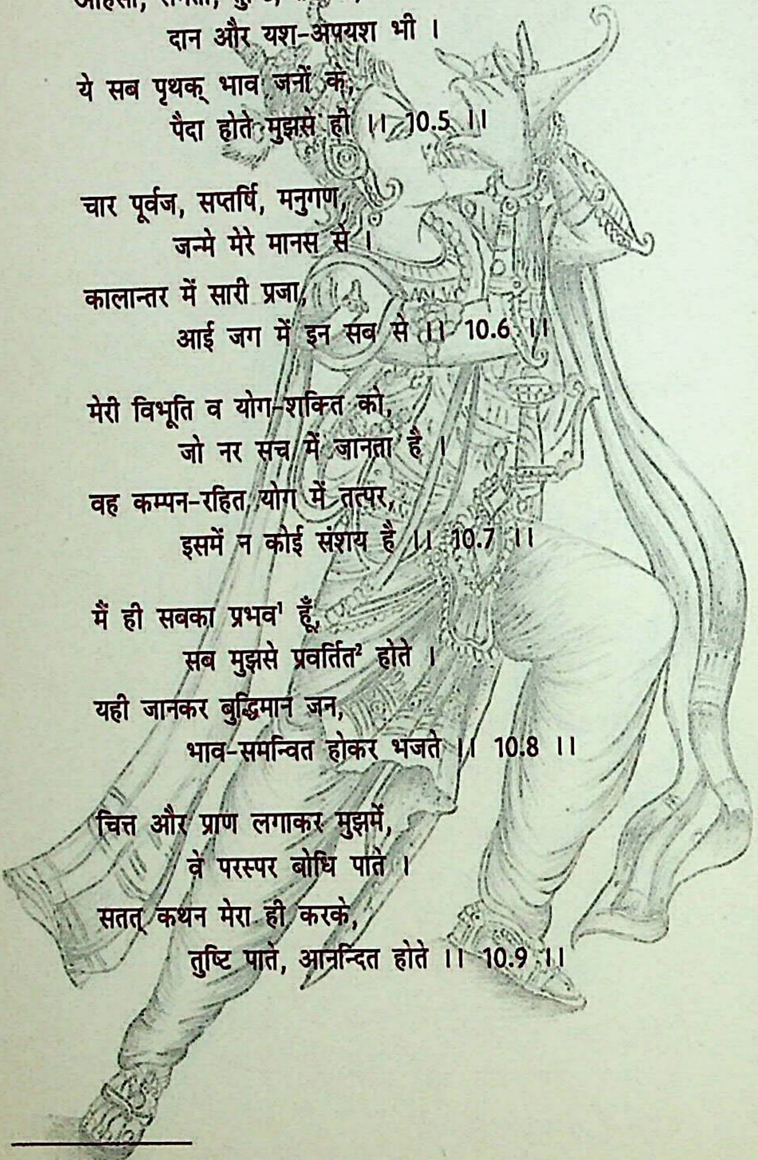

अहिंसा, समता, तुष्टि, तपस्या,
दान और यश-अपयश भी ।
ये सब पृथक् भाव जनों के,
पैदा होते मुझसे ही ।। 10.5 ।।

चार पूर्वज, सप्तर्षि, मनुगण,
जन्मे मेरे मानस से ।
कालान्तर में सारी प्रजा,
आई जग में इन सब से ।। 10.6 ।।

मेरी विभूति व योग-शक्ति को,
जो नर सच में जानता है ।
वह कम्पन-रहित योग में तत्पर,
इसमें न कोई संशय है ।। 10.7 ।।

मैं ही सबका प्रभव[1] हूँ,
सब मुझसे प्रवर्तित[2] होते ।
यही जानकर बुद्धिमान जन,
भाव-समन्वित होकर भजते ।। 10.8 ।।

चित्त और प्राण लगाकर मुझमें,
वे परस्पर बोधि पाते ।
सतत् कथन मेरा ही करके,
तुष्टि पाते, आनन्दित होते ।। 10.9 ।।

---

1. आदि ।
2. विकसित ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो सतत् योग में तत्पर होकर,
प्रीतिपूर्वक मुझको भजते ।
बुद्धियोग मैं उनको देता,
जिससे वे मुझमें आते ।। 10.10 ।।

मैं उन पर अनुकम्पा[1] करके,
उनके हृदय में बसता ।
अज्ञान से जन्मा अंधकार जो,
ज्ञान-दीप से उसे भगाता ।। 10.11 ।।"

अर्जुन-कथन एवं प्रश्न

"परम् ब्रह्म हो, परम् धाम हो,
पावनकारी परम् आप हो ।
पुरुष शाश्वत, देव-देव हो,
आप अजन्मे, सर्व-व्याप्त हो ।। 10.12 ।।

सब ऋषियों ने यही कहा है,
देव-ऋषि नारद ने भी ।
देवल, व्यास असित ने भी,
अब कहते हो स्वयं आप भी ।। 10.13 ।।

केशव ! तुम मुझको जो कहते,
सत्य मानता मैं वह सारा ।
न ही दानव, न ही देवता,
नहीं जानते व्यक्तितत्व तुम्हारा ।। 10.14 ।।

---

1. दया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

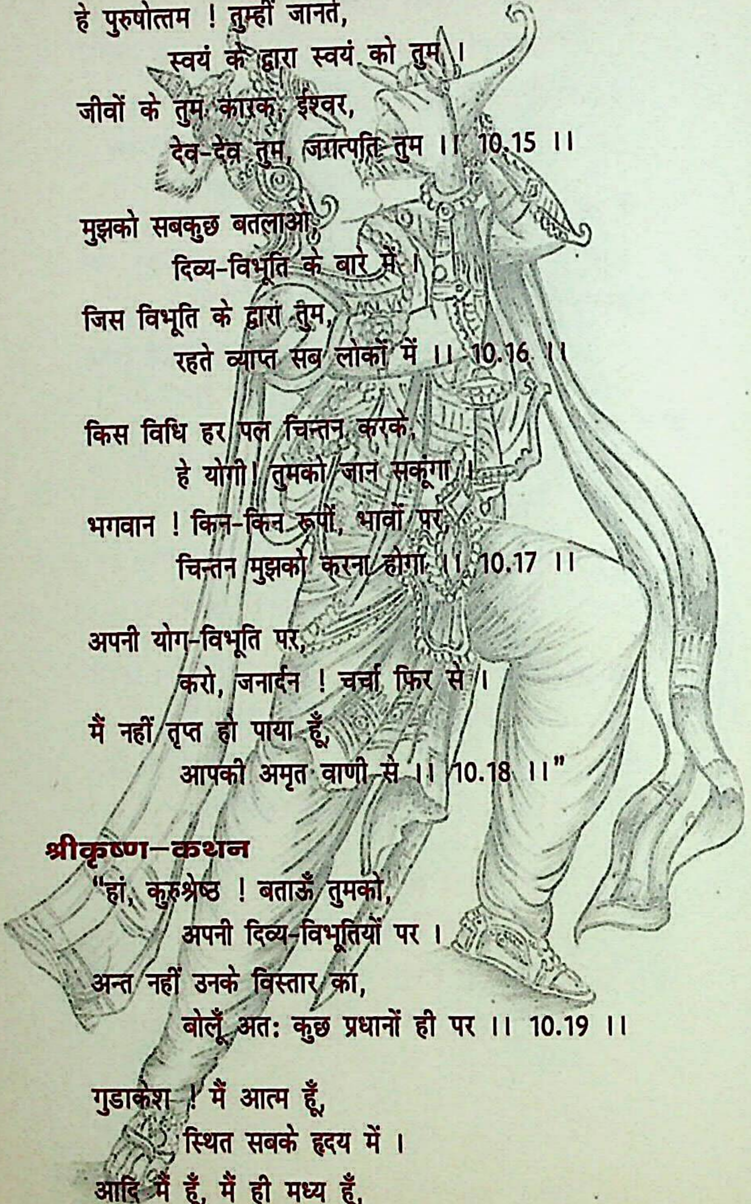

हे पुरुषोत्तम ! तुम्हीं जानते,
स्वयं के द्वारा स्वयं को तुम ।
जीवों के तुम कारक, ईश्वर,
देव-देव तुम, जगत्पति तुम ।। 10.15 ।।

मुझको सबकुछ बतलाओ,
दिव्य-विभूति के बारे में ।
जिस विभूति के द्वारा तुम,
रहते व्याप्त सब लोकों में ।। 10.16 ।।

किस विधि हर पल चिन्तन करके,
हे योगी! तुमको जान सकूंगा ।
भगवान ! किन-किन रूपों, भावों पर,
चिन्तन मुझको करना होगा ।। 10.17 ।।

अपनी योग-विभूति पर,
करो, जनार्दन ! चर्चा फिर से ।
मैं नहीं तृप्त हो पाया हूँ,
आपकी अमृत वाणी से ।। 10.18 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"हां, कुरुश्रेष्ठ ! बताऊँ तुमको,
अपनी दिव्य-विभूतियों पर ।
अन्त नहीं उनके विस्तार का,
बोलूँ अतः कुछ प्रधानों ही पर ।। 10.19 ।।

गुडाकेश ! मैं आत्म हूँ,
स्थित सबके हृदय में ।
आदि मैं हूँ, मैं ही मध्य हूँ,
अन्त भी हूँ सब जीवों में ।। 10.20 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

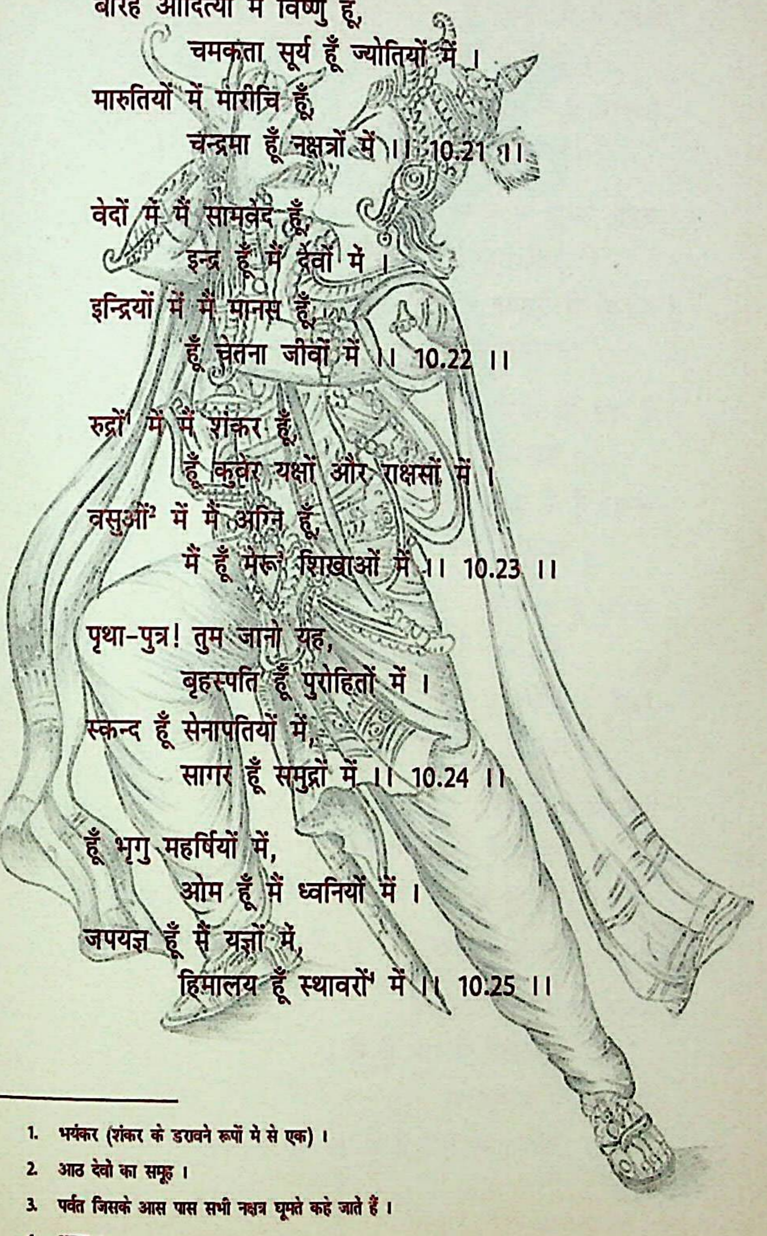

बारह आदित्यों में विष्णु हूँ,
चमकता सूर्य हूँ ज्योतियों में ।
मारुतियों में मारीचि हूँ,
चन्द्रमा हूँ नक्षत्रों में ।। 10.21 ।।

वेदों में मैं सामवेद हूँ,
इन्द्र हूँ मैं देवों में ।
इन्द्रियों में मैं मानस हूँ,
हूँ चेतना जीवों में ।। 10.22 ।।

रुद्रों[1] में मैं शंकर हूँ,
हूँ कुबेर यक्षों और राक्षसों में ।
वसुओं[2] में मैं अग्नि हूँ,
मैं हूँ मेरू[3] शिखाओं में ।। 10.23 ।।

पृथा-पुत्र! तुम जानो यह,
बृहस्पति हूँ पुरोहितों में ।
स्कन्द हूँ सेनापतियों में,
सागर हूँ समुद्रों में ।। 10.24 ।।

हूँ भृगु महर्षियों में,
ओम हूँ मैं ध्वनियों में ।
जपयज्ञ हूँ मैं यज्ञों में,
हिमालय हूँ स्थावरों[4] में ।। 10.25 ।।

---

1. भयंकर (शंकर के डरावने रूपों मे से एक) ।
2. आठ देवों का समूह ।
3. पर्वत जिसके आस पास सभी नक्षत्र घूमते कहे जाते हैं ।
4. अचल ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

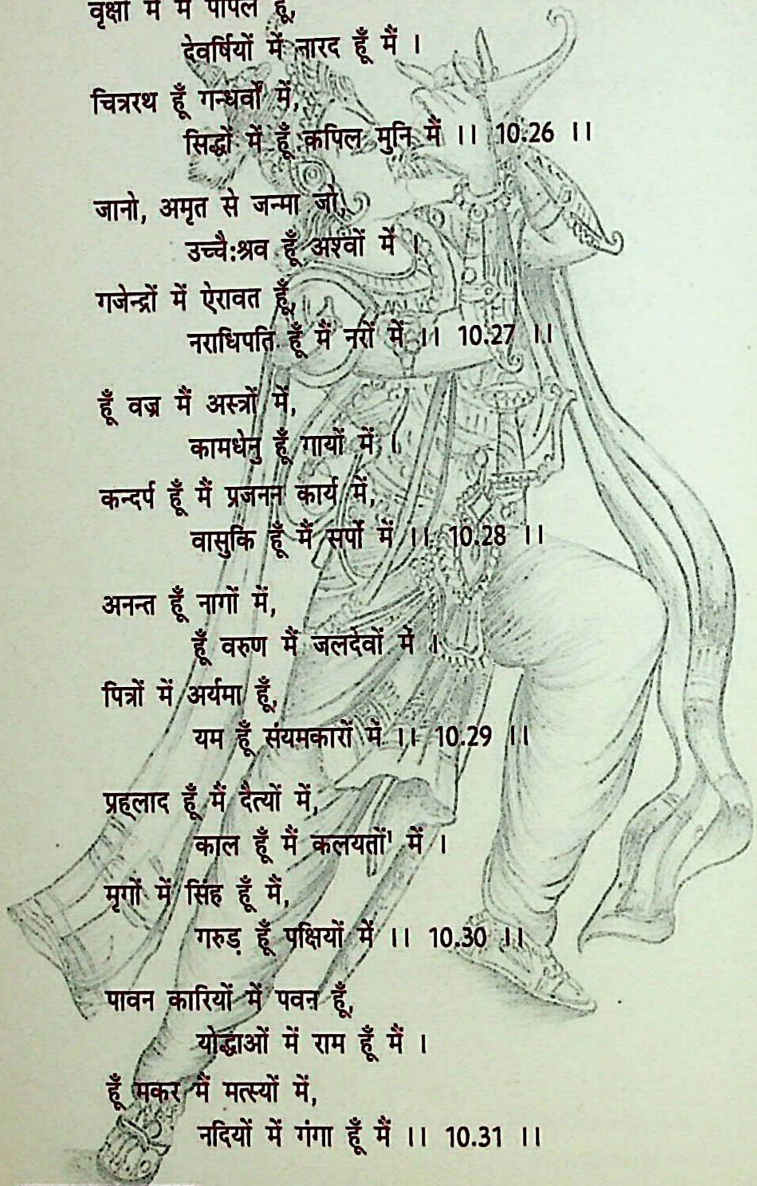

वृक्षों में मैं पीपल हूँ,
देवर्षियों में नारद हूँ मैं ।
चित्ररथ हूँ गन्धर्वों में,
सिद्धों में हूँ कपिल मुनि मैं ।। 10.26 ।।

जानो, अमृत से जन्मा जो,
उच्चैःश्रव हूँ अश्वों में ।
गजेन्द्रों में ऐरावत हूँ,
नराधिपति हूँ मैं नरों में ।। 10.27 ।।

हूँ वज्र मैं अस्त्रों में,
कामधेनु हूँ गायों में ।
कन्दर्प हूँ मैं प्रजनन कार्य में,
वासुकि हूँ मैं सर्पों में ।। 10.28 ।।

अनन्त हूँ नागों में,
हूँ वरुण मैं जलदेवों में ।
पित्रों में अर्यमा हूँ,
यम हूँ संयमकारों में ।। 10.29 ।।

प्रह्लाद हूँ मैं दैत्यों में,
काल हूँ मैं कलयतों[1] में ।
मृगों में सिंह हूँ मैं,
गरुड़ हूँ पक्षियों में ।। 10.30 ।।

पावन कारियों में पवन हूँ,
योद्धाओं में राम हूँ मैं ।
हूँ मकर मैं मत्स्यों में,
नदियों में गंगा हूँ मैं ।। 10.31 ।।

1. गिनती करने वाला गणक ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

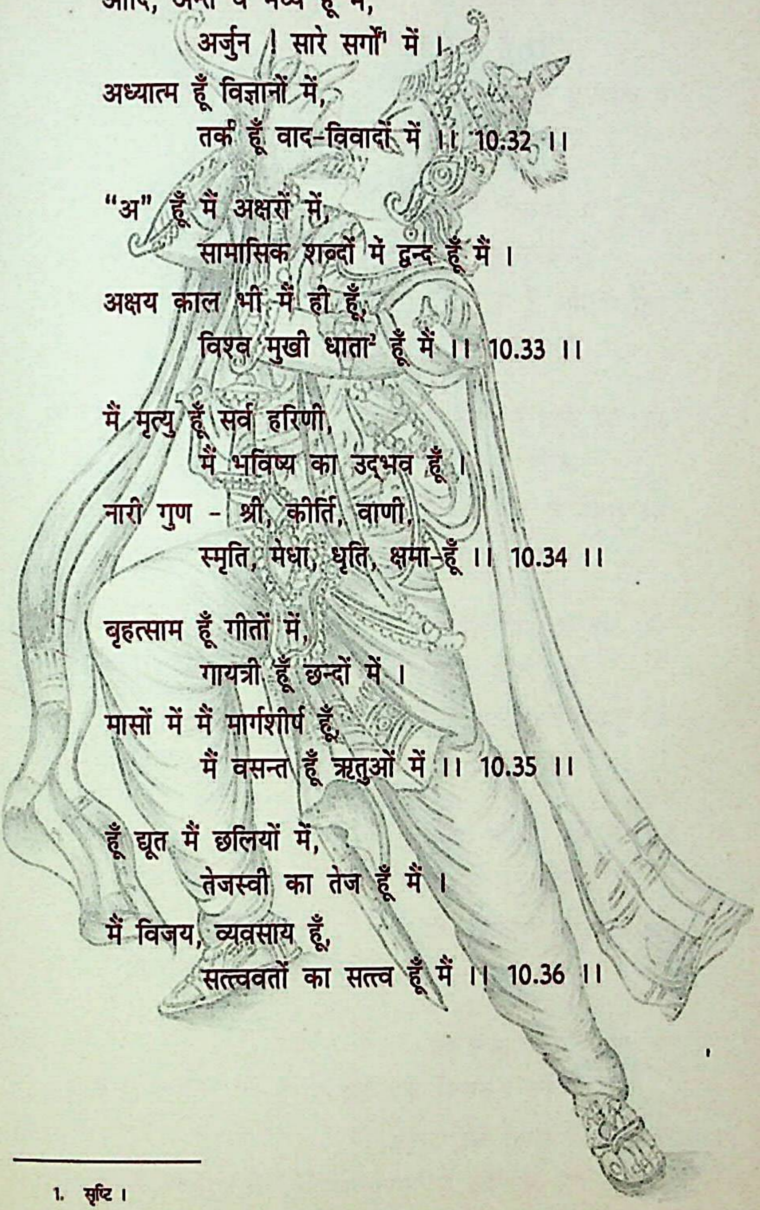

आदि, अन्त व मध्य हूँ मैं,
अर्जुन ! सारे सर्गों[1] में ।
अध्यात्म हूँ विज्ञानों में,
तर्क हूँ वाद-विवादों में ।। 10.32 ।।

"अ" हूँ मैं अक्षरों में,
सामासिक शब्दों में द्वन्द हूँ मैं ।
अक्षय काल भी मैं ही हूँ,
विश्व मुखी धाता[2] हूँ मैं ।। 10.33 ।।

मैं मृत्यु हूँ सर्व हरिणी,
मैं भविष्य का उद्‌भव हूँ ।
नारी गुण - श्री, कीर्ति, वाणी,
स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा-हूँ ।। 10.34 ।।

बृहत्साम हूँ गीतों में,
गायत्री हूँ छन्दों में ।
मासों में मैं मार्गशीर्ष हूँ,
मैं वसन्त हूँ ऋतुओं में ।। 10.35 ।।

हूँ द्यूत मैं छलियों में,
तेजस्वी का तेज हूँ मैं ।
मैं विजय, व्यवसाय हूँ,
सत्त्ववतों का सत्त्व हूँ मैं ।। 10.36 ।।

---

1. सृष्टि ।
2. देने वाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

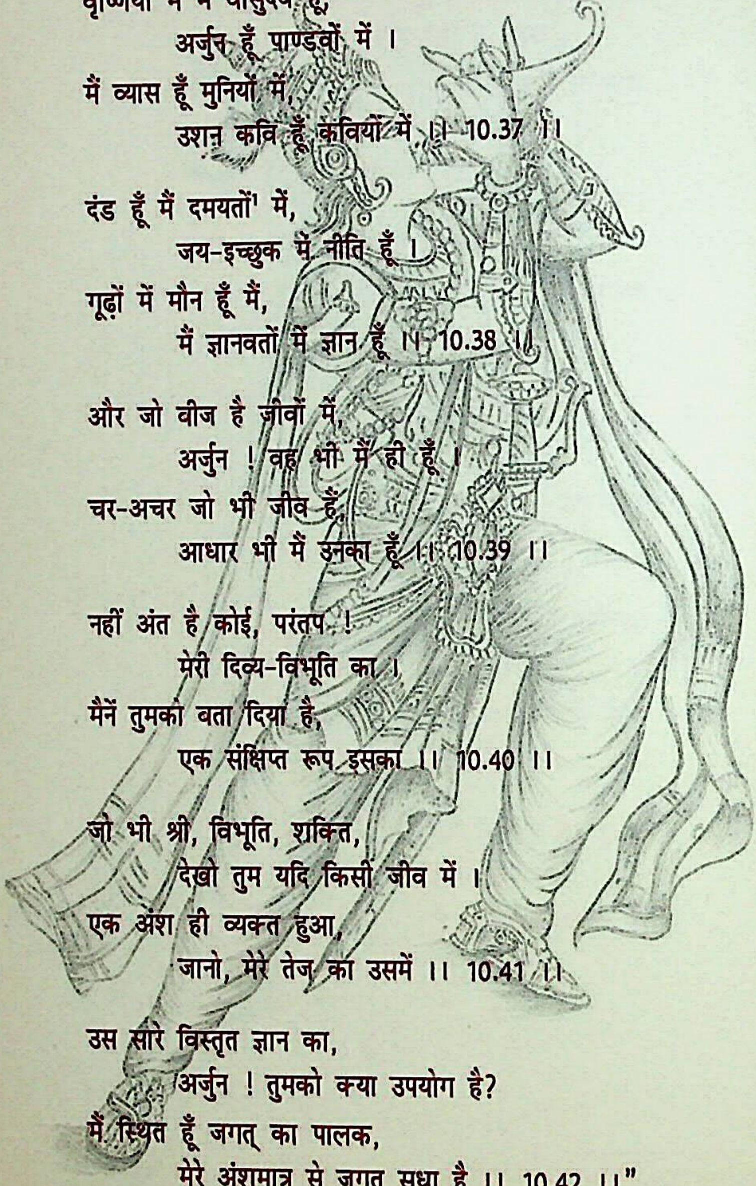

वृष्णियों में मैं वासुदेव हूँ,
अर्जुन हूँ पाण्डवों में ।
मैं व्यास हूँ मुनियों में,
उशना कवि हूँ कवियों में ।। 10.37 ।।

दंड हूँ मैं दमयतों[1] में,
जय-इच्छुक में नीति हूँ ।
गूढ़ों में मौन हूँ मैं,
मैं ज्ञानवतों में ज्ञान हूँ ।। 10.38 ।।

और जो वीज है जीवों में,
अर्जुन ! वह भी मैं ही हूँ ।
चर-अचर जो भी जीव हैं,
आधार भी मैं उनका हूँ ।। 10.39 ।।

नहीं अंत है कोई, परंतप !
मेरी दिव्य-विभूति का ।
मैनें तुमको बता दिया है,
एक संक्षिप्त रूप इसका ।। 10.40 ।।

जो भी श्री, विभूति, शक्ति,
देखो तुम यदि किसी जीव में ।
एक अंश ही व्यक्त हुआ,
जानो, मेरे तेज का उसमें ।। 10.41 ।।

उस सारे विस्तृत ज्ञान का,
अर्जुन ! तुमको क्या उपयोग है?
मैं स्थित हूँ जगत् का पालक,
मेरे अंशमात्र से जगत् सधा है ।। 10.42 ।।"

1. राज दंड ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

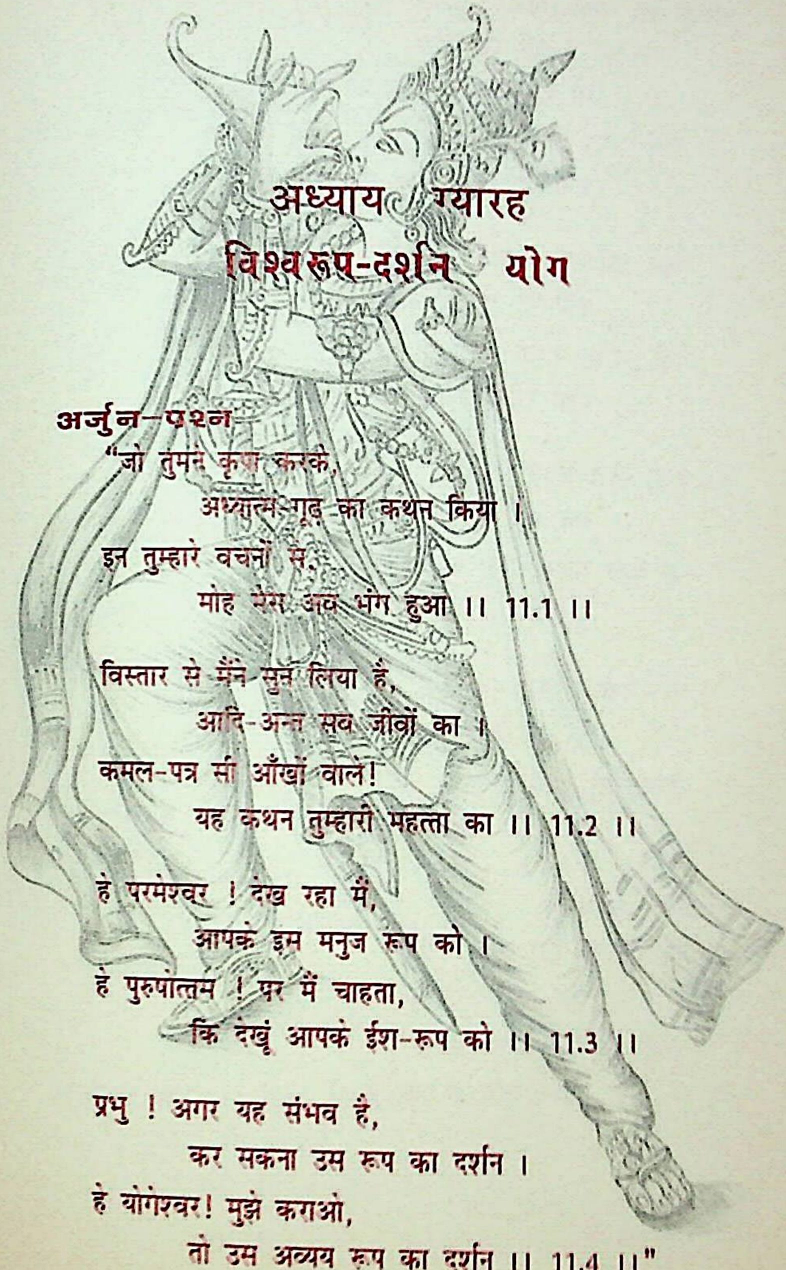

अध्याय ग्यारह
विश्वरूप-दर्शन योग

अर्जुन–प्रश्न

"जो तुमने कृपा करके,
अध्यात्म-गूढ़ का कथन किया ।
इन तुम्हारे वचनों से,
मोह मेरा अब भंग हुआ ।। 11.1 ।।

विस्तार से मैंने सुन लिया है,
आदि-अन्त सब जीवों का ।
कमल-पत्र सी आँखों वाले!
यह कथन तुम्हारी महत्ता का ।। 11.2 ।।

हे परमेश्वर ! देख रहा मैं,
आपके इस मनुज रूप को ।
हे पुरुषोत्तम ! पर मैं चाहता,
कि देखूं आपके ईश-रूप को ।। 11.3 ।।

प्रभु ! अगर यह संभव है,
कर सकना उस रूप का दर्शन ।
हे योगेश्वर! मुझे कराओ,
तो उस अव्यय रूप का दर्शन ।। 11.4 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

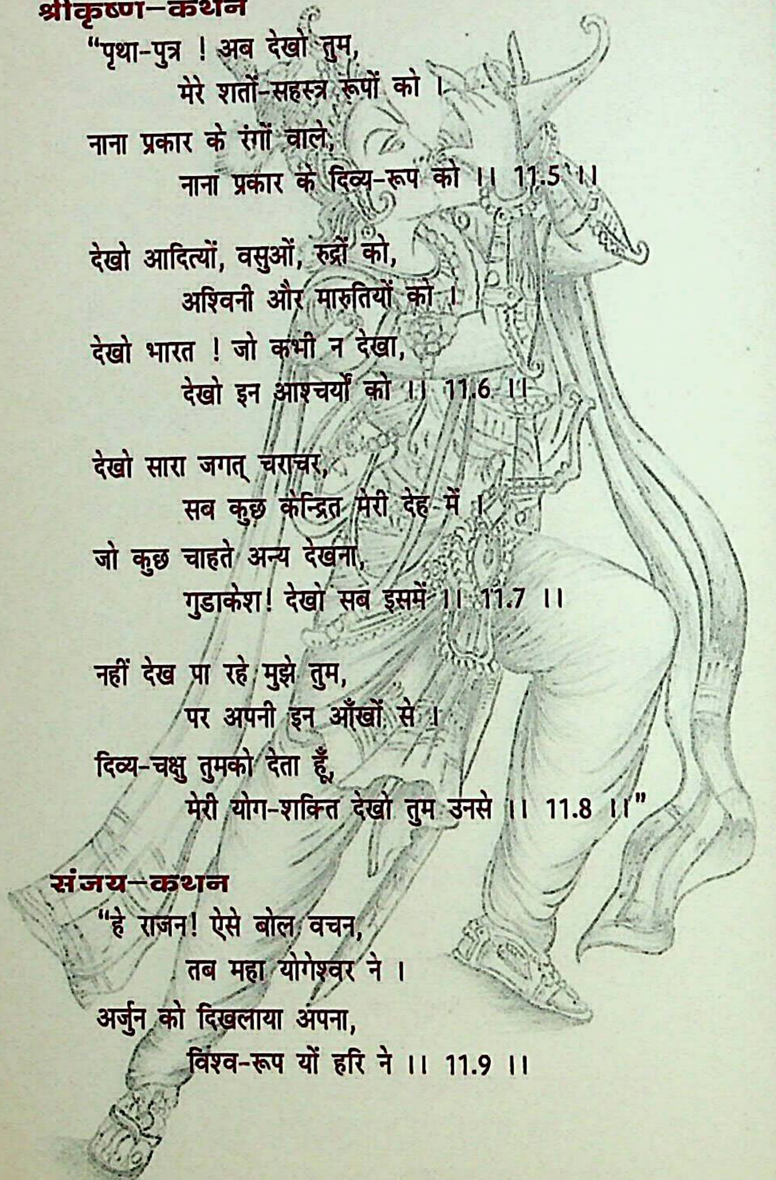

श्रीकृष्ण–कथन

"पृथा-पुत्र ! अब देखो तुम,
मेरे शतों-सहस्त्र रूपों को ।
नाना प्रकार के रंगों वाले,
नाना प्रकार के दिव्य-रूप को ।। 11.5 ।।

देखो आदित्यों, वसुओं, रुद्रों को,
अश्विनी और मारुतियों को ।
देखो भारत ! जो कभी न देखा,
देखो इन आश्चर्यों को ।। 11.6 ।।

देखो सारा जगत् चराचर,
सब कुछ केन्द्रित मेरी देह में ।
जो कुछ चाहते अन्य देखना,
गुडाकेश! देखो सब इसमें ।। 11.7 ।।

नहीं देख पा रहे मुझे तुम,
पर अपनी इन आँखों से ।
दिव्य-चक्षु तुमको देता हूँ,
मेरी योग-शक्ति देखो तुम उनसे ।। 11.8 ।।"

संजय–कथन

"हे राजन! ऐसे बोल वचन,
तब महा योगेश्वर ने ।
अर्जुन को दिखलाया अपना,
विश्व-रूप यों हरि ने ।। 11.9 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

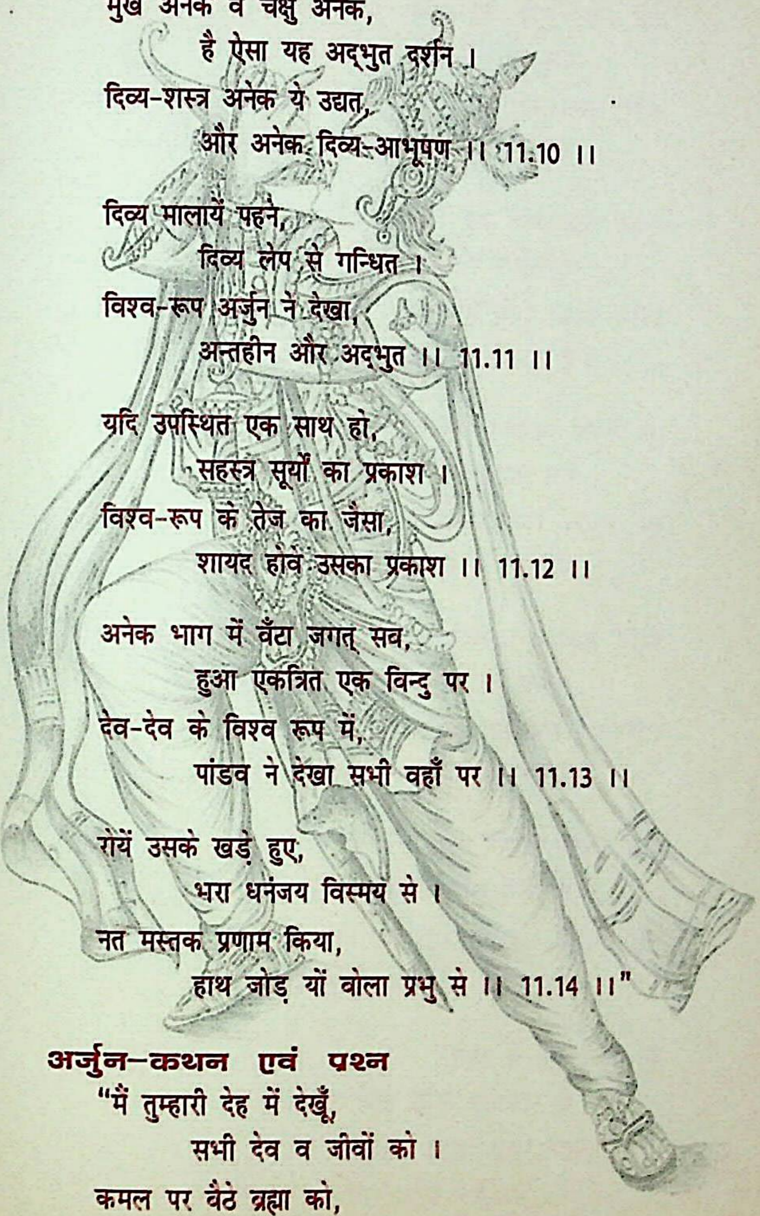

मुख अनेक व चक्षु अनेक,
हैं ऐसा यह अद्भुत दर्शन ।
दिव्य-शस्त्र अनेक ये उद्यत,
और अनेक दिव्य-आभूषण ।। 11.10 ।।

दिव्य मालायें पहने,
दिव्य लेप से गन्धित ।
विश्व-रूप अर्जुन ने देखा,
अन्तहीन और अद्भुत ।। 11.11 ।।

यदि उपस्थित एक साथ हो,
सहस्त्र सूर्यों का प्रकाश ।
विश्व-रूप के तेज का जैसा,
शायद होवे उसका प्रकाश ।। 11.12 ।।

अनेक भाग में बँटा जगत् सब,
हुआ एकत्रित एक विन्दु पर ।
देव-देव के विश्व रूप में,
पांडव ने देखा सभी वहाँ पर ।। 11.13 ।।

रोयें उसके खड़े हुए,
भरा धनंजय विस्मय से ।
नत मस्तक प्रणाम किया,
हाथ जोड़ यों बोला प्रभु से ।। 11.14 ।।"

अर्जुन-कथन एवं प्रश्न

"मैं तुम्हारी देह में देखूँ,
सभी देव व जीवों को ।
कमल पर बैठे ब्रह्मा को,
ऋषियों और दिव्य-सर्पों को ।। 11.15 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

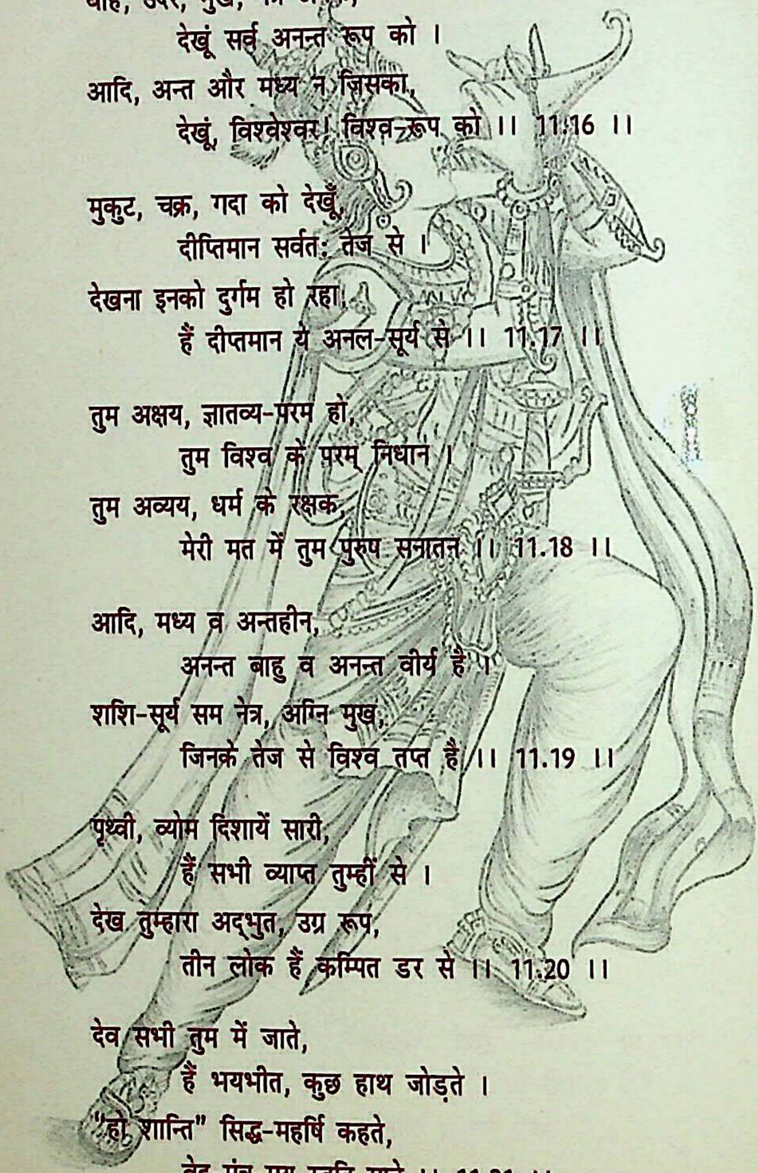

बाहें, उदर, मुख, नेत्र अनेक,
देखूं सर्व अनन्त रूप को ।
आदि, अन्त और मध्य न जिसका,
देखूं, विश्वेश्वर! विश्व-रूप को ।। 11.16 ।।

मुकुट, चक्र, गदा को देखूँ,
दीप्तिमान सर्वतः तेज से ।
देखना इनको दुर्गम हो रहा,
हैं दीप्तमान ये अनल-सूर्य से ।। 11.17 ।।

तुम अक्षय, ज्ञातव्य-परम हो,
तुम विश्व के परम् निधान ।
तुम अव्यय, धर्म के रक्षक,
मेरी मत में तुम पुरुष सनातन ।। 11.18 ।।

आदि, मध्य व अन्तहीन,
अनन्त बाहु व अनन्त वीर्य है ।
शशि-सूर्य सम नेत्र, अग्नि मुख,
जिनके तेज से विश्व तप्त है ।। 11.19 ।।

पृथ्वी, व्योम दिशायें सारी,
हैं सभी व्याप्त तुम्हीं से ।
देख तुम्हारा अद्‌भुत, उग्र रूप,
तीन लोक हैं कम्पित डर से ।। 11.20 ।।

देव सभी तुम में जाते,
हैं भयभीत, कुछ हाथ जोड़ते ।
"हो शान्ति" सिद्ध-महर्षि कहते,
वेद-मंत्र-मय स्तुति गाते ।। 11.21 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य,
विश्व देव, अश्विनी व मरुत ।
उष्मप, गन्धर्व, यक्ष, असुर,
सिद्ध सभी देखें हो विस्मित ।। 11.22 ।।

बहु-मुखी, बहु-नेत्र, बहु-बाहु, बहु-पाद-जाँघ,
रूप तुम्हारा, महाबाहु ! महत ।
बहु-उदर, बहु-दंत, रूप तुम्हारा भयकारी,
लोक और मैं देख व्यथित ।। 11.23 ।।

बहु वर्णों से दीप्त, गगन स्पर्शी,
खुला हुआ मुख, नेत्र विशाल ।
हृदय मेरा व्यथित, अशांत,
मैं धृतिहीन यह मेरा हाल ।। 11.24 ।।

देखूँ दन्त भयंकर मुख में,
कालानल ही देखूँ देवेश !
दिशा-ज्ञान न शान्ति मुझको,
दो प्रसाद तुम जगन्निवास ।। 11.25 ।।

सभी पुत्र धृतराष्ट्र तात के,
और अनेकों नृप-योद्धा ।
भीष्म, द्रौण व सूत-पुत्र,
और हमारे प्रमुख योद्धा ।। 11.26 ।।

घुसते जाते उस मुख में,
जिसके दांत भयंकर हैं ।
कुछ के सिर हैं चूर्ण हुए,
कुछ दांतो के अन्दर हैं ।। 11.27 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे नदियां वेग से बहकर,
जाकर गिरती सागर में ।
उसी तरह ये लोक-वीर सब,
जाते आपकी मुख-अग्नि में ।। 11.28 ।।

जैसे होने नष्ट पतंगा,
जाता वेग से अग्नि में ।
उसी तरह ये प्राणी सब,
जा रहे तुम्हारी मुख-अग्नि में ।। 11.29 ।।

तुम निगल रहे हो सब जीवों को,
जो आकर गिरते मुख-ज्वाला में ।
तेज तुम्हारा जगत् में फैला,
विष्णु! सब कुछ जल रहा इसी में ।। 11.30 ।।

हे आदि जीव! मैं जानना चाहूँ,
हे उग्र रूप, कौन हो तुम ।
मैं नहीं जानता प्रवृत्ति आपकी,
मेरा नमन, देववर! कृपा करो तुम ।। 11.31 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"मैं काल, लोक-क्षय-कारी,
प्रवृत्त हूँ अब लोक-नाश में ।
बिना तुम्हारे भी न बचेंगे,
जो योद्धा यहाँ खड़े युद्ध में ।। 11.32 ।।

उठो सव्यसाची! यश पाओ,
जीतो शत्रु, राज-सुख पाओ ।
ये हत पहले ही मेरे द्वारा,
तुम तो निमित्त मात्र बन जाओ ।। 11.33 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोण, भीष्म व जयद्रथ, कर्ण,
अन्य वीर भी सभी हताहत ।
न व्यथित हो, विजयी बनो तुम,
रण में लोगे शत्रु को जीत ।। 11.34 ।।"

संजय–कथन

"सुन ऐसे वचन केशव के,
हाथ जोड़ नमस्कार कर ।
फिर से कृष्ण से किरीटी बोले,
भयभीत हो, गद्-गद् प्रणाम कर ।। 11.35 ।।"

अर्जुन–कथन

"हृषीकेश! जीव तुम्हारी कीर्ति में,
हर्षित होते, अनुरागी बनते ।
राक्षस भय से दूर भागते,
सारे सिद्ध नमन करते ।। 11.36 ।।

क्यों न वे सब नमन करें,
आदि-ब्रह्मा के कर्त्ता जो तुम ।
हे अनन्त, देवेश, जगन्निवास !
सत्-असत् से ऊपर हो तुम ।। 11.37 ।।

तुम आदि-देव हो पुरुष-पुरातन,
विश्व के परम् निधान तुम्हीं हो ।
तुम ज्ञानी, ज्ञातव्य, धाम हो,
अनंतरूप ! तुम विश्व-व्याप्त हो ।। 11.38 ।।

यम, अग्नि, वायु, वरुण हो,
शशि, प्रजापति, प्रपितामह हो ।
नमन, नमन हो सहस्र वार,
तुम्हें नमन बार-वार हो ।। 11.39 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमन सामने, नमन पृष्ठ में,
सभी दिशाओं से नमन हो ।
अनन्त-वीर्य, अमित-विक्रम हो,
सर्व-व्यापी, सब कुछ तुम हो ।। 11.40 ।।

यदि त्रुटि से तुम्हें पुकारा -
हे कृष्ण, यादव और सखा ।
अनभिज्ञ तुम्हारी महिमा से,
तुम्हें समझकर एक सखा ।। 11.41 ।।

कभी खेलते, भोजन करते,
मैंने तव-अपमान किया ।
हे अच्युत ! मैं क्षमा मांगता,
अप्रमेय! मैंने सब अनजान किया ।। 11.42 ।।

लोक चराचर के पिता तुम,
गुरु महानतम, पूजनीय तुम ।
तीन लोक में कोई न तुम सम,
हो अनन्य शक्तिवान तुम ।। 11.43 ।।

अतः प्रणाम दंडवत करता,
ईश, मुझे दो प्रसाद तुम ।
ज्यों पिता पुत्र को, मित्र मित्र को, प्रिय प्रिय को,
हो जाओ त्यों क्षमावान तुम ।। 11.44 ।।

देख अभूतपूर्व दृश्य मैं हर्षित,
पर भय से व्यथित हुआ मन मेरा ।
फिर से देव-रूप दिखलाओ,
हे, देवेश! तो पाऊं प्रसाद तुम्हारा ।। 11.45 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकुट, गदा व चक्र हाथ में –
मैं वही रूप देखना चाहता ।
हे सहस्रबाहु! हे विश्वमूर्ति !
मैं चतुर्भुज रूप देखना चाहता ।। 11.46 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"मैंने अपनी ही योग-शक्ति से,
अर्जुन! तुमको विश्व-रूप दिखाया है ।
तेजोमय, आद्य, अनन्त यह,
सिवा तुम्हारे अन्य किसी ने न इसको देखा है ।। 11.47 ।।

न यज्ञ से, न दान से, न ही वेद के अध्ययन से,
न क्रिया से, न ही उग्र तपस्या से ।
नर लोक में न देखा जा सकता,
कुरुप्रवीर! यह रूप न देखा गया अन्य से ।। 11.48 ।।

मेरे घोर रूप को देख,
न व्यथित हो, न मूढ़ बनो ।
देखो पुनः रूप यह मेरा,
मन को शान्त कर अभय बनो ।। 11.49 ।।"

संजय-कथन

"बोल वचन ऐसे अर्जुन से,
वासुदेव ने स्वयं का रूप दिखाया ।
दे सान्त्वना भयभीत वीर को,
महात्म ने सौम्य रूप अपनाया ।। 11.50 ।।

देख, जनार्दन! इस मनुष रूप को,
जो अति सौम्य सरल है ।
मैंने स्व-प्रकृति पाई पुनः
मेरा चित्त अब संवृत्त है ।। 11.51 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण–कथन

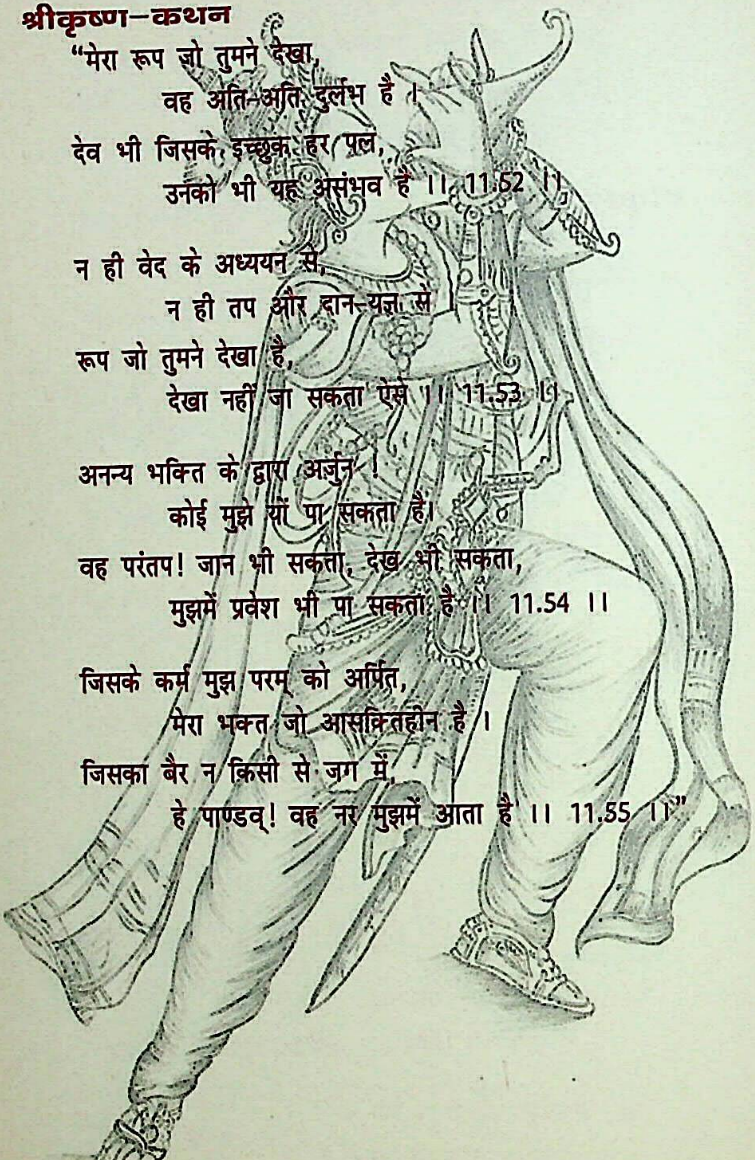

"मेरा रूप जो तुमने देखा,
वह अति-अति दुर्लभ है ।
देव भी जिसके इच्छुक हर पल,
उनको भी यह असंभव है ।। 11.52 ।।

न ही वेद के अध्ययन से,
न ही तप और दान-यज्ञ से ।
रूप जो तुमने देखा है,
देखा नहीं जा सकता ऐसे ।। 11.53 ।।

अनन्य भक्ति के द्वारा अर्जुन !
कोई मुझे यों पा सकता है।
वह परंतप! जान भी सकता, देख भी सकता,
मुझमें प्रवेश भी पा सकता है ।। 11.54 ।।

जिसके कर्म मुझ परम् को अर्पित,
मेरा भक्त जो आसक्तिहीन है ।
जिसका बैर न किसी से जग में,
हे पाण्डव्! वह नर मुझमें आता है ।। 11.55 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

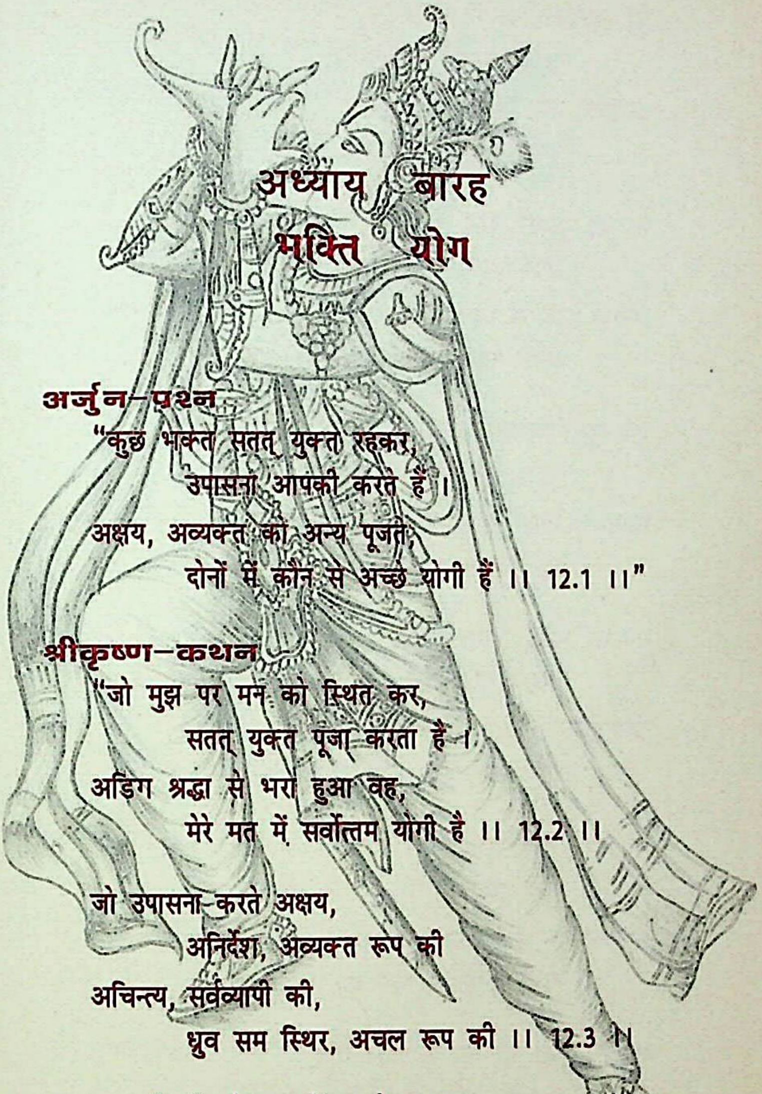

अध्याय बारह

भक्ति योग

अर्जुन-प्रश्न

"कुछ भक्त सतत् युक्त रहकर,
उपासना आपकी करते हैं ।
अक्षय, अव्यक्त को अन्य पूजते,
दोनों में कौन से अच्छे योगी हैं ।। 12.1 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"जो मुझ पर मन को स्थित कर,
सतत् युक्त पूजा करता है ।
अडिग श्रद्धा से भरा हुआ वह,
मेरे मत में सर्वोत्तम योगी है ।। 12.2 ।।

जो उपासना करते अक्षय,
अनिर्देश, अव्यक्त रूप की
अचिन्त्य, सर्वव्यापी की,
ध्रुव सम स्थिर, अचल रूप की ।। 12.3 ।।

सब इन्द्रियों को वश में करके,
सर्वत्र बुद्धि को सम रखते हैं ।
सब जीवों के हित-रत रहकर,
वे नर भी मुझमें आते हैं ।। 12.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

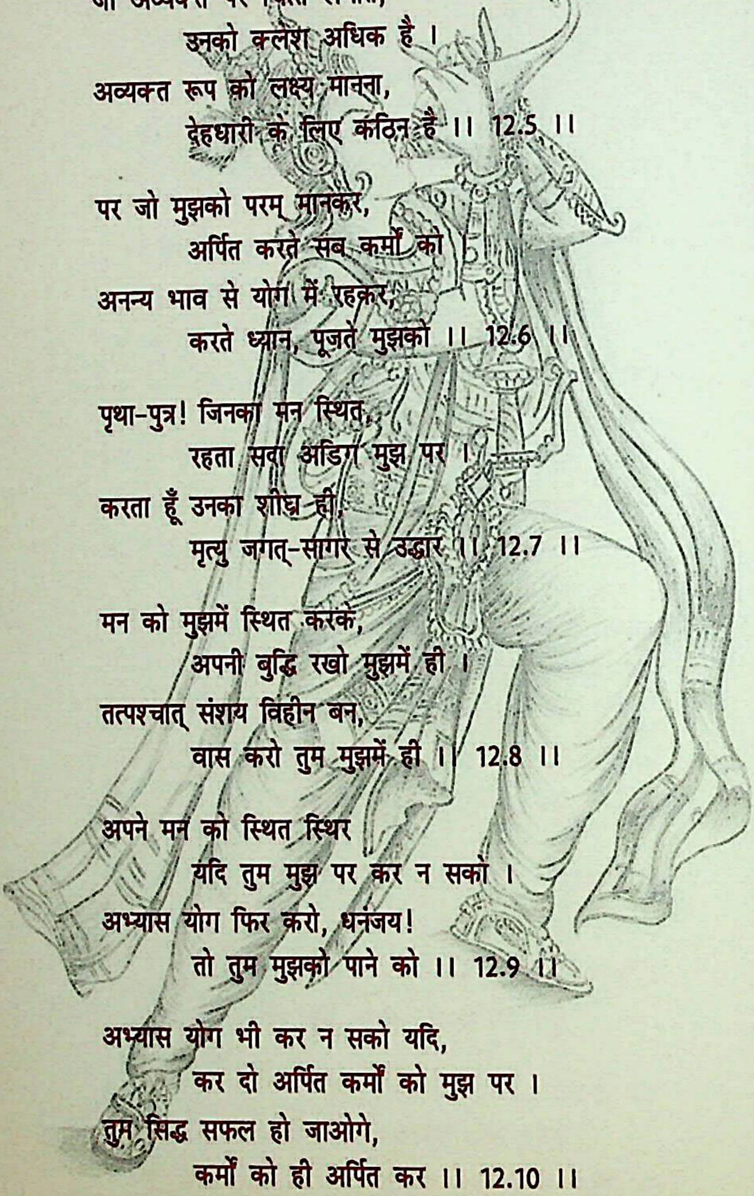

जो अव्यक्त पर चित्त लगाते,
उनको क्लेश अधिक है ।
अव्यक्त रूप को लक्ष्य मानना,
देहधारी के लिए कठिन है ।। 12.5 ।।

पर जो मुझको परम् मानकर,
अर्पित करते सब कर्मों को ।
अनन्य भाव से योग में रहकर,
करते ध्यान, पूजते मुझको ।। 12.6 ।।

पृथा-पुत्र! जिनका मन स्थित,
रहता सदा अडिग मुझ पर ।
करता हूँ उनका शीघ्र ही,
मृत्यु जगत्-सागर से उद्धार ।। 12.7 ।।

मन को मुझमें स्थित करके,
अपनी बुद्धि रखो मुझमें ही ।
तत्पश्चात् संशय विहीन बन,
वास करो तुम मुझमें ही ।। 12.8 ।।

अपने मन को स्थित स्थिर
यदि तुम मुझ पर कर न सको ।
अभ्यास योग फिर करो, धनंजय!
तो तुम मुझको पाने को ।। 12.9 ।।

अभ्यास योग भी कर न सको यदि,
कर दो अर्पित कर्मों को मुझ पर ।
तुम सिद्ध सफल हो जाओगे,
कर्मों को ही अर्पित कर ।। 12.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना भी न कर सकते यदि,
तो मेरी शरण में आओ तुम ।
कर्म फलों का त्याग करो तुम,
आत्मवान बन जाओ तुम ।। 12.11 ।।

है ज्ञान, अभ्यास से अच्छा,
ध्यान, ज्ञान से अच्छा होता ।
कर्म-फल-त्याग, ध्यान से अच्छा,
त्याग तुरंत शान्ति को लाता ।। 12.12 ।।

जो द्वेष-रहित, करुणा भाव मय,
सब जीवों का मित्र रहे ।
निरहंकार, निर्मम, क्षमी बन,
सुख-दुःख में समभाव रहे ।। 12.13 ।।

संतुष्ट सदा, वह लीन योग में,
आत्म-वशी, दृढ़ निश्चय होकर ।
वह भक्त मुझे अति प्यारा है,
मन-बुद्धि उसकी अर्पित मुझ पर ।। 12.14 ।।

न उत्तेजित जग से जो होता,
न जग को करता उत्तेजित ।
वह मुझको अति प्यारा है,
जो हर्ष-अधर्म-भय-चिन्ता-मुक्त ।। 12.15 ।।

जो दक्ष, अपेक्षा-रहित, शुद्ध व
उदासीन व व्यथाहीन है ।
जिसने अहं-कार्य को त्यागा,
वह भक्त मुझे अति प्यारा है ।। 12.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो न हर्षित, घृणा न करता,
शोच विहीन, इच्छा-रहित है ।
भक्ति भरा, शुभ-अशुभ त्यागी,
वह मुझे अति प्यारा है ।। 12.17 ।।

शत्रु-मित्र के लिए समान,
मान-अपमान में सम रहता है ।
गर्मी-सर्दी, सुख-दु:ख में सम है,
हो जो चुका आसक्तिहीन है ।। 12.18 ।।

मौनी, स्तुति-निन्दा में समान,
संतुष्ट सभी स्थितियों में है ।
गृह हीन, स्थिर मन रहता,
नर भक्तिमान, मुझे अति प्यारा है ।। 12.19 ।।

जो भक्त उपासना मेरी करते,
उपर्युक्त धर्मामृत अनुसार ।
श्रद्धावान वे, परम् लक्ष्य मैं उनका,
मैं उनको करता अति प्यार ।। 12.20 ।।

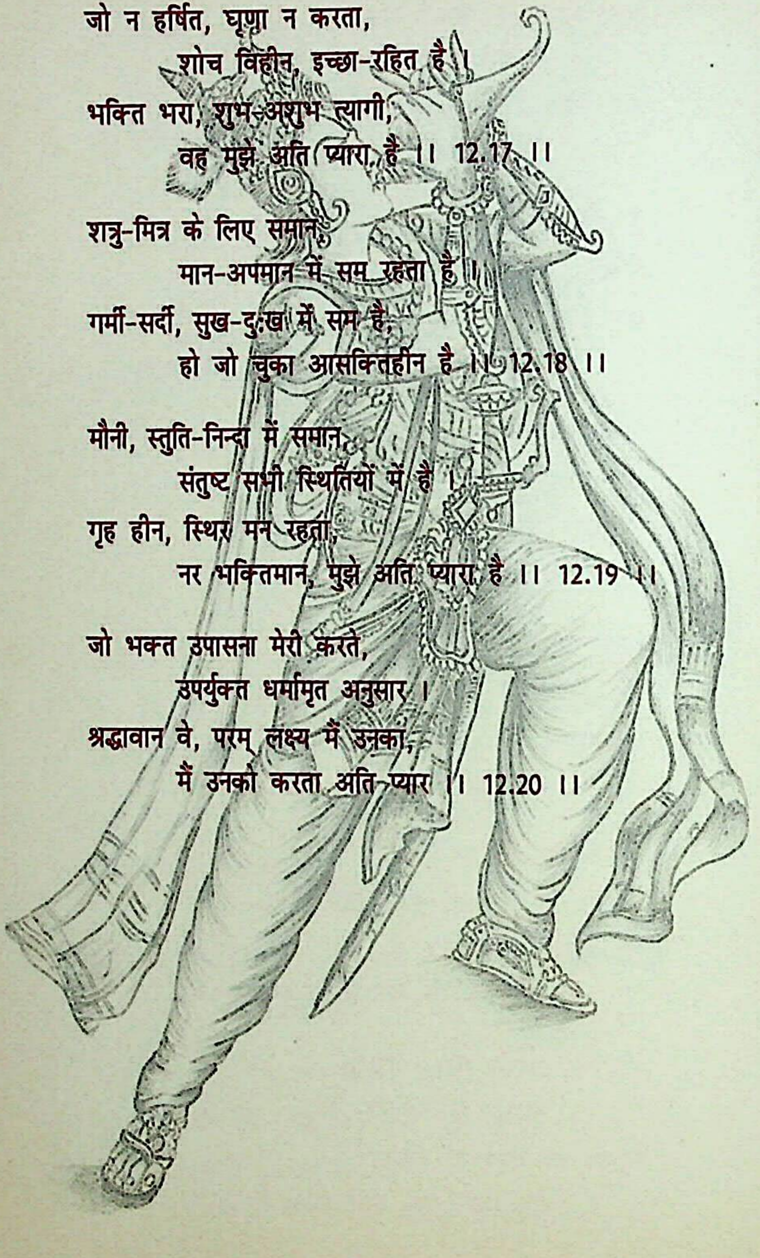

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

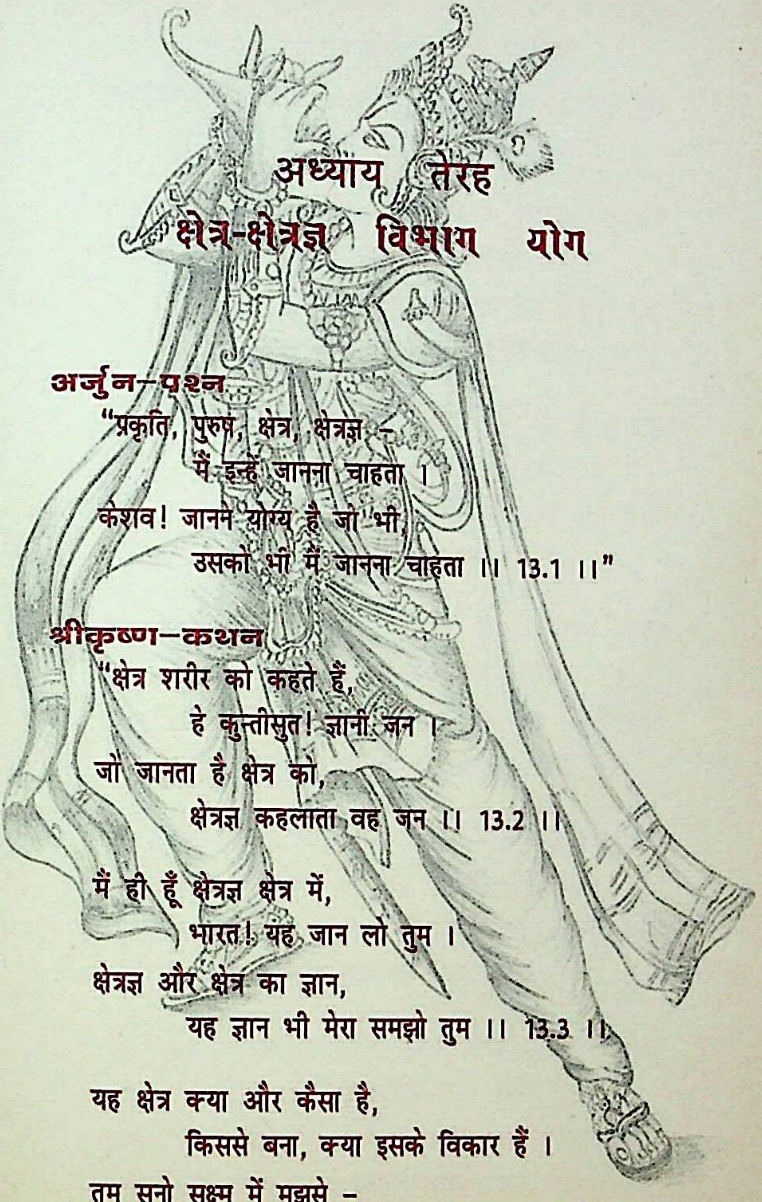

अध्याय तेरह

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग

अर्जुन–प्रश्न

"प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ –
मैं इन्हें जानना चाहता ।
केशव! जानने योग्य है जो भी,
उसको भी मैं जानना चाहता ।। 13.1 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"क्षेत्र शरीर को कहते हैं,
हे कुन्तीसुत! ज्ञानी जन ।
जो जानता है क्षेत्र को,
क्षेत्रज्ञ कहलाता वह जन ।। 13.2 ।।

मैं ही हूँ क्षेत्रज्ञ क्षेत्र में,
भारत! यह जान लो तुम ।
क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र का ज्ञान,
यह ज्ञान भी मेरा समझो तुम ।। 13.3 ।।

यह क्षेत्र क्या और कैसा है,
किससे बना, क्या इसके विकार हैं ।
तुम सुनो सूक्ष्म में मुझसे –
यह कौन, क्या इसके प्रभाव हैं ।। 13.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

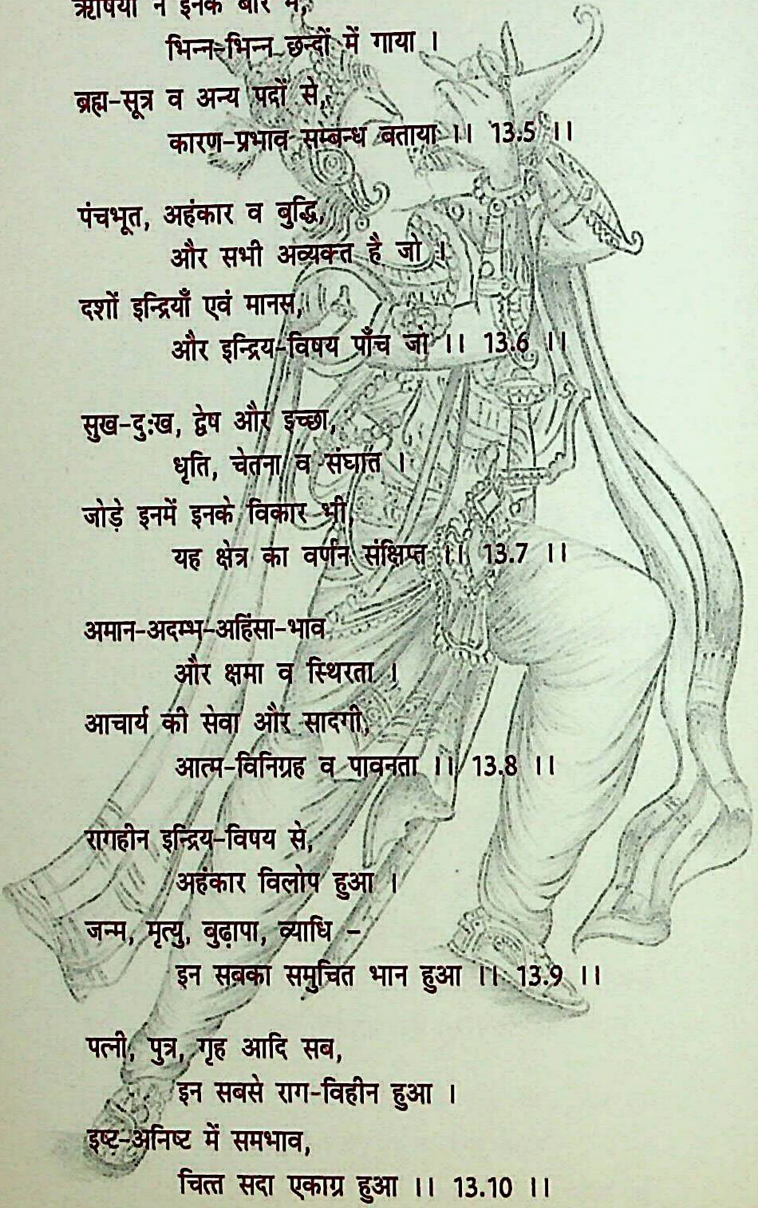

ऋषियों ने इनके बारे में,
भिन्न-भिन्न छन्दों में गाया ।
ब्रह्म-सूत्र व अन्य पदों से,
कारण-प्रभाव सम्बन्ध बताया ।। 13.5 ।।

पंचभूत, अहंकार व बुद्धि,
और सभी अव्यक्त है जो ।
दशों इन्द्रियाँ एवं मानस,
और इन्द्रिय-विषय पाँच जो ।। 13.6 ।।

सुख-दुःख, द्वेष और इच्छा,
धृति, चेतना व संघात ।
जोड़े इनमें इनके विकार भी,
यह क्षेत्र का वर्णन संक्षिप्त ।। 13.7 ।।

अमान-अदम्भ-अहिंसा-भाव
और क्षमा व स्थिरता ।
आचार्य की सेवा और सादगी,
आत्म-विनिग्रह व पावनता ।। 13.8 ।।

रागहीन इन्द्रिय-विषय से,
अहंकार विलोप हुआ ।
जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, व्याधि -
इन सबका समुचित भान हुआ ।। 13.9 ।।

पत्नी, पुत्र, गृह आदि सब,
इन सबसे राग-विहीन हुआ ।
इष्ट-अनिष्ट में समभाव,
चित्त सदा एकाग्र हुआ ।। 13.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

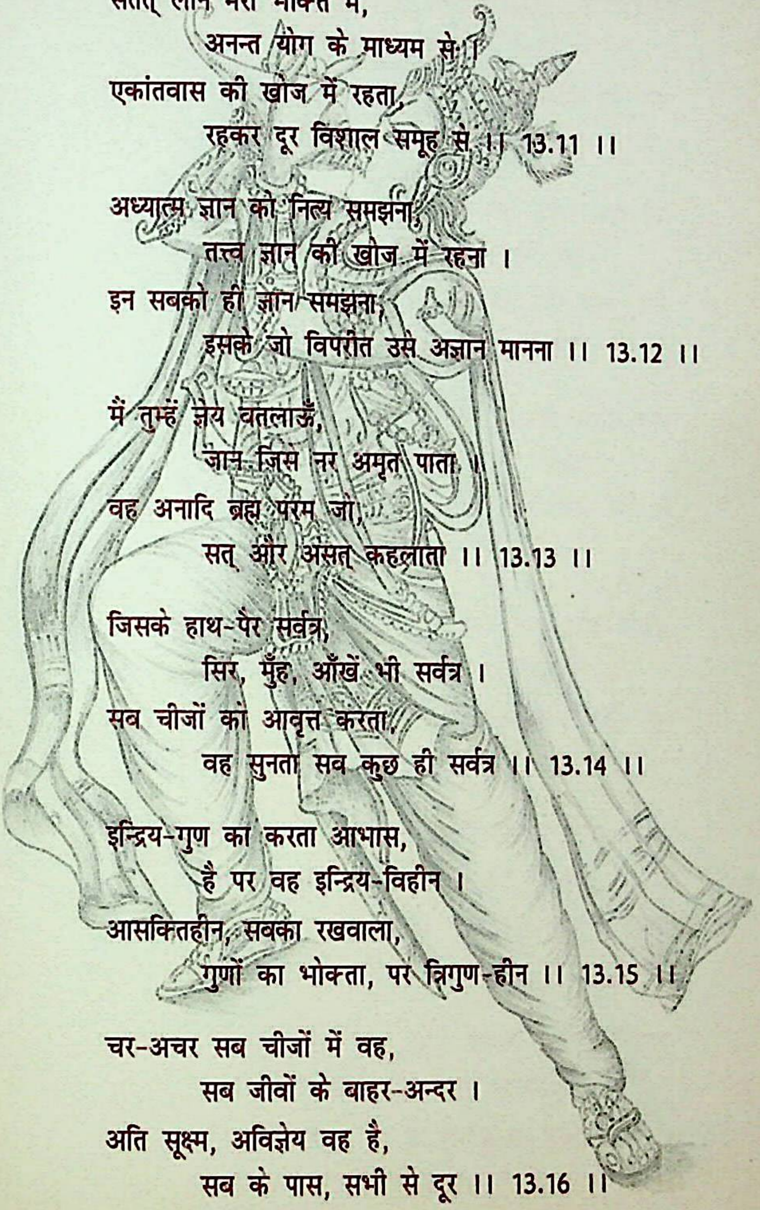

सतत् लीन मेरी भक्ति में,
अनन्त योग के माध्यम से ।
एकांतवास की खोज में रहता,
रहकर दूर विशाल समूह से ।। 13.11 ।।

अध्यात्म ज्ञान को नित्य समझना,
तत्त्व ज्ञान की खोज में रहना ।
इन सबको ही ज्ञान समझना,
इसके जो विपरीत उसे अज्ञान मानना ।। 13.12 ।।

मैं तुम्हें ज्ञेय बतलाऊँ,
जान जिसे नर अमृत पाता ।
वह अनादि ब्रह्म परम जो,
सत् और असत् कहलाता ।। 13.13 ।।

जिसके हाथ-पैर सर्वत्र,
सिर, मुँह, आँखें भी सर्वत्र ।
सब चीजों को आवृत्त करता,
वह सुनता सब कुछ ही सर्वत्र ।। 13.14 ।।

इन्द्रिय-गुण का करता आभास,
है पर वह इन्द्रिय-विहीन ।
आसक्तिहीन, सबका रखवाला,
गुणों का भोक्ता, पर त्रिगुण-हीन ।। 13.15 ।।

चर-अचर सब चीजों में वह,
सब जीवों के बाहर-अन्दर ।
अति सूक्ष्म, अविज्ञेय वह है,
सब के पास, सभी से दूर ।। 13.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

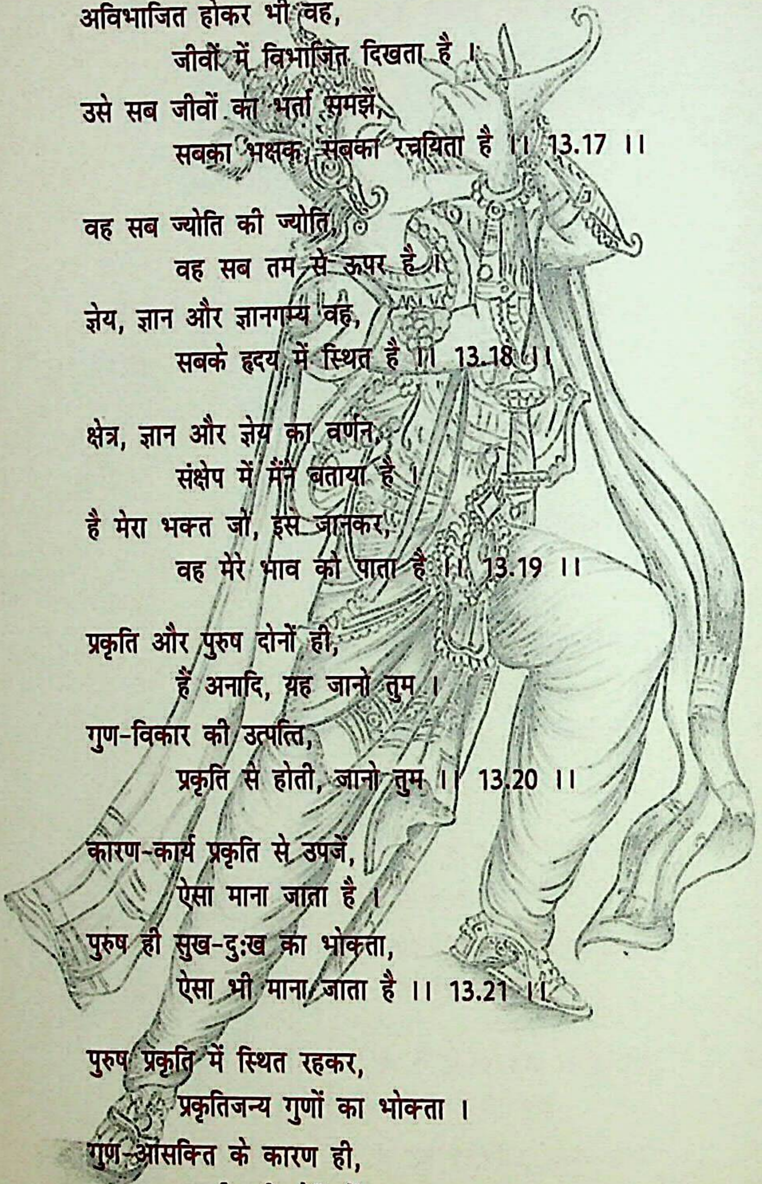

अविभाजित होकर भी वह,
जीवों में विभाजित दिखता है ।
उसे सब जीवों का भर्ता समझें,
सबका भक्षक, सबका रचयिता है ।। 13.17 ।।

वह सब ज्योति की ज्योति,
वह सब तम से ऊपर है ।
ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञानगम्य वह,
सबके हृदय में स्थित है ।। 13.18 ।।

क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय का वर्णन,
संक्षेप में मैंने बताया है ।
है मेरा भक्त जो, इसे जानकर,
वह मेरे भाव को पाता है ।। 13.19 ।।

प्रकृति और पुरुष दोनों ही,
हैं अनादि, यह जानो तुम ।
गुण-विकार की उत्पत्ति,
प्रकृति से होती, जानो तुम ।। 13.20 ।।

कारण-कार्य प्रकृति से उपजें,
ऐसा माना जाता है ।
पुरुष ही सुख-दुःख का भोक्ता,
ऐसा भी माना जाता है ।। 13.21 ।।

पुरुष प्रकृति में स्थित रहकर,
प्रकृतिजन्य गुणों का भोक्ता ।
गुण-आसक्ति के कारण ही,
अच्छी-बुरी योनि में जाता ।। 13.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

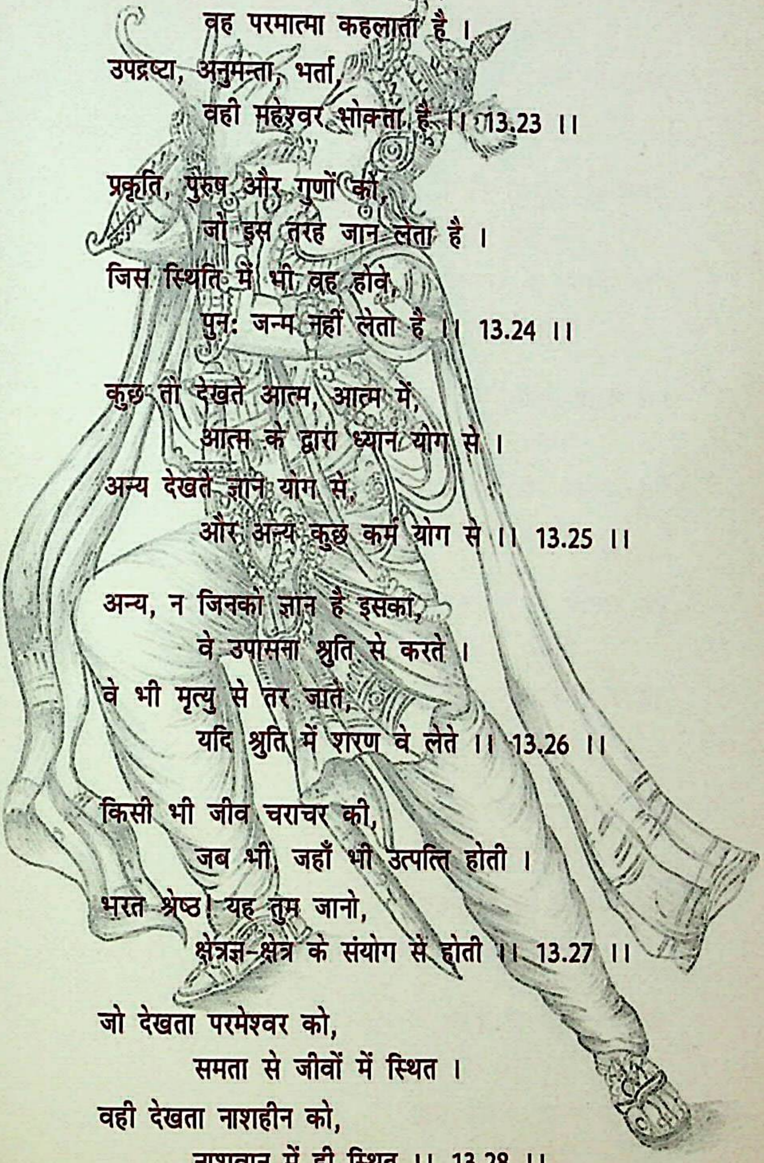

पर परम् पुरुष है जो इस देह में,
वह परमात्मा कहलाता है ।
उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता,
वही महेश्वर भोक्ता है ।। 13.23 ।।

प्रकृति, पुरुष और गुणों को,
जो इस तरह जान लेता है ।
जिस स्थिति में भी वह होवे,
पुनः जन्म नहीं लेता है ।। 13.24 ।।

कुछ तो देखते आत्म, आत्म में,
आत्म के द्वारा ध्यान योग से ।
अन्य देखते ज्ञान योग से,
और अन्य कुछ कर्म योग से ।। 13.25 ।।

अन्य, न जिनको ज्ञान है इसका,
वे उपासना श्रुति से करते ।
वे भी मृत्यु से तर जाते,
यदि श्रुति में शरण वे लेते ।। 13.26 ।।

किसी भी जीव चराचर की,
जब भी, जहाँ भी उत्पत्ति होती ।
भरत श्रेष्ठ! यह तुम जानो,
क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र के संयोग से होती ।। 13.27 ।।

जो देखता परमेश्वर को,
समता से जीवों में स्थित ।
वही देखता नाशहीन को,
नाशवान में ही स्थित ।। 13.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

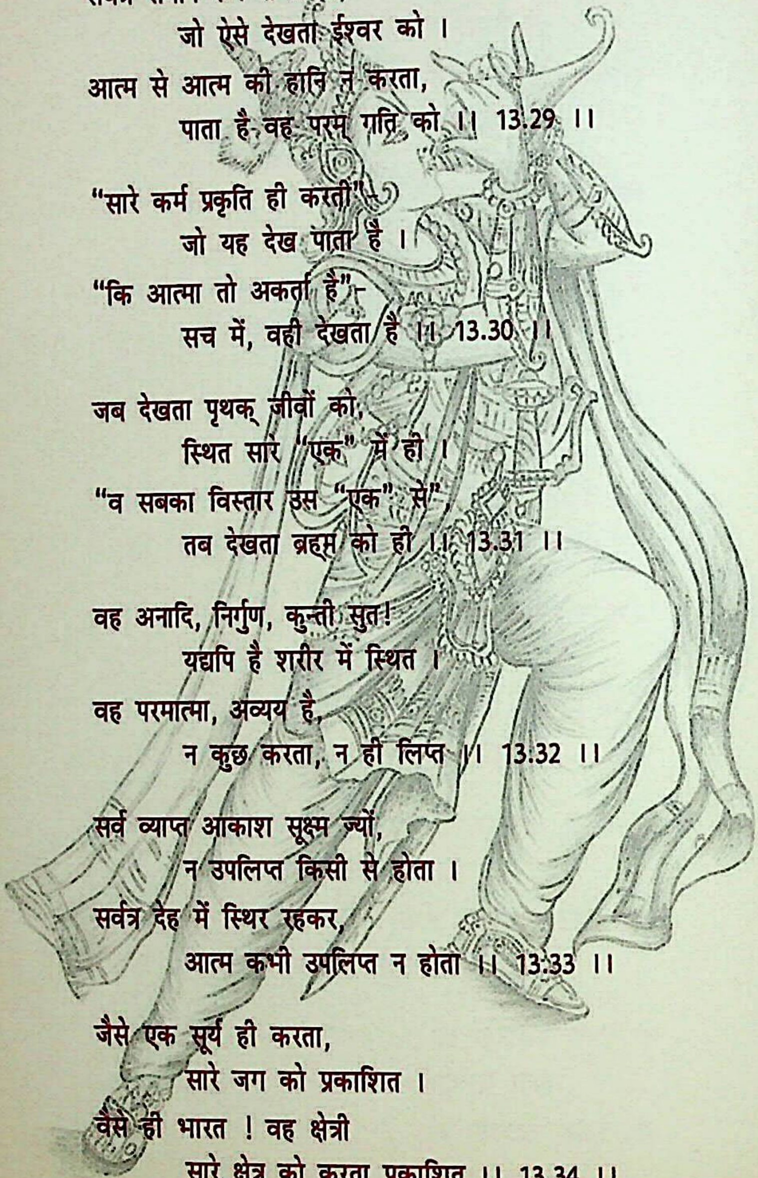

सर्वत्र समान रूप से स्थित,
जो ऐसे देखता ईश्वर को ।
आत्म से आत्म की हानि न करता,
पाता है वह परम गति को ।। 13.29 ।।

"सारे कर्म प्रकृति ही करती"–
जो यह देख पाता है ।
"कि आत्मा तो अकर्ता है"–
सच में, वही देखता है ।। 13.30 ।।

जब देखता पृथक् जीवों को,
स्थित सारे "एक" में ही ।
"व सबका विस्तार उस "एक" से",
तब देखता ब्रह्म को ही ।। 13.31 ।।

वह अनादि, निर्गुण, कुन्ती सुत!
यद्यपि है शरीर में स्थित ।
वह परमात्मा, अव्यय है,
न कुछ करता, न ही लिप्त ।। 13.32 ।।

सर्व व्याप्त आकाश सूक्ष्म ज्यों,
न उपलिप्त किसी से होता ।
सर्वत्र देह में स्थिर रहकर,
आत्म कभी उपलिप्त न होता ।। 13.33 ।।

जैसे एक सूर्य ही करता,
सारे जग को प्रकाशित ।
वैसे ही भारत ! वह क्षेत्री
सारे क्षेत्र को करता प्रकाशित ।। 13.34 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो देखते ज्ञान चक्षु से,
क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र के अन्तर को ।
और देखते मोक्ष प्रकृति से,
वे जाते हैं परम् गति को ।। 13.35 ।।"

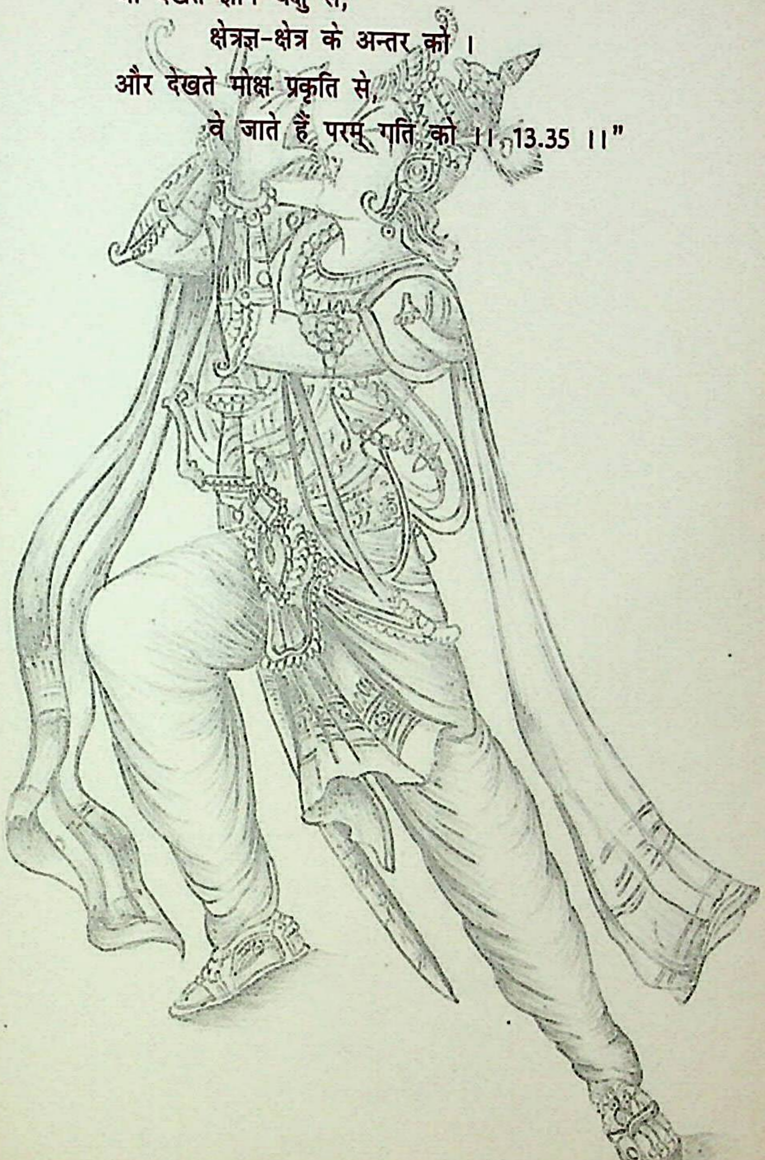

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

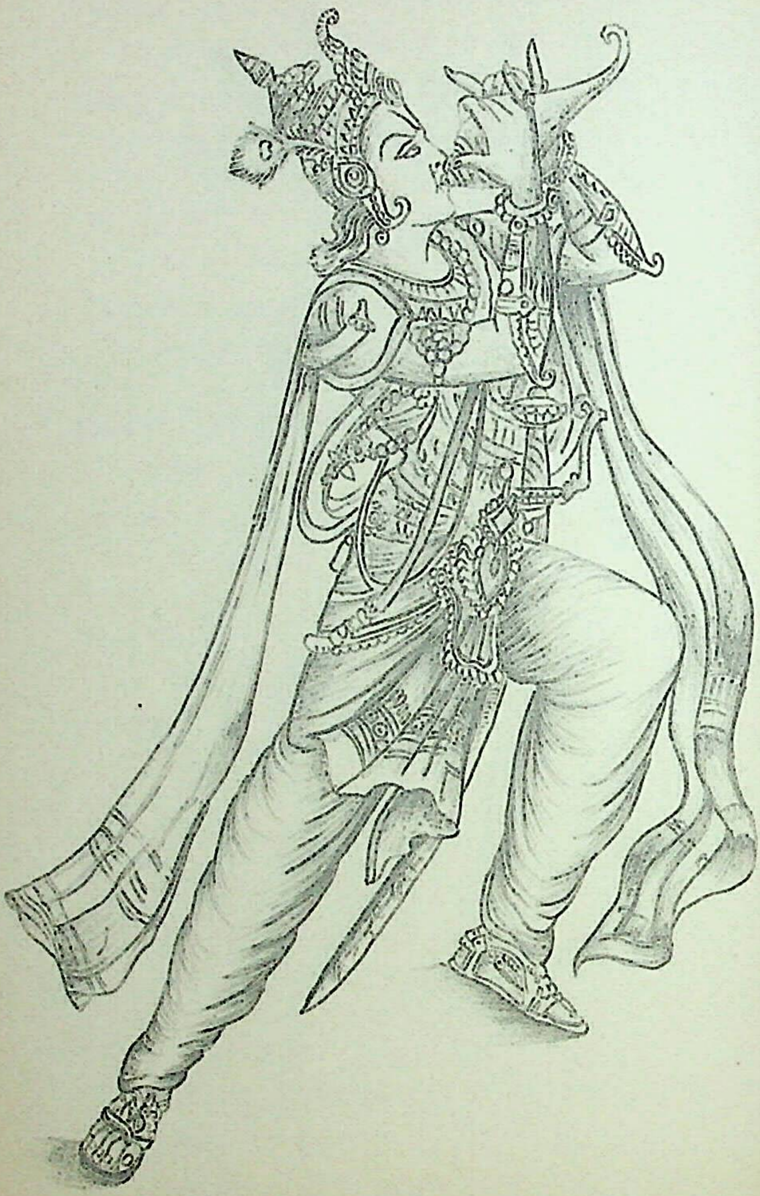

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

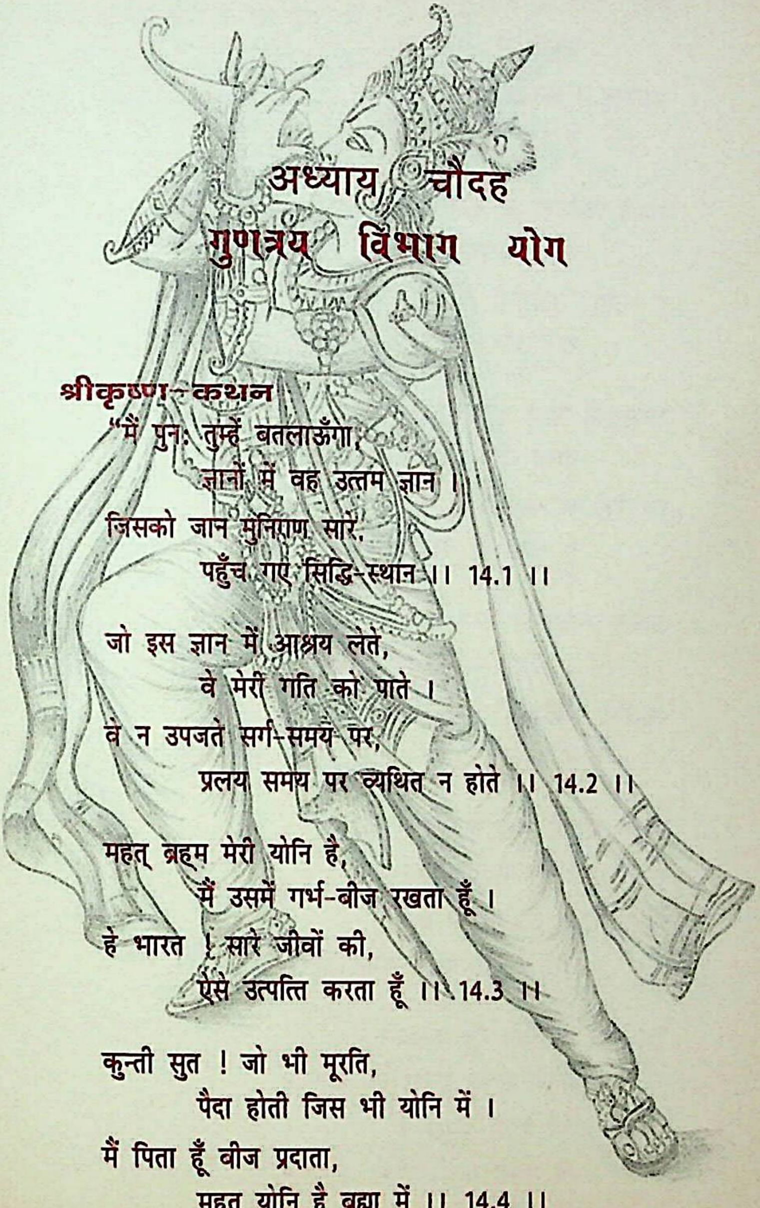

अध्याय चौदह
गुणत्रय विभाग योग

श्रीकृष्ण-कथन

"मैं पुनः तुम्हें बतलाऊँगा,
ज्ञानों में वह उत्तम ज्ञान ।
जिसको जान मुनिगण सारे,
पहुँच गए सिद्धि-स्थान ।। 14.1 ।।

जो इस ज्ञान में आश्रय लेते,
वे मेरी गति को पाते ।
वे न उपजते सर्ग-समय पर,
प्रलय समय पर व्यथित न होते ।। 14.2 ।।

महत् ब्रह्म मेरी योनि है,
मैं उसमें गर्भ-बीज रखता हूँ ।
हे भारत ! सारे जीवों की,
ऐसे उत्पत्ति करता हूँ ।। 14.3 ।।

कुन्ती सुत ! जो भी मूरति,
पैदा होती जिस भी योनि में ।
मैं पिता हूँ बीज प्रदाता,
महत् योनि है ब्रह्मा में ।। 14.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

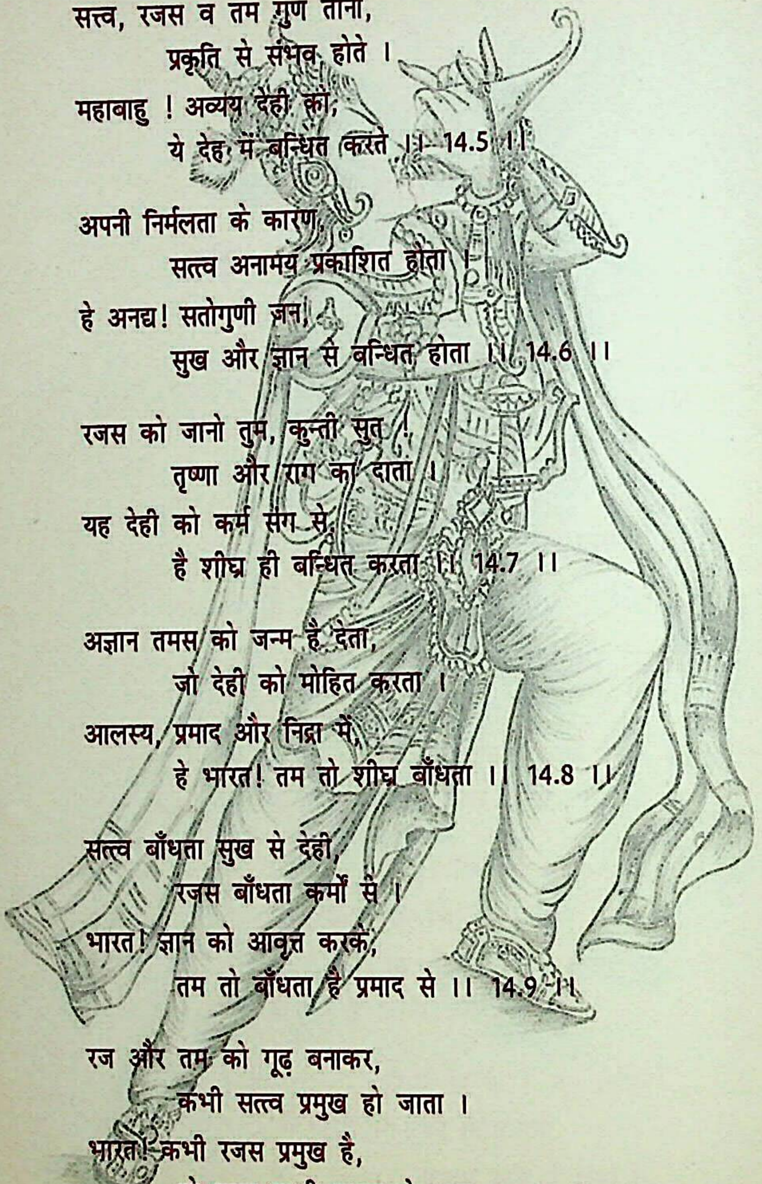

सत्त्व, रजस व तम गुण तीनों,
प्रकृति से संभव होते ।
महाबाहु ! अव्यय देही को,
ये देह में बन्धित करते ।। 14.5 ।।

अपनी निर्मलता के कारण,
सत्त्व अनामय प्रकाशित होता ।
हे अनघ! सतोगुणी जन,
सुख और ज्ञान से बन्धित होता ।। 14.6 ।।

रजस को जानो तुम, कुन्ती सुत !
तृष्णा और राग का दाता ।
यह देही को कर्म संग से,
है शीघ्र ही बन्धित करता ।। 14.7 ।।

अज्ञान तमस को जन्म है देता,
जो देही को मोहित करता ।
आलस्य, प्रमाद और निद्रा में,
हे भारत! तम तो शीघ्र बाँधता ।। 14.8 ।।

सत्त्व बाँधता सुख से देही,
रजस बाँधता कर्मों से ।
भारत! ज्ञान को आवृत्त करके,
तम तो बाँधता है प्रमाद से ।। 14.9 ।।

रज और तम को गूढ़ बनाकर,
कभी सत्त्व प्रमुख हो जाता ।
भारत! कभी रजस प्रमुख है,
तो तमस कभी प्रमुख हो जाता ।। 14.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब देह के सब द्वारों से,
ज्ञान का प्रकाश जागता ।
यह तो समझा जाना चाहिये,
हुई सत्त्व की तब प्रमुखता ।। 14.11 ।।

लोभ, प्रयत्न और कर्म निरन्तर,
स्पृहा जिसमें जोर पकड़ती ।
भरत श्रेष्ठ! उस नर में समझो,
रजस प्रवृत्ति प्रमुख होती ।। 14.12 ।।

जब बढ़ जाते मोह, प्रमाद,
अप्रकाश, प्रयत्नहीनता ।
कुरुनन्दन! समझो तब नर में,
होती तम-गुण की प्रधानता ।। 14.13 ।।

मृत्यु समय पर जो देह धारी,
होता है यदि सत्त्व प्रधानी ।
वह जाता है अमल लोक में,
जहाँ होते हैं उत्तम ज्ञानी ।। 14.14 ।।

रज-प्रधान मरकर जाता है,
कर्म रागियों के संग में ।
मृत्यु समय जो तम-प्रधान है,
वह जन्मता मूढ़ों के बीच में ।। 14.15 ।।

सात्विक रहकर कर्म जो करता,
वह तो निर्मल फल पाता ।
रज गुण का फल दुःख होता है,
तम फल तो अज्ञान ही होता ।। 14.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्त्व से तो ज्ञान जागता,
लोभ जागता रज गुण से ।
मोह-प्रमाद, तमस से आता,
और अज्ञान भी आता इससे ।। 14.17 ।।

जो सत्त्व में स्थित, ऊपर जाते वे,
रजोगुणी हैं बीच में रहते ।
जघन्य-वृत्ति रखते नर जो,
तमोगुणी वे नीचे जाते ।। 14.18 ।।

मैं गुणों के भी पर हूँ,
गुण-प्रभाव से कुछ अन्य न बचता ।
जो कर्ता यह जान है लेता,
वह मुझमें ही आ जाता ।। 14.19 ।।

देह का उद्भव तीन गुणों से,
गुणातीत जब देही होता ।
जन्म, मृत्यु, दुःख और बुढ़ापा,
इनसे मुक्त हो अमृत पीता ।। 14.20 ।।"

अर्जुन-प्रश्न

"क्या चिह्न उसके होते प्रभु,
जो नर गुणातीत हुआ ।
कैसा उसका चाल-चलन है,
कैसे वह गुणातीत हुआ ।। 14.21 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"यदि प्रकाश, प्रयत्न और मोह उपस्थित,
तो उनसे वह दोष न रखता ।
यादि, पाण्डव! ये सब अनुपस्थित,
तो इनकी इच्छा न रखता ।। 14.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

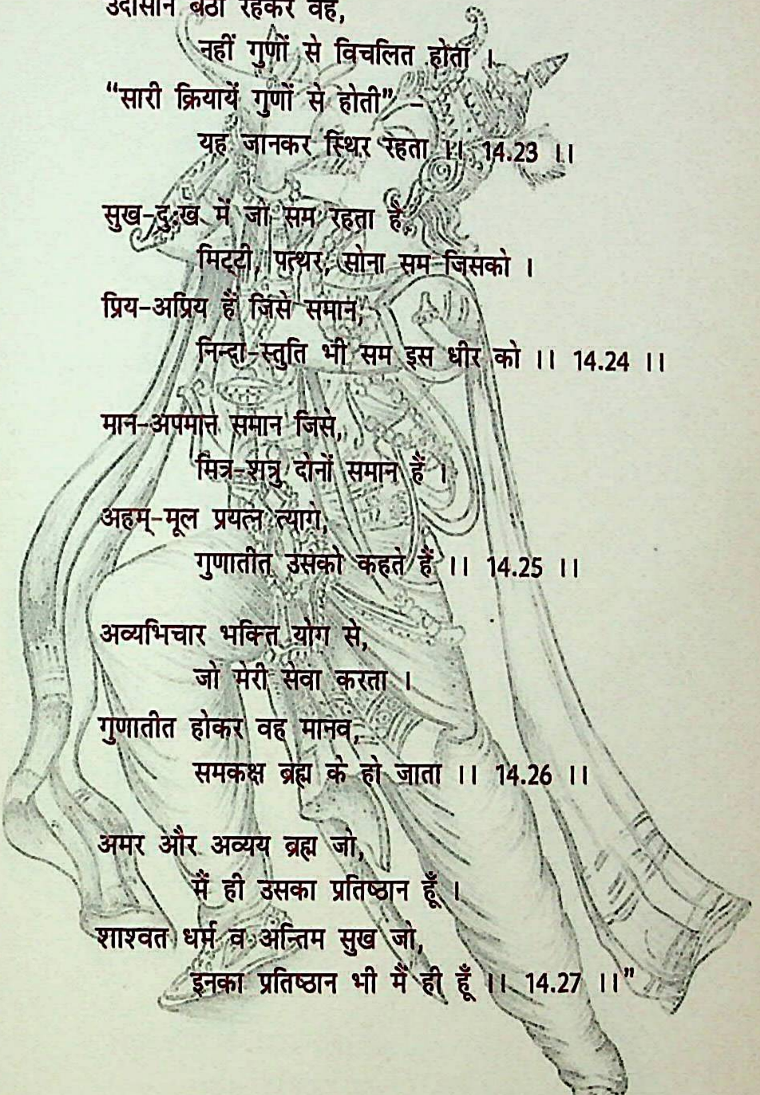

उदासीन बैठा रहकर वह,
नहीं गुणों से विचलित होता ।
"सारी क्रियायें गुणों से होती" –
यह जानकर स्थिर रहता ।। 14.23 ।।

सुख-दुःख में जो सम रहता है,
मिट्टी, पत्थर, सोना सम जिसको ।
प्रिय-अप्रिय हैं जिसे समान,
निन्दा-स्तुति भी सम इस धीर को ।। 14.24 ।।

मान-अपमान समान जिसे,
मित्र-शत्रु दोनों समान हैं ।
अहम्-मूल प्रयत्न त्यागे,
गुणातीत उसको कहते हैं ।। 14.25 ।।

अव्यभिचार भक्ति योग से,
जो मेरी सेवा करता ।
गुणातीत होकर वह मानव,
समकक्ष ब्रह्म के हो जाता ।। 14.26 ।।

अमर और अव्यय ब्रह्म जो,
मैं ही उसका प्रतिष्ठान हूँ ।
शाश्वत धर्म व अन्तिम सुख जो,
इनका प्रतिष्ठान भी मैं ही हूँ ।। 14.27 ।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

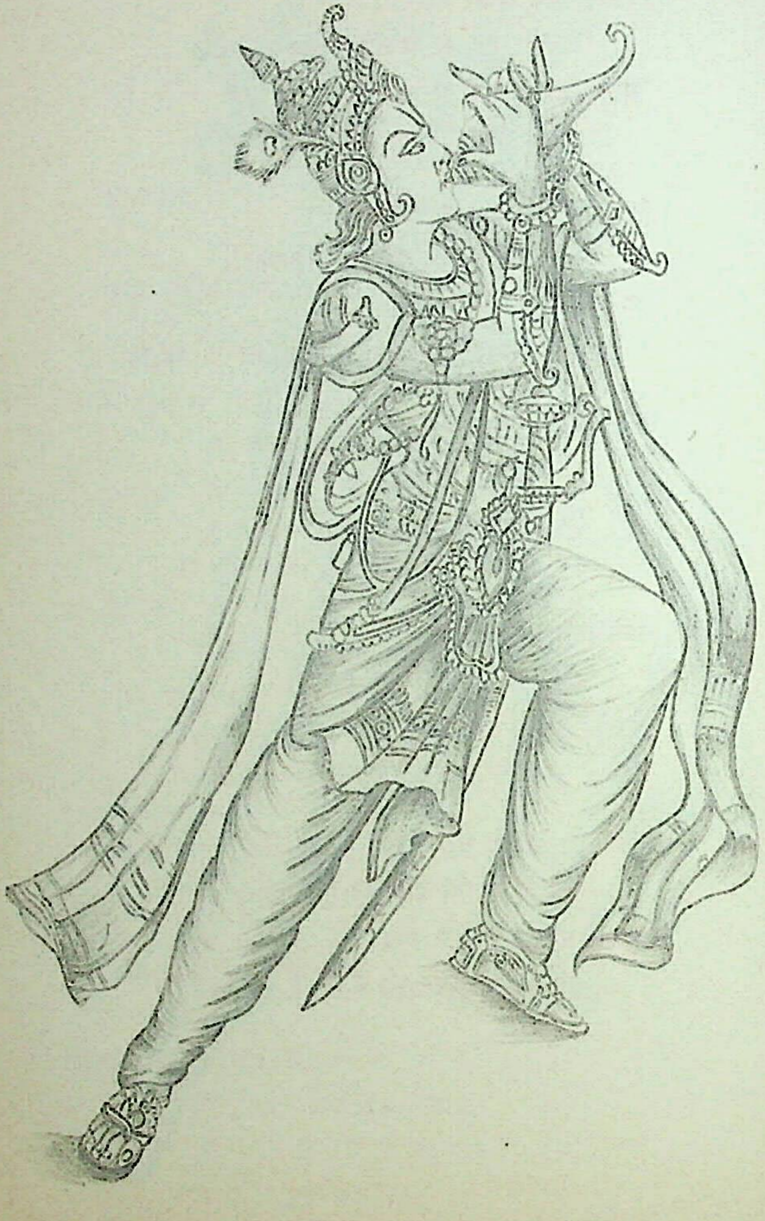

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

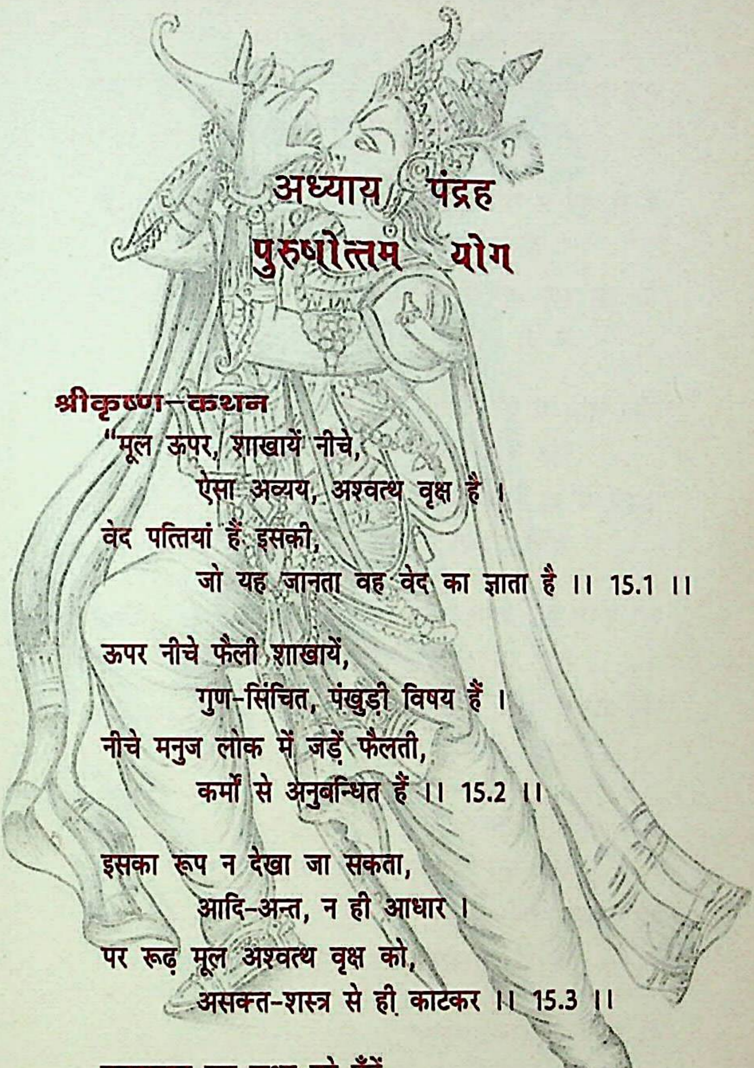

अध्याय पंद्रह
पुरुषोत्तम योग

श्रीकृष्ण–कथन

"मूल ऊपर, शाखायें नीचे,
ऐसा अव्यय, अश्वत्थ वृक्ष है ।
वेद पत्तियां हैं इसकी,
जो यह जानता वह वेद का ज्ञाता है ।। 15.1 ।।

ऊपर नीचे फैली शाखायें,
गुण-सिंचित, पंखुड़ी विषय हैं ।
नीचे मनुज लोक में जड़ें फैलती,
कर्मों से अनुबन्धित हैं ।। 15.2 ।।

इसका रूप न देखा जा सकता,
आदि-अन्त, न ही आधार ।
पर रूढ़ मूल अश्वत्थ वृक्ष को,
असक्त-शस्त्र से ही काटकर ।। 15.3 ।।

तत्पश्चात् उस लक्ष्य को ढूँढ़ें,
जहां पहुंचकर पुनः न आवें ।
काल पुरातन से जो कारक,
उस आदि पुरुष की शरण में जावें ।। 15.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

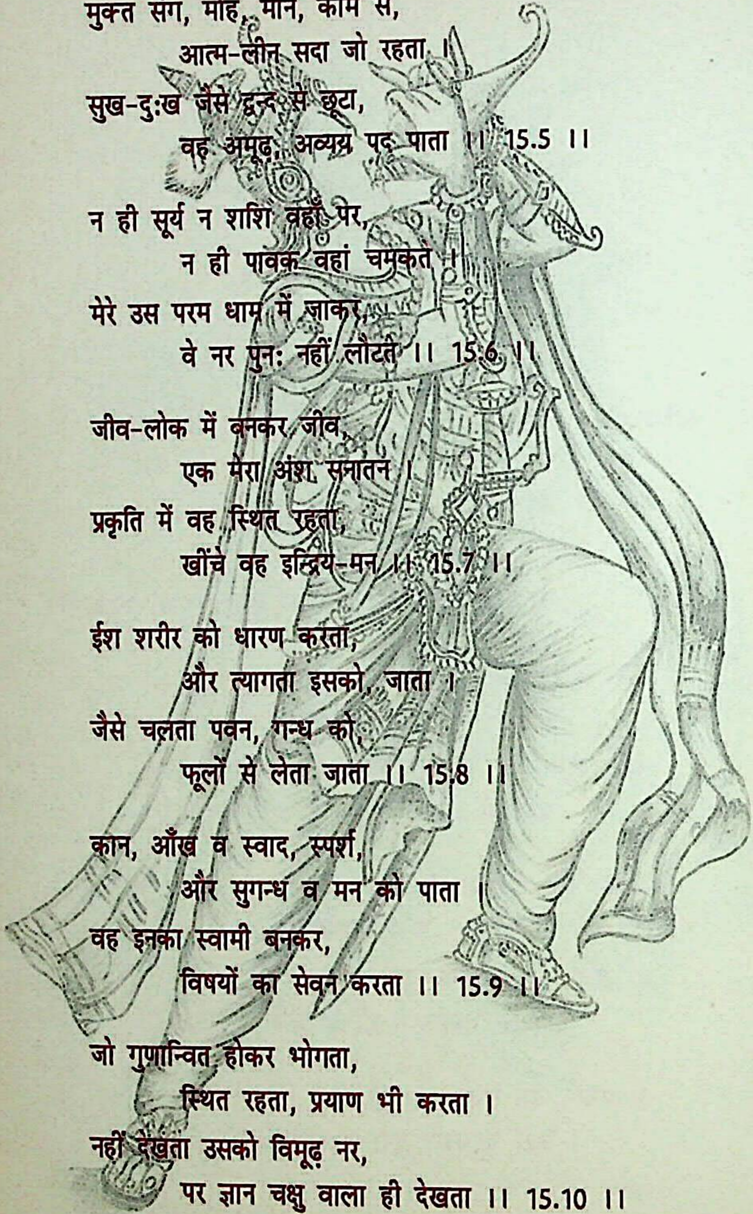

मुक्त संग, मोह, मान, काम से,
आत्म-लीन सदा जो रहता ।
सुख-दु:ख जैसे द्वन्द से छूटा,
वह अमूढ़, अव्यग्र पद पाता ।। 15.5 ।।

न ही सूर्य न शशि वहाँ पर,
न ही पावक वहां चमकते ।
मेरे उस परम धाम में जाकर,
वे नर पुन: नहीं लौटते ।। 15.6 ।।

जीव-लोक में बनकर जीव,
एक मेरा अंश, सनातन ।
प्रकृति में वह स्थित रहता,
खींचे वह इन्द्रिय-मन ।। 15.7 ।।

ईश शरीर को धारण करता,
और त्यागता इसको, जाता ।
जैसे चलता पवन, गन्ध को,
फूलों से लेता जाता ।। 15.8 ।।

कान, आँख व स्वाद, स्पर्श,
और सुगन्ध व मन को पाता ।
वह इनका स्वामी बनकर,
विषयों का सेवन करता ।। 15.9 ।।

जो गुणान्वित होकर भोगता,
स्थित रहता, प्रयाण भी करता ।
नहीं देखता उसको विमूढ़ नर,
पर ज्ञान चक्षु वाला ही देखता ।। 15.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

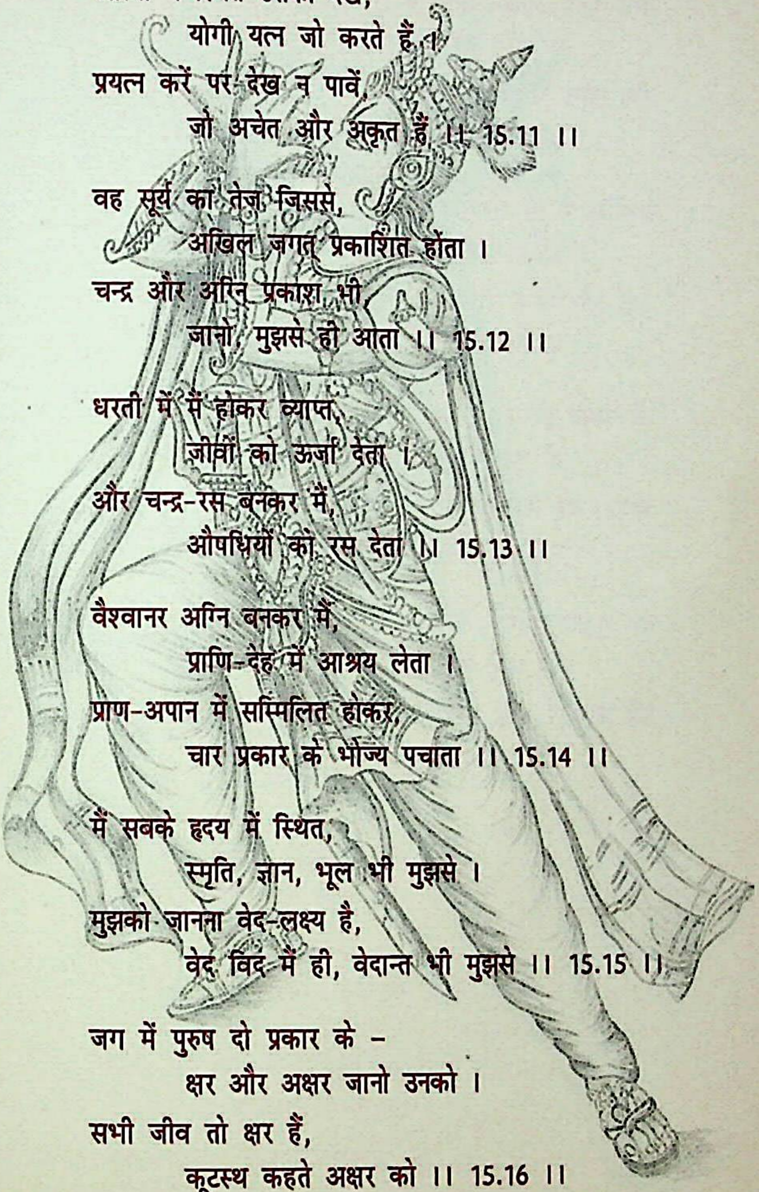

आत्मा में स्थित उसको देखें,
योगी यत्न जो करते हैं ।
प्रयत्न करें पर देख न पावें,
जो अचेत और अकृत हैं ।। 15.11 ।।

वह सूर्य का तेज जिससे,
अखिल जगत प्रकाशित होता ।
चन्द्र और अग्नि प्रकाश भी,
जानो, मुझसे ही आता ।। 15.12 ।।

धरती में मैं होकर व्याप्त,
जीवों को ऊर्जा देता ।
और चन्द्र-रस बनकर मैं,
औषधियों को रस देता ।। 15.13 ।।

वैश्वानर अग्नि बनकर मैं,
प्राणि-देह में आश्रय लेता ।
प्राण-अपान में सम्मिलित होकर,
चार प्रकार के भोज्य पचाता ।। 15.14 ।।

मैं सबके हृदय में स्थित,
स्मृति, ज्ञान, भूल भी मुझसे ।
मुझको जानना वेद-लक्ष्य है,
वेद विद मैं ही, वेदान्त भी मुझसे ।। 15.15 ।।

जग में पुरुष दो प्रकार के –
क्षर और अक्षर जानो उनको ।
सभी जीव तो क्षर हैं,
कूटस्थ कहते अक्षर को ।। 15.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम् पुरुष लेकिन अन्य है,
परमात्मा जो कहलाता ।
तीन लोक में वह व्याप्त है,
अव्यय, ईश्वर सबका भर्त्ता ।। 15.17 ।।

क्योंकि मैं तो क्षरातीत हूँ,
अक्षर से भी ऊपर हूँ ।
वेदों और लोक दोनों में,
पुरुषोत्तम मैं कहलाता हूँ ।। 15.18 ।।

जो अमूढ़ होकर जानता,
यों पुरुषोत्तम मुझको ।
भारत! वह है सर्वज्ञानी,
सर्व भाव से भजता मुझको ।। 15.19 ।।

यह गूढ़तम शास्त्र, अनघ!
मैंने तुम्हें बताया है ।
उसे जानकर कोई भी नर,
बुद्धिमान बन जाता है ।। 15.20 ।।"

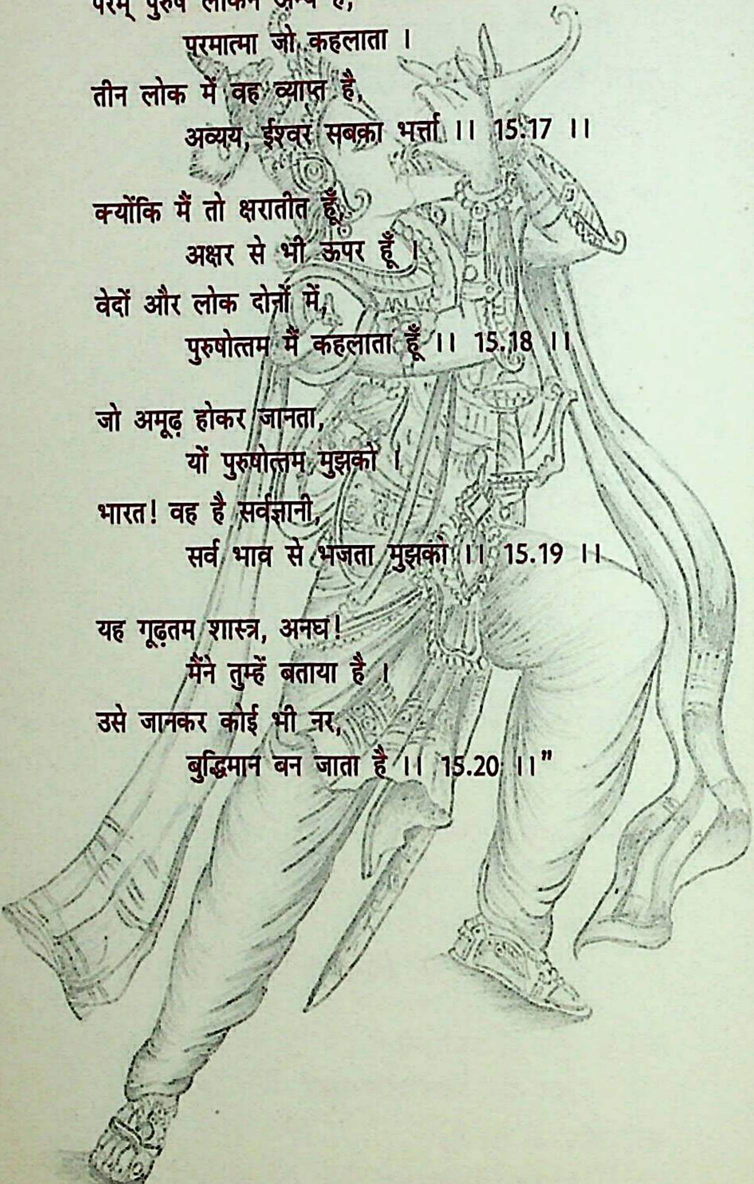

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

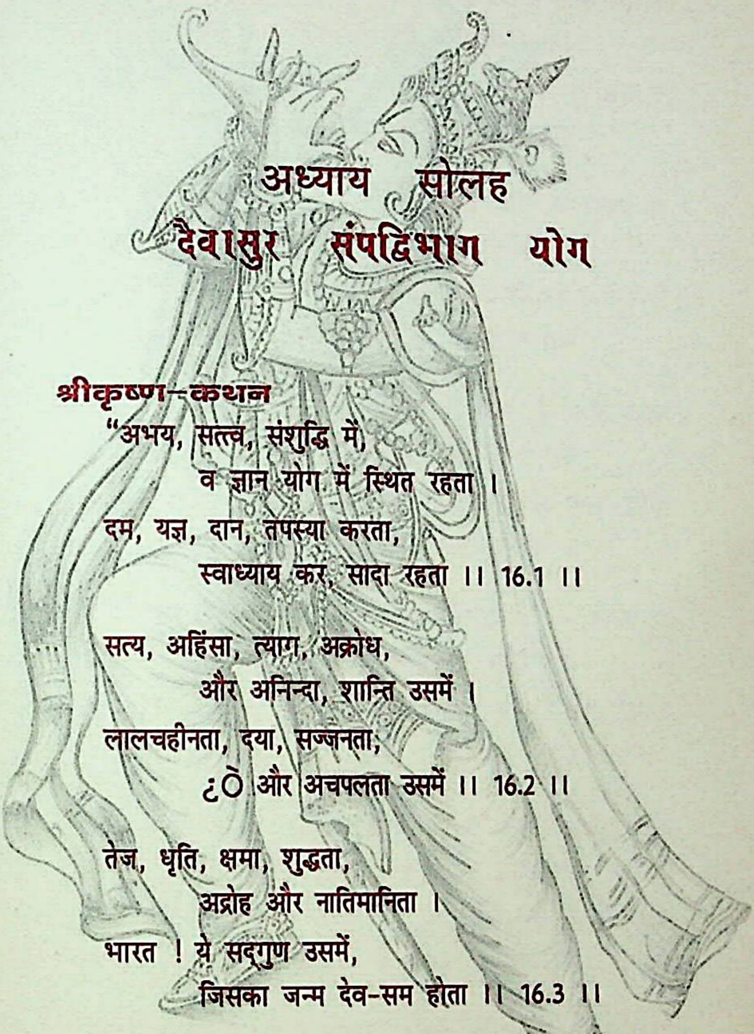

अध्याय सोलह
दैवासुर संपद्विभाग योग

श्रीकृष्ण-कथन

"अभय, सत्त्व, संशुद्धि में,
व ज्ञान योग में स्थित रहता ।
दम, यज्ञ, दान, तपस्या करता,
स्वाध्याय कर, सादा रहता ।। 16.1 ।।

सत्य, अहिंसा, त्याग, अक्रोध,
और अनिन्दा, शान्ति उसमें ।
लालचहीनता, दया, सज्जनता,
¿Ö और अचपलता उसमें ।। 16.2 ।।

तेज, धृति, क्षमा, शुद्धता,
अद्रोह और नातिमानिता ।
भारत ! ये सद्गुण उसमें,
जिसका जन्म देव-सम होता ।। 16.3 ।।

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध,
व कठोरता व अज्ञान ।
पृथा-पुत्र! ये अवगुण जिसमें,
उसकी प्रकृति असुर-समान ।। 16.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

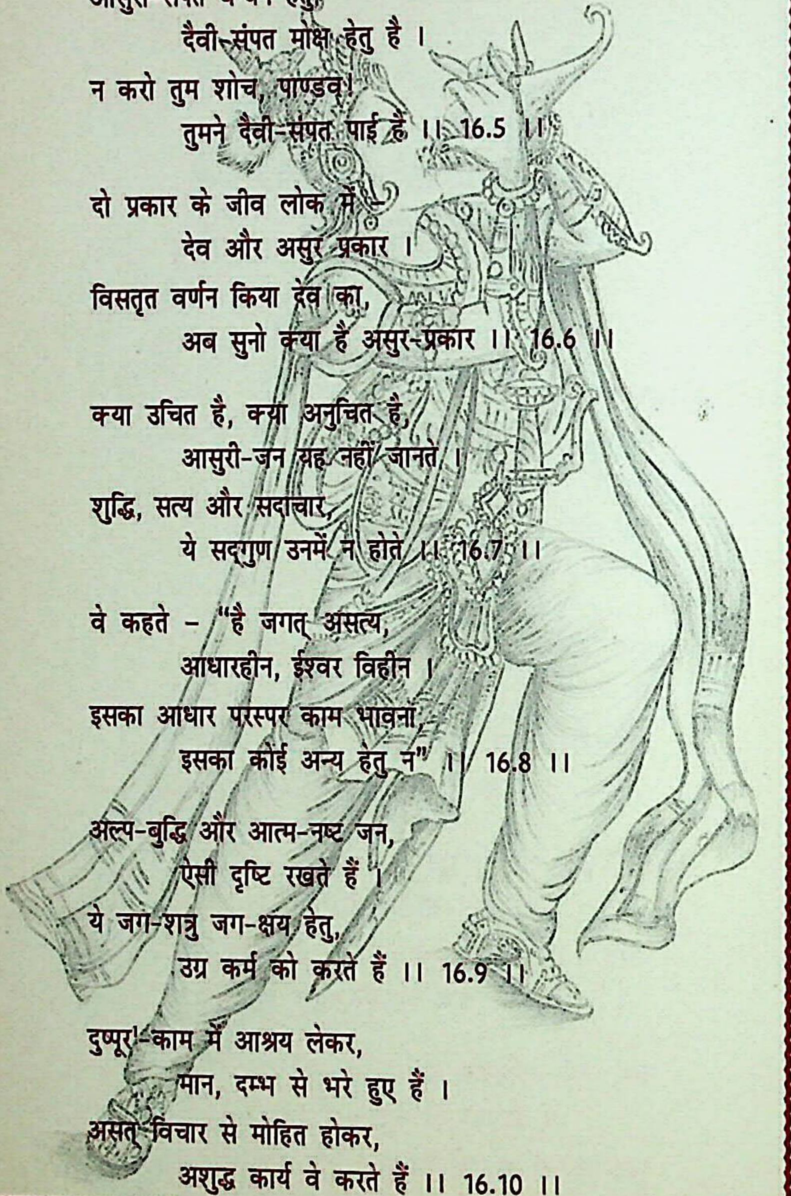

आसुरी-संपत बन्धन हेतु,
दैवी-संपत मोक्ष हेतु है ।
न करो तुम शोच, पाण्डव!
तुमने दैवी-संपत पाई है ।। 16.5 ।।

दो प्रकार के जीव लोक में –
देव और असुर प्रकार ।
विसतृत वर्णन किया देव का,
अब सुनो क्या है असुर-प्रकार ।। 16.6 ।।

क्या उचित है, क्या अनुचित है,
आसुरी-जन यह नहीं जानते ।
शुद्धि, सत्य और सदाचार,
ये सद्गुण उनमें न होते ।। 16.7 ।।

वे कहते – "है जगत् असत्य,
आधारहीन, ईश्वर विहीन ।
इसका आधार परस्पर काम भावना,
इसका कोई अन्य हेतु न" ।। 16.8 ।।

अल्प-बुद्धि और आत्म-नष्ट जन,
ऐसी दृष्टि रखते हैं ।
ये जग-शत्रु जग-क्षय हेतु,
उग्र कर्म को करते हैं ।। 16.9 ।।

दुष्पूर[1]-काम में आश्रय लेकर,
मान, दम्भ से भरे हुए हैं ।
असत् विचार से मोहित होकर,
अशुद्ध कार्य वे करते हैं ।। 16.10 ।।

1. अतृप्त हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपरिमित चिन्ताओं से घिरे हुए,
मृत्यु का, अन्त में, आश्रय लेते ।
काम-भोग ही परम लक्ष्य है,
ऐसा मान वे निश्चित रहते ।। 16.11 ।।

शत आशाओं में बंधे हुए,
काम-क्रोध से भरे हुए वे ।
अन्याय के द्वारा संचित करते,
काम-भोग के लिए अर्थ वे ।। 16.12 ।।

"मैंने इसको आज कमाया",
"यह मनोरथ पूरा होगा"।
"यह मेरा है" और भविष्य में,
"यह धन भी मेरा होगा" ।। 16.13 ।।

"मैंने इस शत्रु का नाश किया",
"अन्यों का भी कर दूंगा मैं" ।
"मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ",
"सिद्ध, सुखी, बलवान भी हूँ मैं"।। 16.14 ।।

"मैं आढय हूँ, मैं कुलीन हूँ",
"मेरे सदृश कौन हो सकता" ।
"दान, यज्ञ और मोद करूँगा",
अज्ञानी यों मोहित रहता ।। 16.15 ।।

अनेक चित्त से भ्रमित होकर,
मोह-जाल से आवृत्त रहता ।
काम-भोग में लगा हुआ वह,
अशुद्ध नरक में जाकर गिरता ।। 16.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बना घमंडी, स्तब्ध[1] हुआ,
धन व मान के उन्माद में रहता ।।
दम्भ से भरकर अविधिपूर्वक,
नाम मात्र का यज्ञ रचाता ।। 16.17 ।।

अहंकार, बल, दर्प, काम,
और क्रोध की शरण में जाता ।
अपनी और पराई देह में,
मुझसे जलता, घृणा करता ।। 16.18 ।।

हैं संसार में सबके नीचे,
ये जन दुष्ट अनुदार ।
अशुभ, आसुरी योनि इनको,
मैं देता हूँ बारंबार ।। 16.19 ।।

जन्म-जन्म में मूढ़ जीव ये,
असुर योनि में आते रहते ।
कुन्ती सुत! मुझको न पाकर,
अधम गति में ये फिर जाते ।। 16.20 ।।

तीन नरक के दरवाजे –
आत्म नाश इनसे होता है ।
काम, क्रोध और लोभ ये हैं,
इनका त्याग आवश्यक है ।। 16.21 ।।

इन तीन अंधेरे द्वारों से,
जो नर, कौन्तेय! मुक्त हुआ ।
वह करता जो अच्छा उसको,
वह परम गति को जाता है ।। 16.22 ।।

1. हठी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र-विधि को जो त्यागकर,
काम-कर्म में तत्पर रहता ।
न सिद्धि, न सुख को पाता,
परम् गति को वह न जाता ।। 16.23 ।।

शास्त्रों को प्रमाण मानकर,
कार्य-अकार्य का निर्णय लो तुम ।
शास्त्र-कथित विधियों को जानकर,
कार्य, जगत् में यों करो तुम ।। 16.24 ।।"

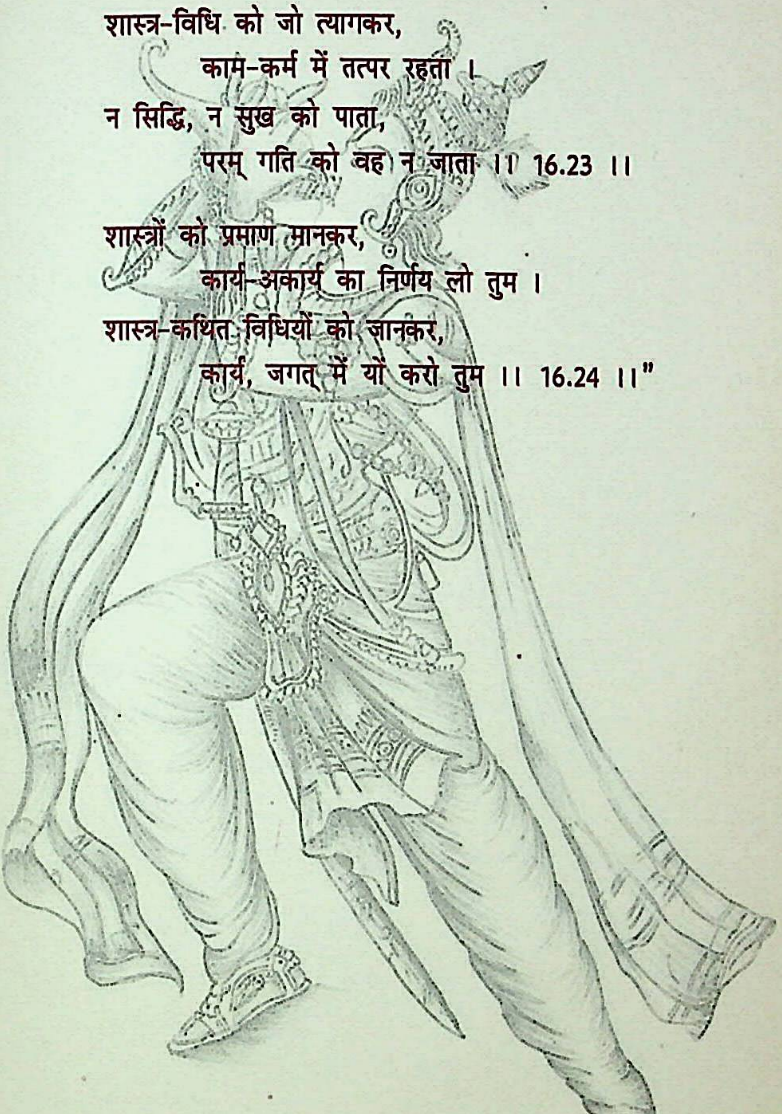

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

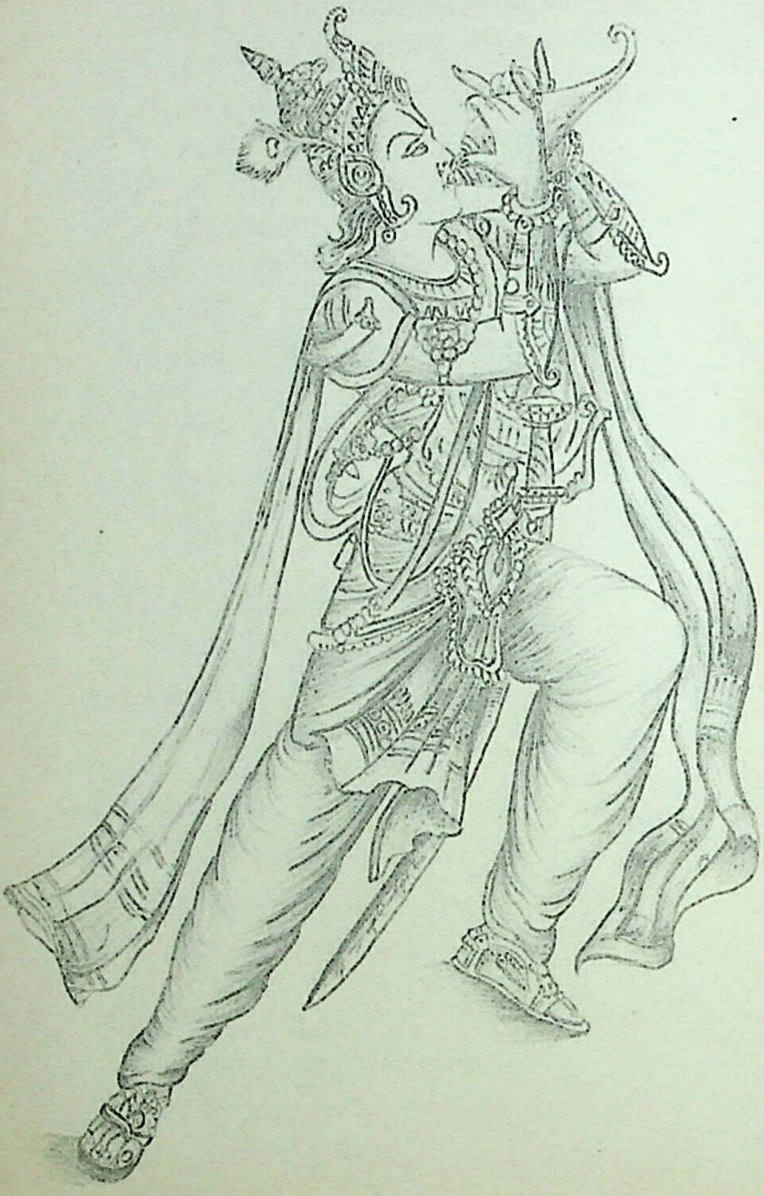

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

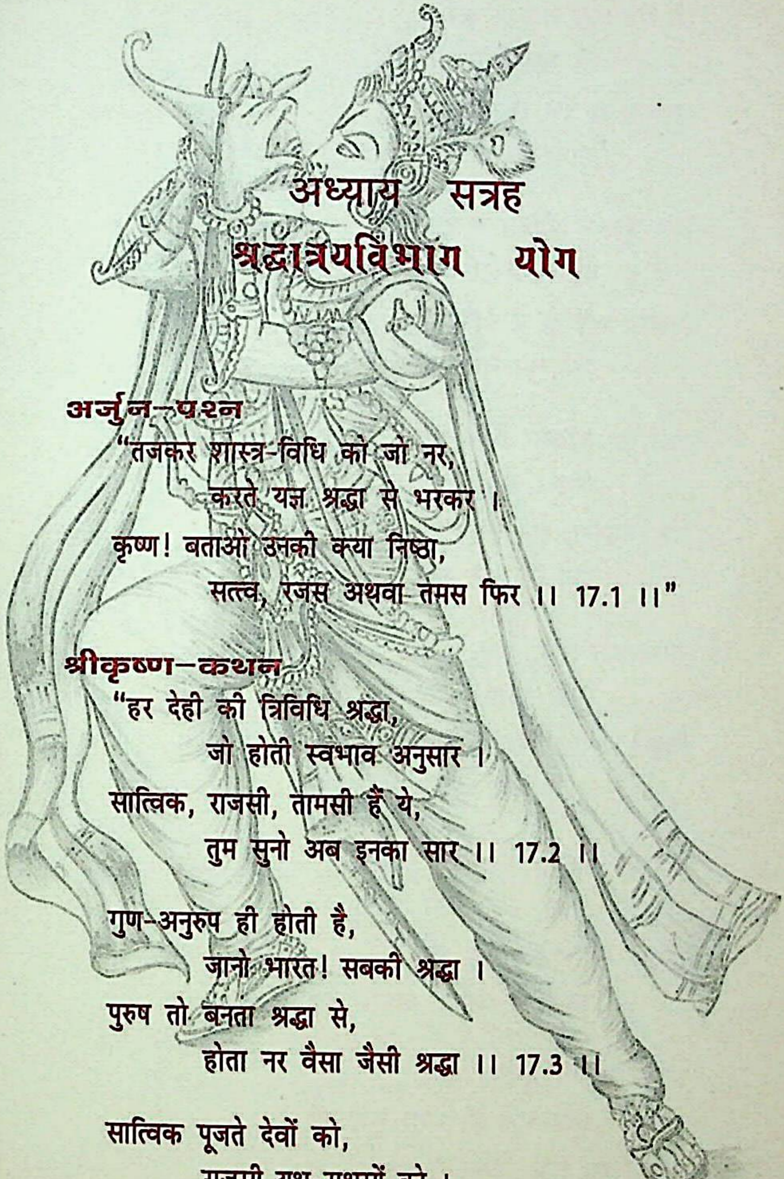

अध्याय सत्रह
श्रद्धात्रयविभाग योग

अर्जुन-प्रश्न

"तजकर शास्त्र-विधि को जो नर,
करते यज्ञ श्रद्धा से भरकर ।
कृष्ण! बताओ उनकी क्या निष्ठा,
सत्त्व, रजस अथवा तमस फिर ।। 17.1 ।।"

श्रीकृष्ण-कथन

"हर देही की त्रिविधि श्रद्धा,
जो होती स्वभाव अनुसार ।
सात्विक, राजसी, तामसी हैं ये,
तुम सुनो अब इनका सार ।। 17.2 ।।

गुण-अनुरुप ही होती है,
जानो भारत! सबकी श्रद्धा ।
पुरुष तो बनता श्रद्धा से,
होता नर वैसा जैसी श्रद्धा ।। 17.3 ।।

सात्विक पूजते देवों को,
राजसी यक्ष-राक्षसों को ।
और तामसी लोग पूजते,
भूत-प्रेत और अन्यों को ।। 17.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो जन घोर तपस्या करते,
जो शास्त्रों से नहीं विहित ।
अहंकार व दंभ से भरकर,
काम राग के बल से अन्वित[1] ।। 17.5 ।।

जान-बूझ वे पीड़ित करते,
देह में स्थित भूत ग्राम व मुझको ।
निश्चय रूप से वे असुर हैं,
ऐसा तुम जानो उनको ।। 17.6 ।।

तीनों को रूचिकर भिन्न-भिन्न,
आहार भी तीन तरह का ।
यज्ञ, तपस्या, दान भिन्न हैं,
अब तुम भेद सुनो इनका ।। 17.7 ।।

जो आहार बल, आयु, शुद्धता,
सुख, आरोग्य, संतुष्टि बढ़ाते ।
चिकने, रसीले, स्थिर, स्वादिष्ट,
ये सात्विक को अच्छे लगते ।। 17.8 ।।

कडुवा, खट्टा, अति गर्म, नमकीन,
तीखा, रूखा और जलता ।
राजसी का इष्ट आहार यह,
जो दुःख, शोक, बीमारी देता ।। 17.9 ।।

बासी, रसहीन, दुर्गन्धि वाला,
और भले ही सड़ा हुआ हो ।
तामसी का प्रिय भोजन है,
जो अशुद्ध, उच्छिष्ट हुआ हो ।। 17.10 ।।

1. भरा हुआ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

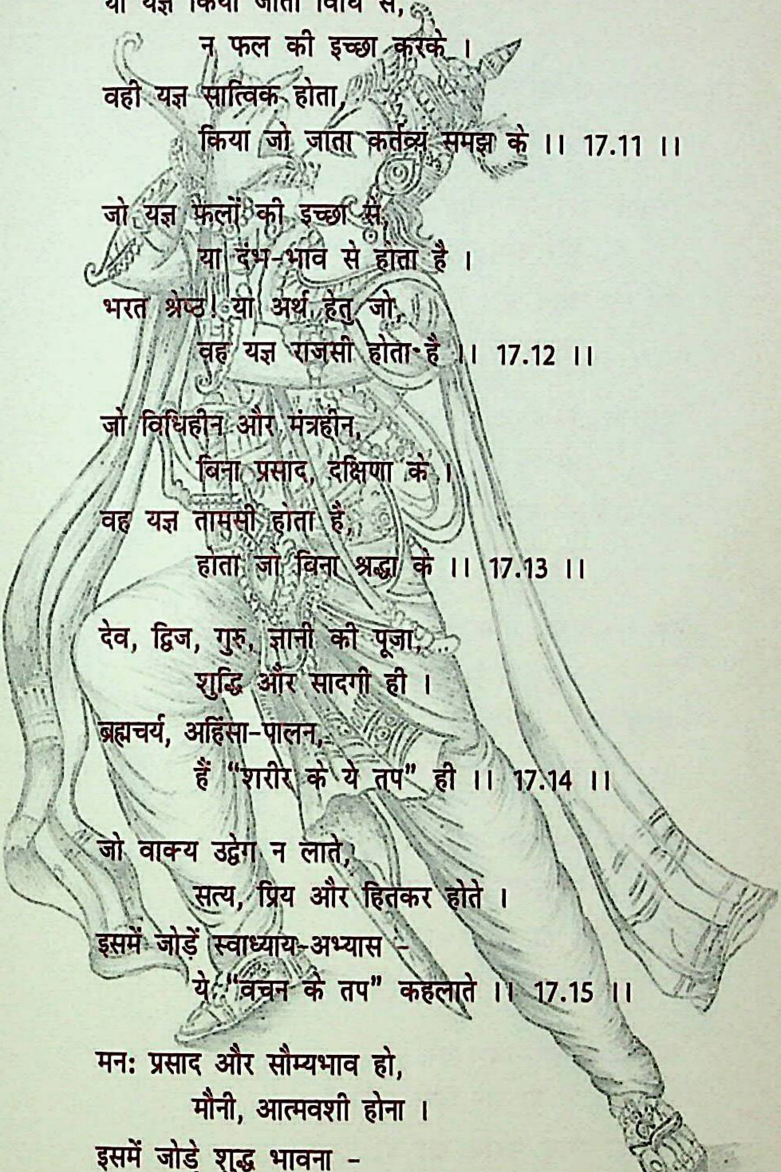

यो यज्ञ किया जाता विधि से,
न फल की इच्छा करके ।
वही यज्ञ सात्विक होता,
किया जो जाता कर्तव्य समझ के ।। 17.11 ।।

जो यज्ञ फलों की इच्छा से,
या दंभ-भाव से होता है ।
भरत श्रेष्ठ! या अर्थ हेतु जो,
वह यज्ञ राजसी होता है ।। 17.12 ।।

जो विधिहीन और मंत्रहीन,
बिना प्रसाद, दक्षिणा के ।
वह यज्ञ तामसी होता है,
होता जो बिना श्रद्धा के ।। 17.13 ।।

देव, द्विज, गुरु, ज्ञानी की पूजा,
शुद्धि और सादगी ही ।
ब्रह्मचर्य, अहिंसा-पालन,
हैं "शरीर के ये तप" ही ।। 17.14 ।।

जो वाक्य उद्वेग न लाते,
सत्य, प्रिय और हितकर होते ।
इसमें जोड़ें स्वाध्याय-अभ्यास -
ये "वचन के तप" कहलाते ।। 17.15 ।।

मनः प्रसाद और सौम्यभाव हो,
मौनी, आत्मवशी होना ।
इसमें जोड़े शुद्ध भावना -
इसको "मन के तप" कहना ।। 17.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह तपस्या-त्रिविध जो नर,
परम् श्रद्धा-भाव से करते ।
यह तपस्या सात्त्विक कहलाती,
कारक फल की इच्छा न रखते ।। 17.17 ।।

सत्कार, मान, पूजा हेतु जो,
और दम्भ से जो तप होता ।
यह तप अध्रुव और अस्थिर है,
यह राजसी तप कहलाता ।। 17.18 ।।

मूढ़, विचार, आत्म-पीड़न से,
जो भी तप किया जाता ।
जो अन्य के नाश हेतु हो,
वह तामसी तप कहलाता ।। 17.19 ।।

जो दान कर्तव्य मानकर,
अनुपकार दिया जाता है ।
उचित समय, स्थान, पात्र हो,
वही दान सात्विक होता है ।। 17.20 ।।

जो दान फलों की इच्छा से,
प्रत्युपकार हेतु दिया जाता है ।
जो न दिया हो सहज-भाव से,
वह दान राजसी होता है ।। 17.21 ।।

सम्मानहीन, असावधान बन,
यों जो दान दिया जाता है ।
अनुचित समय, स्थान, पात्र हो,
वह दान तामसी कहलाता है ।। 17.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ऊँ तत् सत्" ये ब्रह्म के,
त्रिविध चिह्न माने जाते हैं ।
ब्रह्म ज्ञानी, वेद, यज्ञ सब,,
पूर्व समय में इनसे आये हैं ।। 17.23 ।।

अत: ब्रह्मवादी सदैव,
प्रथम "ओम्" उच्चारण करते ।
यज्ञ, दान, तप सब क्रियायें,
विधि-विधान से वे फिर करते ।। 17.24 ।।

न फलों की इच्छा करके,
"तत्" का वे उच्चारण करते ।
यज्ञ, दान, तप - विविध क्रियायें,
मोक्ष हेतु वे इनको करते ।। 17.25 ।।

"सत्" शब्द का अर्थ पृथा-सुत !
सत्य और साधु भी होता ।
प्रशस्त कर्म की संज्ञा भी,
यही शब्द है देता ।। 17.26 ।।

यज्ञ, दान, तप की स्थितियाँ,
"सत्" ही कहलाती हैं ।
और कर्म जो परम् हेतु हों,
वे भी सत् कहलाते हैं ।। 17.27 ।।

यज्ञ, दान, तपस्या जो,
श्रद्धाहीन किये जाते हैं ।
ये पार्थ ! "असत्" कहलाते,
ये "यहाँ-वहाँ" अनुपयोगी हैं ।। 17.28 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

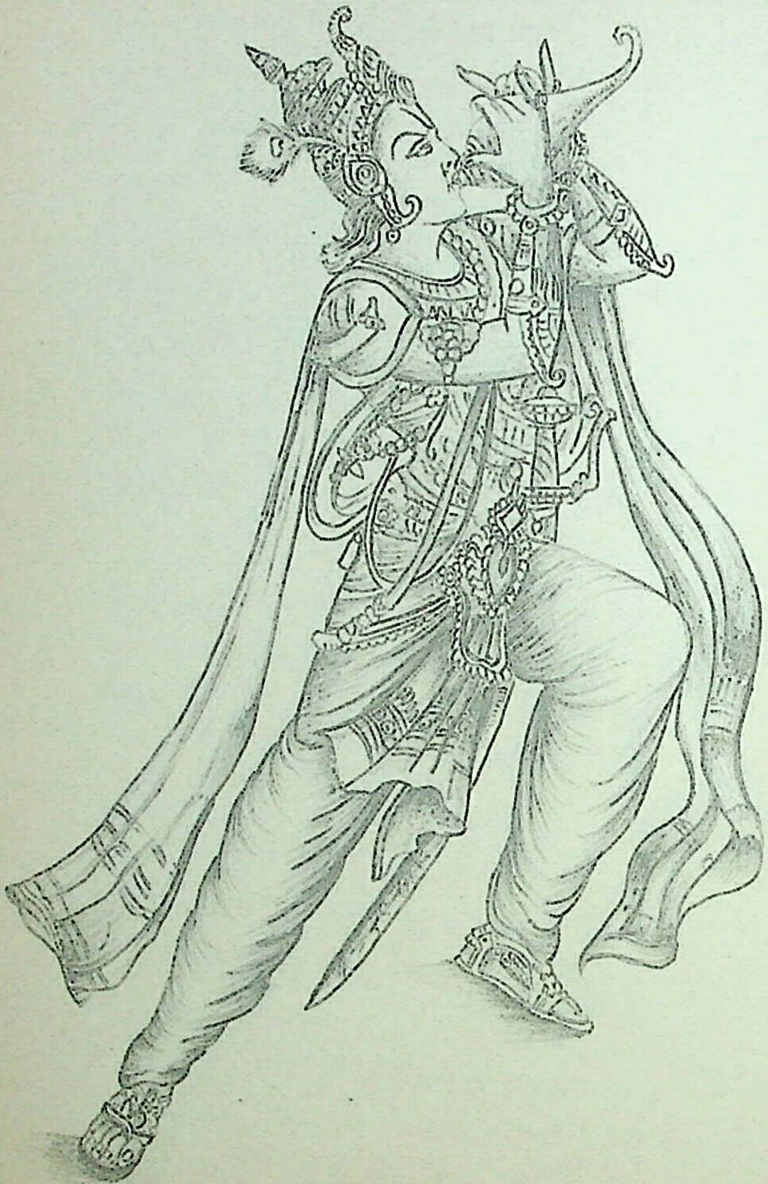

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

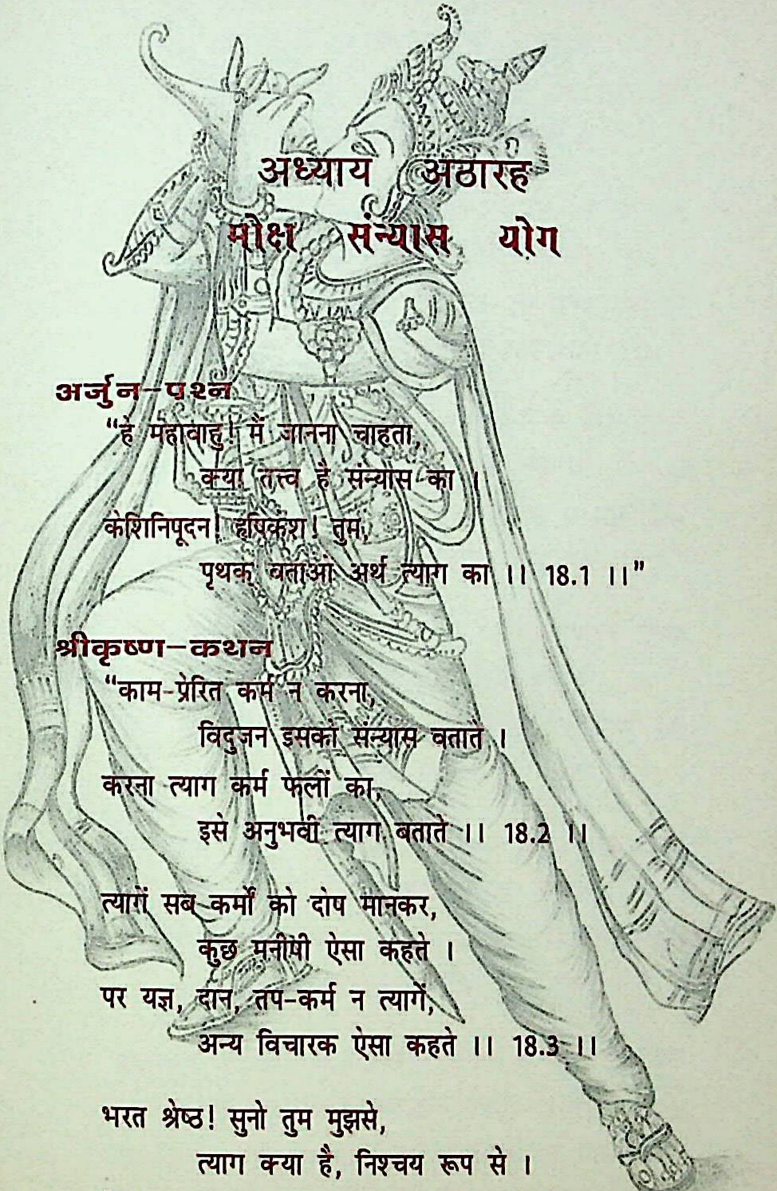

अध्याय अठारह
मोक्ष संन्यास योग

अर्जुन–प्रश्न

"हे महाबाहु! मैं जानना चाहता,
क्या तत्त्व है संन्यास का ।
केशिनिषूदन! हृषिकेश! तुम,
पृथक बताओ अर्थ त्याग का ।। 18.1 ।।"

श्रीकृष्ण–कथन

"काम-प्रेरित कर्म न करना,
विदुजन इसको संन्यास बताते ।
करना त्याग कर्म फलों का,
इसे अनुभवी त्याग बताते ।। 18.2 ।।

त्यागें सब कर्मों को दोष मानकर,
कुछ मनीषी ऐसा कहते ।
पर यज्ञ, दान, तप-कर्म न त्यागें,
अन्य विचारक ऐसा कहते ।। 18.3 ।।

भरत श्रेष्ठ! सुनो तुम मुझसे,
त्याग क्या है, निश्चय रूप से ।
हे पुरुषव्याघ्र! त्याग का वर्णन,
किया गया है त्रिप्रकार से ।। 18.4 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

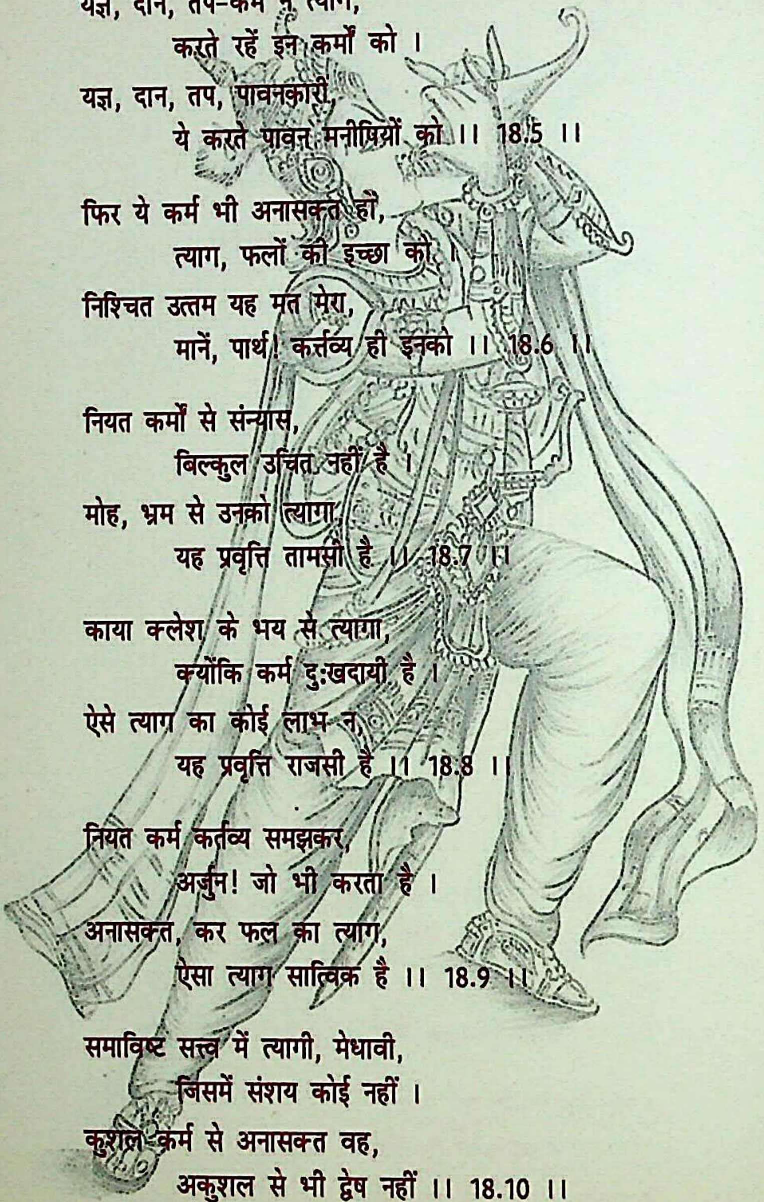

यज्ञ, दान, तप-कर्म न त्यागें,
करते रहें इन कर्मों को ।
यज्ञ, दान, तप, पावनकारी,
ये करते पावन मनीषियों को ।। 18.5 ।।

फिर ये कर्म भी अनासक्त हों,
त्याग, फलों की इच्छा को ।
निश्चित उत्तम यह मत मेरा,
मानें, पार्थ! कर्त्तव्य ही इनको ।। 18.6 ।।

नियत कर्मों से संन्यास,
बिल्कुल उचित नहीं है ।
मोह, भ्रम से उनको त्यागा,
यह प्रवृत्ति तामसी है ।। 18.7 ।।

काया क्लेश के भय से त्यागा,
क्योंकि कर्म दुःखदायी है ।
ऐसे त्याग का कोई लाभ न,
यह प्रवृत्ति राजसी है ।। 18.8 ।।

नियत कर्म कर्तव्य समझकर,
अर्जुन! जो भी करता है ।
अनासक्त, कर फल का त्याग,
ऐसा त्याग सात्विक है ।। 18.9 ।।

समाविष्ट सत्त्व में त्यागी, मेधावी,
जिसमें संशय कोई नहीं ।
कुशल कर्म से अनासक्त वह,
अकुशल से भी द्वेष नहीं ।। 18.10 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

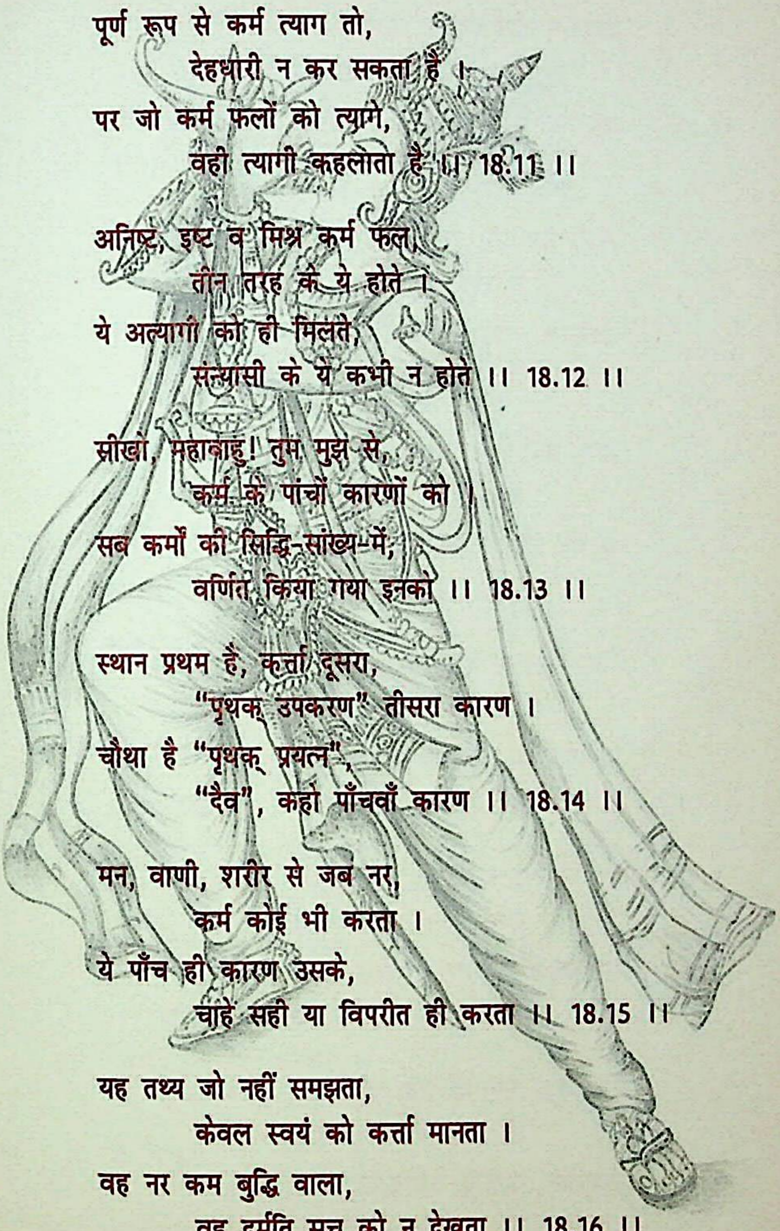

पूर्ण रूप से कर्म त्याग तो,
देहधारी न कर सकता है ।
पर जो कर्म फलों को त्यागे,
वही त्यागी कहलोता है ।। 18.11 ।।

अनिष्ट, इष्ट व मिश्र कर्म फल,
तीन तरह के ये होते ।
ये अत्यागी को ही मिलते,
सन्यासी के ये कभी न होते ।। 18.12 ।।

सीखो, महाबाहु! तुम मुझ से,
कर्म के पांचों कारणों को ।
सब कर्मों की सिद्धि-सांख्य-में,
वर्णित किया गया इनको ।। 18.13 ।।

स्थान प्रथम है, कर्त्ता दूसरा,
"पृथक् उपकरण" तीसरा कारण ।
चौथा है "पृथक् प्रयत्न",
"दैव", कहो पाँचवाँ कारण ।। 18.14 ।।

मन, वाणी, शरीर से जब नर,
कर्म कोई भी करता ।
ये पाँच ही कारण उसके,
चाहे सही या विपरीत ही करता ।। 18.15 ।।

यह तथ्य जो नहीं समझता,
केवल स्वयं को कर्त्ता मानता ।
वह नर कम बुद्धि वाला,
वह दुर्मति सच को न देखता ।। 18.16 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

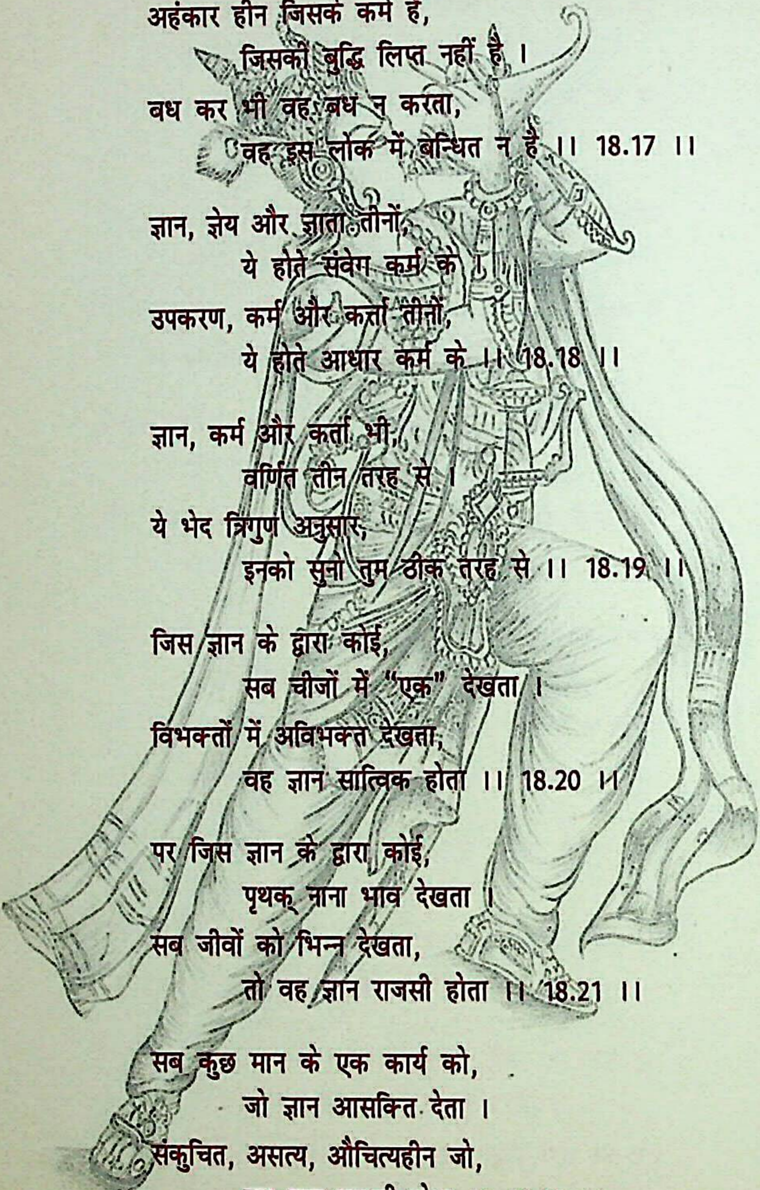

अहंकार हीन जिसके कर्म हैं,
जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं है ।
वध कर भी वह बध न करता,
वह इस लोक में बन्धित न है ।। 18.17 ।।

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता तीनों,
ये होते संवेग कर्म के ।
उपकरण, कर्म और कर्त्ता तीनों,
ये होते आधार कर्म के ।। 18.18 ।।

ज्ञान, कर्म और कर्ता भी,
वर्णित तीन तरह से ।
ये भेद त्रिगुण अनुसार,
इनको सुनो तुम ठीक तरह से ।। 18.19 ।।

जिस ज्ञान के द्वारा कोई,
सब चीजों में "एक" देखता ।
विभक्तों में अविभक्त देखता,
वह ज्ञान सात्विक होता ।। 18.20 ।।

पर जिस ज्ञान के द्वारा कोई,
पृथक् नाना भाव देखता ।
सब जीवों को भिन्न देखता,
तो वह ज्ञान राजसी होता ।। 18.21 ।।

सब कुछ मान के एक कार्य को,
जो ज्ञान आसक्ति देता ।
संकुचित, असत्य, औचित्यहीन जो,
वह ज्ञान तामसी होता ।। 18.22 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

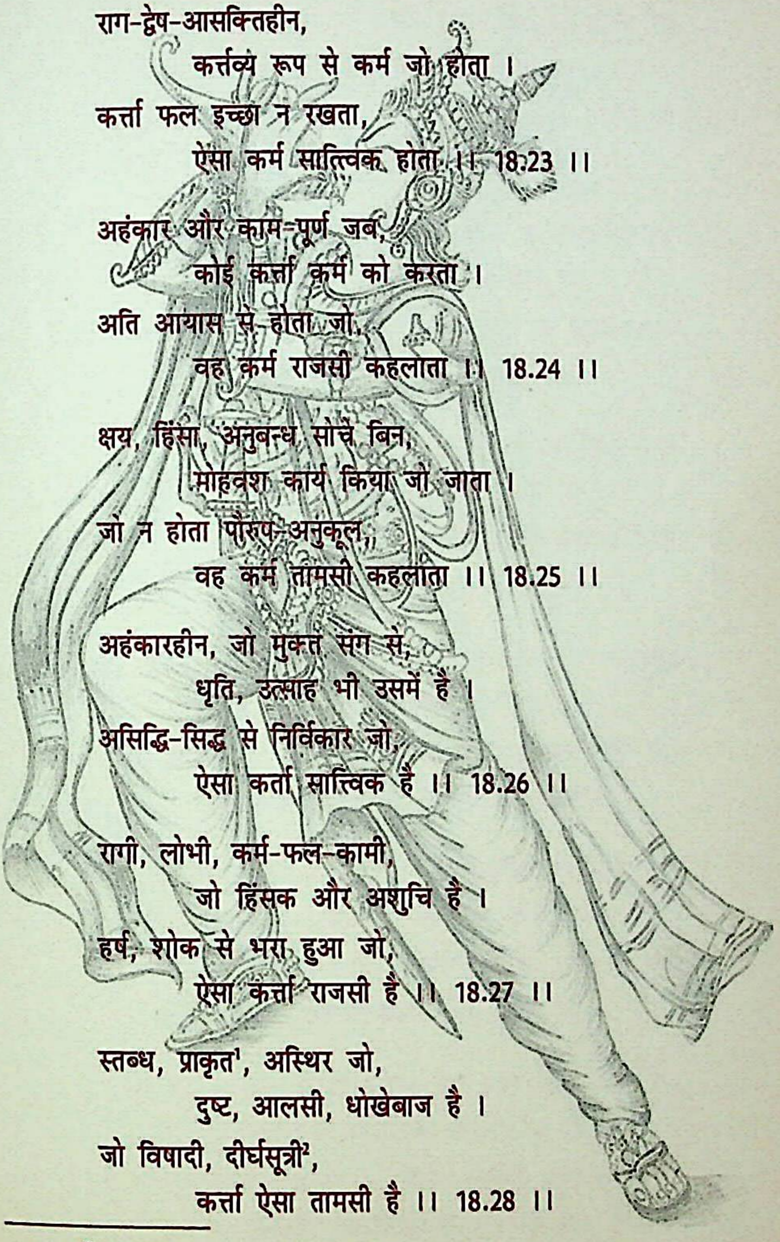

राग-द्वेष-आसक्तिहीन,
कर्त्तव्य रूप से कर्म जो होता ।
कर्त्ता फल इच्छा न रखता,
ऐसा कर्म सात्त्विक होता ।। 18.23 ।।

अहंकार और काम-पूर्ण जब,
कोई कर्त्ता कर्म को करता ।
अति आयास से होता जो,
वह कर्म राजसी कहलाता ।। 18.24 ।।

क्षय, हिंसा, अनुबन्ध सोचे बिन,
मोहवश कार्य किया जो जाता ।
जो न होता पौरुष-अनुकूल,
वह कर्म तामसी कहलाता ।। 18.25 ।।

अहंकारहीन, जो मुक्त संग से,
धृति, उत्साह भी उसमें है ।
असिद्धि-सिद्ध से निर्विकार जो,
ऐसा कर्ता सात्त्विक है ।। 18.26 ।।

रागी, लोभी, कर्म-फल-कामी,
जो हिंसक और अशुचि है ।
हर्ष, शोक से भरा हुआ जो,
ऐसा कर्त्ता राजसी है ।। 18.27 ।।

स्तब्ध, प्राकृत[1], अस्थिर जो,
दुष्ट, आलसी, धोखेबाज है ।
जो विषादी, दीर्घसूत्री[2],
कर्त्ता ऐसा तामसी है ।। 18.28 ।।

1. पतित ।
2. टालमटोल करने वाला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनो बुद्धि और धृति-भेद तुम,
गुण-अनुसार त्रिविध होते ये ।
मैं धनंजय ! बतलाऊँगा,
पृथक्-पृथक् पूर्ण रूप ये ।। 18.29 ।।

प्रवृत्ति-निवृत्ति व कार्य-अकार्य का,
जो भय-अभय का भेद जानती ।
बन्धन-मोक्ष का अन्तर जाने,
ऐसी बुद्धि सात्विक होती ।। 18.30 ।।

धर्म-अधर्म का अन्तर, पार्थ !
जो बुद्धि यथावत् नहीं जानती ।
कार्य-अकार्य का भेद न जाने,
ऐसी बुद्धि राजसी होती ।। 18.31 ।।

अंधकार से आवृत्त होकर,
जो अधर्म में धर्म देखती ।
सब चीजों को उल्टा देखे,
ऐसी बुद्धि तामसी होती ।। 18.32 ।।

मन, प्राण और इन्द्रियाँ सारी,
जो धृति अनुशासित करती ।
योग के द्वारा अडिग, पार्थ ! जो,
ऐसी धृति सात्त्विक होती ।। 18.33 ।।

धर्म, अर्थ और काम को अर्जुन !
जो धृति धारण करती ।
फल की इच्छा जिसमें, पार्थ !
वह धृति राजसी होती ।। 18.34 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भय, शोक और स्वप्न, विषाद[1],
जो धृति नहीं छोड़ती ।
दुर्मेधा, मदभरी, पार्थ ! जो,
ऐसी धृति तामसी होती ।। 18.35 ।।

भरत श्रेष्ठ ! अब मुझे सुनो तुम,
त्रिविध-सुख का वर्णन प्रस्तुत है ।
अभ्यास के द्वारा इसमें रमता जो,
वह दुःख-निवृत्त हो जाता है ।। 18.36 ।।

प्रथम लगता विष जैसा जो,
पर अन्त में अमृत होता है ।
आत्म-बुद्धि-प्रसाद से उपजा,
वह सुख सात्त्विक होता है ।। 18.37 ।।

विषय-इन्द्रिय योग से जन्मा,
प्रथम, जो सुख अमृत होता ।
विष समान जो अन्त में होता,
ऐसा सुख तो राजसी होता ।। 18.38 ।।

जो सुख, प्रथम व पश्चात्,
आत्मा को सम्मोहित करता ।
निद्रा, प्रसाद, आलस्य से जन्मा,
ऐसा सुख तामसी होता ।। 18.39 ।।

पृथ्वी पर न कोई प्राणी,
पूर्ण मुक्त है त्रिगुण से ।
न ही मुक्त कोई देवता,
ये गुण जन्मे प्रकृति से ।। 18.40 ।।

---

1. निराशा/अवसाद ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

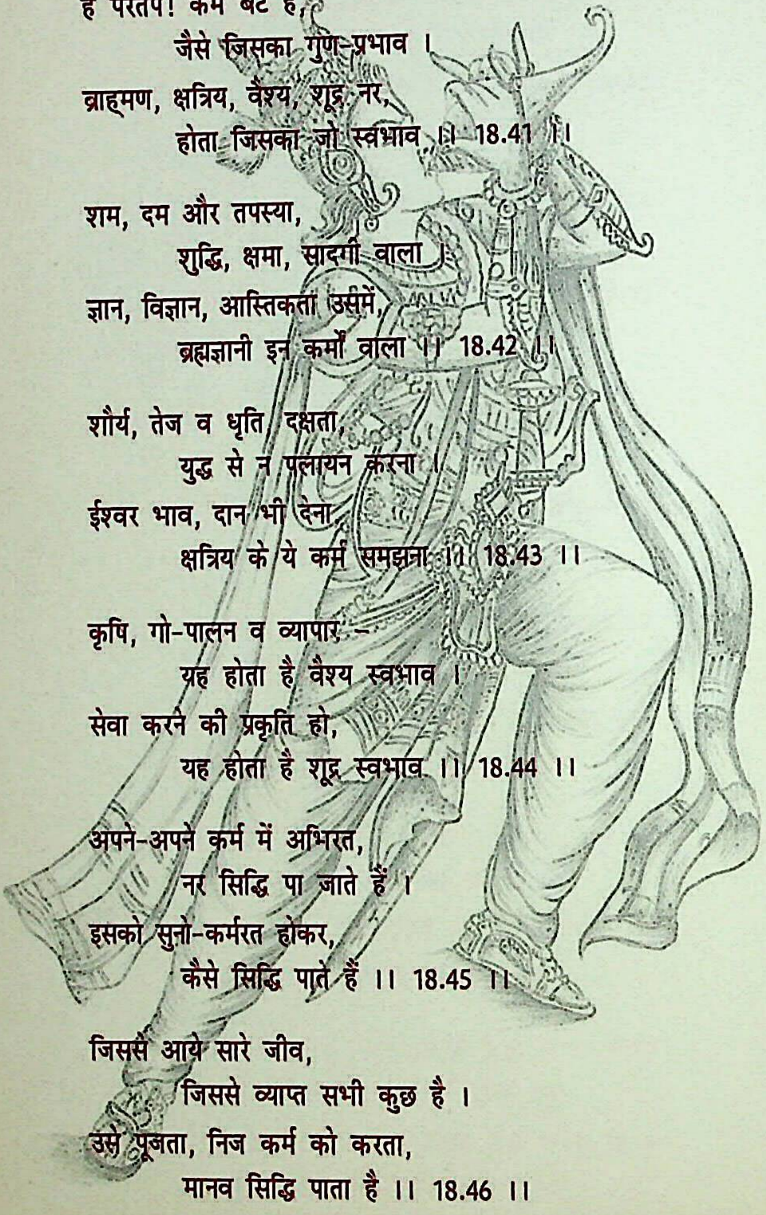

हे परंतप! कर्म बँटे हैं,
जैसे जिसका गुण-प्रभाव ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नर,
होता जिसका जो स्वभाव ।। 18.41 ।।

शम, दम और तपस्या,
शुद्धि, क्षमा, सादगी वाला ।
ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता उसमें,
ब्रह्मज्ञानी इन कर्मों वाला ।। 18.42 ।।

शौर्य, तेज व धृति, दक्षता,
युद्ध से न पलायन करना ।
ईश्वर भाव, दान भी देना,
क्षत्रिय के ये कर्म समझना ।। 18.43 ।।

कृषि, गो-पालन व व्यापार -
यह होता है वैश्य स्वभाव ।
सेवा करने की प्रकृति हो,
यह होता है शूद्र स्वभाव ।। 18.44 ।।

अपने-अपने कर्म में अभिरत,
नर सिद्धि पा जाते हैं ।
इसको सुनो-कर्मरत होकर,
कैसे सिद्धि पाते हैं ।। 18.45 ।।

जिससे आये सारे जीव,
जिससे व्याप्त सभी कुछ है ।
उसे पूजता, निज कर्म को करता,
मानव सिद्धि पाता है ।। 18.46 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

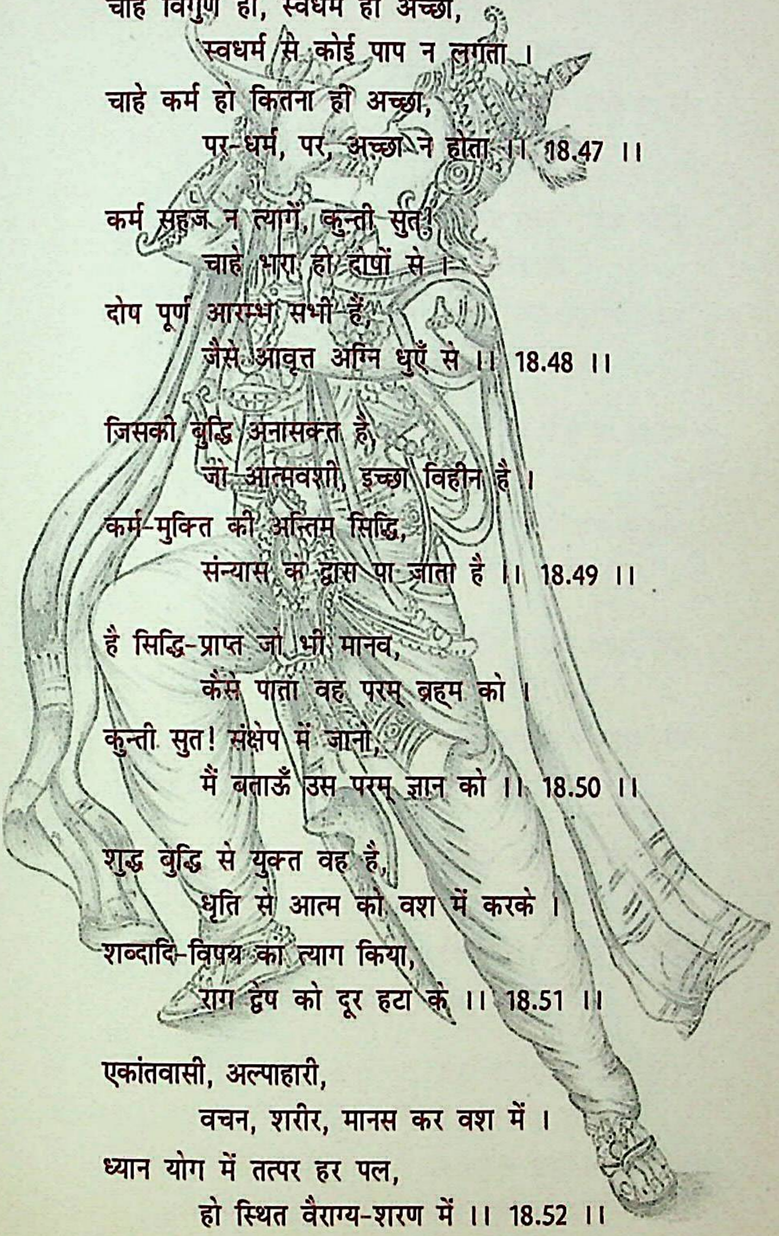

चाहे विगुण हो, स्वधर्म ही अच्छा,
स्वधर्म से कोई पाप न लगता ।
चाहे कर्म हो कितना ही अच्छा,
पर-धर्म, पर, अच्छा न होता ।। 18.47 ।।

कर्म सहज न त्यागें, कुन्ती सुत!
चाहे भरा हो दोषों से ।
दोष पूर्ण आरम्भ सभी हैं,
जैसे आवृत्त अग्नि धुएँ से ।। 18.48 ।।

जिसकी बुद्धि अनासक्त है,
जो आत्मवशी, इच्छा विहीन है ।
कर्म-मुक्ति की अन्तिम सिद्धि,
संन्यास के द्वारा पा जाता है ।। 18.49 ।।

है सिद्धि-प्राप्त जो भी मानव,
कैसे पाता वह परम् ब्रह्म को ।
कुन्ती सुत! संक्षेप में जानो,
मैं बताऊँ उस परम् ज्ञान को ।। 18.50 ।।

शुद्ध बुद्धि से युक्त वह है,
धृति से आत्म को वश में करके ।
शब्दादि-विषय का त्याग किया,
राग द्वेष को दूर हटा के ।। 18.51 ।।

एकांतवासी, अल्पाहारी,
वचन, शरीर, मानस कर वश में ।
ध्यान योग में तत्पर हर पल,
हो स्थित वैराग्य-शरण में ।। 18.52 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहंकार, बल, दर्प, क्रोध व,
परिग्रह[1] और काम से मुक्ति ।
निर्मम हुआ, शान्ति भी पाई,
समझो, उसकी ब्रह्म की स्थिति ।। 18.53 ।।

होकर ब्रह्म रहता प्रसन्न वह,
न ही शोच और इच्छा करता ।
सब जीवों के प्रति समान वह,
मेरी परम भक्ति वह पाता ।। 18.54 ।।

भक्ति के द्वारा मुझे जानता –
मैं हूं कौन और क्या सत्य में ।
जान सत्यता मेरी ऐसी,
आता है फिर वह मुझ में ।। 18.55 ।।

सदा शरण मेरी में रहकर,
सारे कर्म सर्वदा करता ।
मेरे प्रसाद को पाकर वह,
शाश्वत, अव्यय पद को पाता ।। 18.56 ।।

परम् लक्ष्य मानकर मुझको,
सारे कर्म त्यागो मुझमें ।
बुद्धियोग में आश्रित होकर,
सदा चित्त साधो तुम मुझमें ।। 18.57 ।।

मुझमें चित्त लगाकर देखो !
सारे दुर्ग जीत लोगे ।
अहंकारवश सुना न मुझको,
तो निश्चित विनष्ट होगे ।। 18.58 ।।

---

1. अतिकथन/विवर्धन (aggrandisement) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मैं नहीं लड़ूंगा" यह सोचो तुम,
यदि अहंकार में आश्रय लेकर ।
त्रुटिमय यह विचार तुम्हारा,
तुम लड़ोगे प्रकृतिवश होकर ।। 18.59 ।।

कुन्ती सुत! मोह के वश में आकर,
चाहते नहीं तुम जो करना ।
स्वभाव-जनित कर्म से बंधकर,
हो अवश, तुम्हें होगा वह करना ।। 18.60 ।।

सब जीवों के अन्तःकरण में,
हे अर्जुन! ईश्वर रहता है ।
हर जीव माया से मोहित,
हो सोचे, ज्यों यन्त्र पर बैठा है ।। 18.61 ।।

सर्व भाव से, हे कुन्ती सुत!
उसकी शरण में जाओ तुम ।
उसके प्रसाद से पाओगे,
स्थान शाश्वत, परम् शान्ति तुम ।। 18.62 ।।

इस तरह गूढतम ज्ञान तुम्हें,
मैंने यह बतलाया है ।
इस पर विचार कर पूर्ण रूप से,
करो वही जो अच्छा है ।। 18.63 ।।

एक बार सुनो तुम फिर से,
परम् वचन गूढ़तम मेरे ।
अतिप्रिय हो मुझको तुम,
बता रहा हूँ हित में तुम्हारे ।। 18.64 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

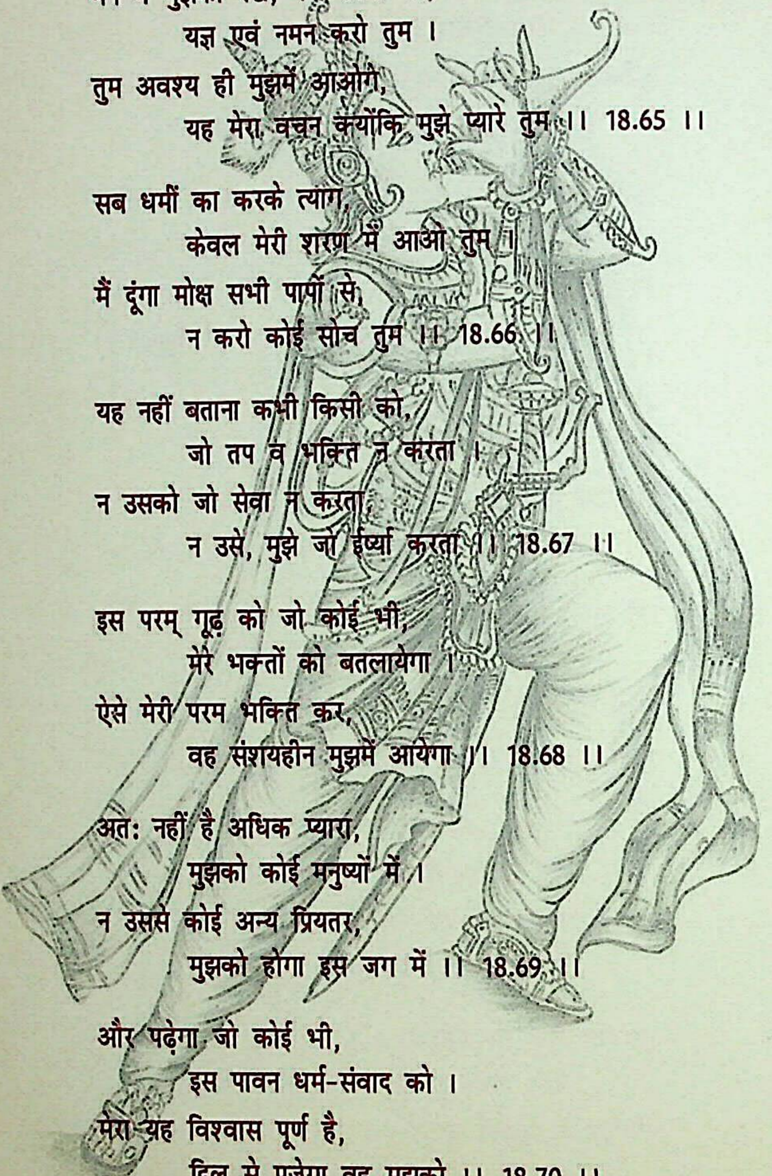

मन में मुझको रख, मेरे भक्त बन,
यज्ञ एवं नमन करो तुम ।
तुम अवश्य ही मुझमें आओगे,
यह मेरा वचन क्योंकि मुझे प्यारे तुम ।। 18.65 ।।

सब धर्मों का करके त्याग,
केवल मेरी शरण में आओ तुम ।
मैं दूंगा मोक्ष सभी पापों से,
न करो कोई सोच तुम ।। 18.66 ।।

यह नहीं बताना कभी किसी को,
जो तप व भक्ति न करता ।
न उसको जो सेवा न करता,
न उसे, मुझे जो ईर्ष्या करता ।। 18.67 ।।

इस परम् गूढ़ को जो कोई भी,
मेरे भक्तों को बतलायेगा ।
ऐसे मेरी परम भक्ति कर,
वह संशयहीन मुझमें आयेगा ।। 18.68 ।।

अतः नहीं है अधिक प्यारा,
मुझको कोई मनुष्यों में ।
न उससे कोई अन्य प्रियतर,
मुझको होगा इस जग में ।। 18.69 ।।

और पढ़ेगा जो कोई भी,
इस पावन धर्म-संवाद को ।
मेरा यह विश्वास पूर्ण है,
दिल से पूजेगा वह मुझको ।। 18.70 ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

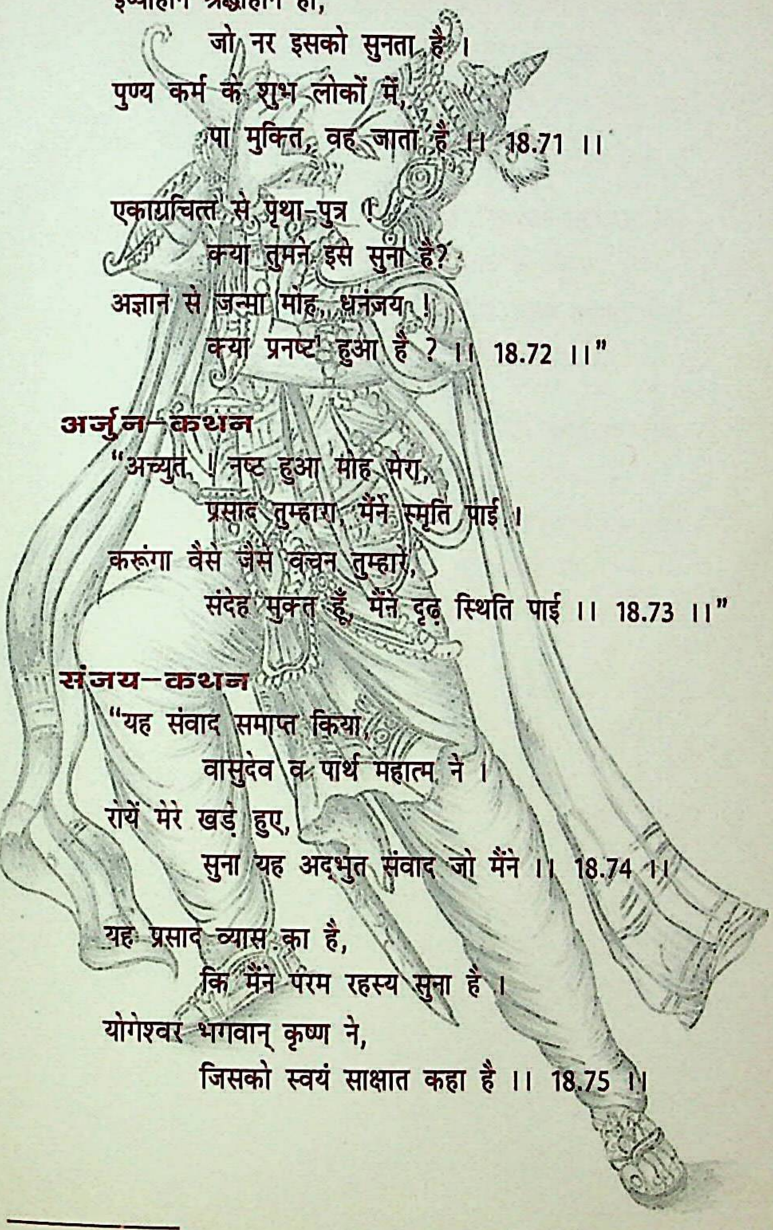

ईर्ष्याहीन श्रद्धाहीन हो,
जो नर इसको सुनता है ।
पुण्य कर्म के शुभ लोकों में,
पा मुक्ति, वह जाता है ।। 18.71 ।।

एकाग्रचित्त से पृथा-पुत्र !
क्या तुमने इसे सुना है?
अज्ञान से जन्मा मोह, धनंजय !
क्या प्रनष्ट[1] हुआ है ? ।। 18.72 ।।"

अर्जुन-कथन

"अच्युत ! नष्ट हुआ मोह मेरा,
प्रसाद तुम्हारा, मैंने स्मृति पाई ।
करूंगा वैसे जैसे वचन तुम्हारे,
संदेह मुक्त हूँ, मैंने दृढ़ स्थिति पाई ।। 18.73 ।।"

संजय-कथन

"यह संवाद समाप्त किया,
वासुदेव व पार्थ महात्म ने ।
रोयें मेरे खड़े हुए,
सुना यह अद्भुत संवाद जो मैंने ।। 18.74 ।।

यह प्रसाद व्यास का है,
कि मैंने परम रहस्य सुना है ।
योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने,
जिसको स्वयं साक्षात कहा है ।। 18.75 ।।

1. दूर होना (be dispelled) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे राजन ! कर-कर याद मैं,
केशव-अर्जुन पावन संवाद की ।
बार-बार आनन्दित हूँ मैं,
कर याद अद्भुत संवाद की ।। 18.76 ।।

हरि का वह अद्भुत शरीर,
स्मृति में आता बार-बार ।
मेरा विस्मय बहुत अधिक है,
आनन्दित होता हूँ बार-बार ।। 18.77 ।।

जहाँ पर कृष्ण योगेश्वर हैं,
जहां पर पार्थ धनुर्धर हैं ।
मेरा मत निश्चय, वहाँ पर,
श्री, विजय व शक्ति, नीति हैं ।। 18.78 ।।"

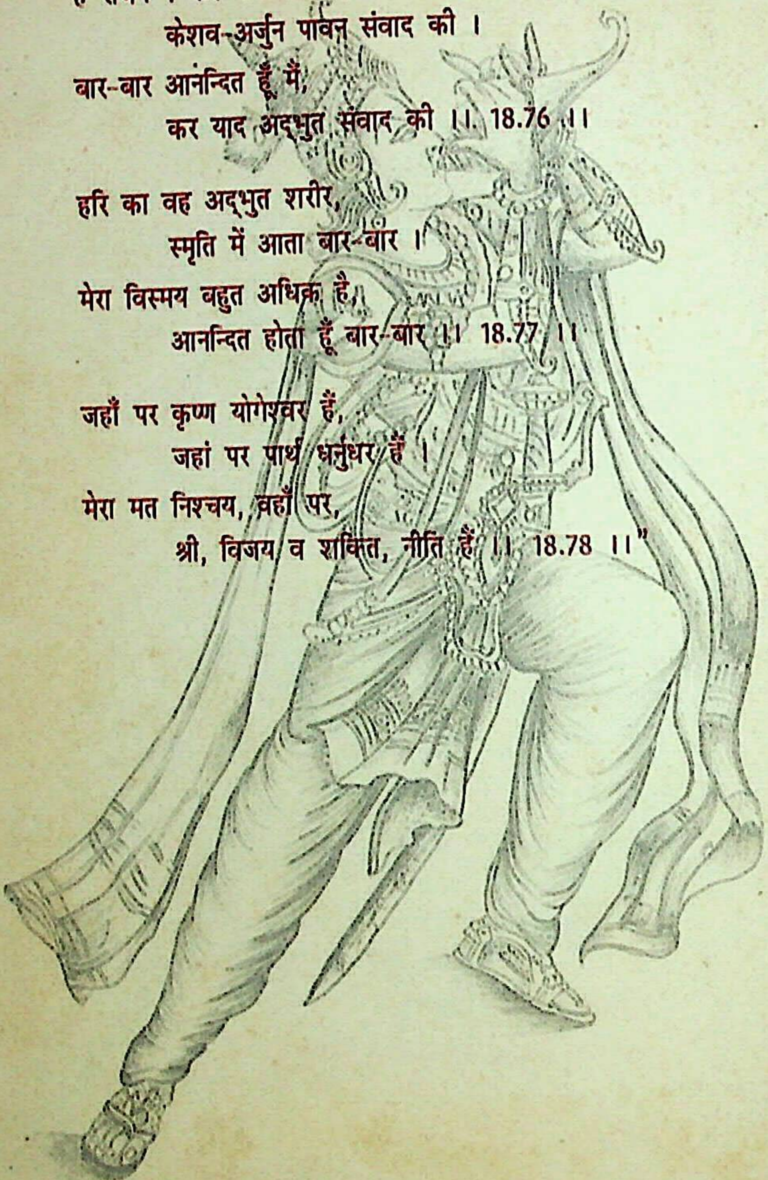

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

गीता सुगीता कर्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि सृता।।

जिसकी निष्ठा गीता के अध्ययन में है, उसको अन्य विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन की क्या आवश्यकता है? गीता तो स्वयं पद्मनाभ के मुखकमल से निकली है।

गीता एक कर्म योगी ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य को कर्मयोग करने के लिए प्रेरित किया गया है। कृष्ण ने अर्जुन को फल की इच्छा से विरक्त रहते हुए कर्म करते रहने के लिए मार्ग-दर्शन दिया। यह एक कुशाग्र बुद्धि का शोध प्रबन्ध है ज़ो कि आत्मसंयम, अनुशासन तथा साधना से जुड़ा है।

गीता दर्शन-शास्त्र का सार है। ज्ञान, भक्ति तथा कर्म योग [illegible] मिलन [illegible] सबसे उत्कृष्ट बात यह है कि इसमें अच्छाई और बुराई का स्प[illegible] [illegible] [illegible] तरह मिलता है।

महाकवि कालिदास ने कहा है कि जिसकी विद्या केवल [illegible] [illegible]विका[illegible] लिए है उसे ज्ञान बेचने वाला व्यापारी समझना चाहिए। 'कृष्ण-अ[illegible] संवाद' [illegible] रूप में गीता को हिन्दी में गेयता प्रदान करने का प्रयास किया गया [illegible]

डॉ॰ सुरेन्द्र सिंह यादव

- इस समय आई॰आई॰टी, हौज खास, नई दिल्ली के प्रबन्ध अध्ययन विभाग में अध्यापन।
- आई॰ आई॰ टी॰, कानपुर से इंजीनियरिंग में बी॰ टेक॰;
- दिल्ली विश्वविद्यालय से एम॰ बी॰ ए॰;
- पैरिस विश्वविद्यालय, सोरबोन से प्रबन्ध विज्ञान में पी॰ एच॰ डी॰;
- पैरिस में छः वर्ष रहकर प्रबन्ध विज्ञान के विभिन्न आयामों का अध्ययन एवं अध्यापन।
- देश-विदेश की कई पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच भाषाओं में लेख एवं पुस्तकें।
- 'कृष्ण-अर्जुन संवाद' हिन्दी में पहली पुस्तक जो पैरिस-प्रवास के समय लिखी गई।

2000, xviii, 146 p.; 22 cm.
ISBN 81-246-0161-5 **(pbk) Rs. 160**

डी॰ के॰ प्रिंटवर्ल्ड (प्रा॰) लि॰
'श्रीकुञ्ज', एफ-52 बाली नगर, नई दिल्ली-110015
दूरभाष: (011) 545 3975, 546 6019
फैक्स: (011) 546 5926; ई-मेल: dkprint@4mis.com

Urmila Sharma Collection, Varanasi